पुष्प नं० १७

स्वामि कुंदकुंदाचार्यदेव विरचित

अष्टपाहुड

भाषा वचनिकाकार

स्व० पं० जयचन्दजी छाबड़ा, जयपुर

प्रकाशकः—
श्री मगनमल हीरालाल दि० जैन
पारमार्थिक ट्रष्टान्तर्गत
श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला
मारोठ (राजस्थान)

प्रथमवार १०००

मूल्य ३।।)

अक्टूबर १९५०
श्री वीर नि० संवत २४७६

नेमीचन्द बाकलीवाल
एम० के० मिल्स प्रेस
मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

प्रकाशकीय

इस ग्रंथमालासे १६ वें पुष्पके रूपमें भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव विरचित श्री अष्टपाहुड प्रन्थको प्रकाशन करते हुये हमें बहुत हर्ष हो रहा है।

भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अपनी हर एक कृतिमें अध्यात्म रस खूब जी खोलकर भरा है, उनकी रचनाओं में यह सबसे सरल रचना मानी जाती है। ग्रन्थराज एवं उसके कर्ताके विषयमें हमें कुछ भी नहीं लिखना है कारण श्रीयुत् स्व॰ पं॰ रामप्रसादजी शास्त्री ने अपनी भूमिकामें इस विषयपर खूब प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थमें श्री कुन्दकुन्ददेवकृत गाथासे तथो उन पर संस्कृत श्लोक दिये गये हैं तथा उन गाथाओंकी ढूंढारी भाषामें पं॰ जयचन्दजी छाबड़ा द्वारा विस्तृत टीका रची गई; वह भी दी गई है। हमारे कई मित्रोंका यह सुझाव था कि इसमें जयचन्दजीकी टीकाके स्थान पर प्रचलित हिंदी भाषामें नवीन टीका बनवाकर लगाई जावे, लेकिन मैंने ऐसा करना उचित नहीं समझा कारण मैंने कुछ ग्रन्थोंमें इस प्रकार का प्रयास किया था लेकिन वह सफल नहीं उतरा। पं॰ जयचन्दजीने श्री आचार्य देवके हृदयको स्पर्श करते हुये जितनी भाव द्योतक टीका की है उसकी वर्तमानमें टीका करानेसे वह भावही नहीं आ पाते। इन्हीं सब कारणोंसे मैंने इस ग्रन्थको जयचन्दजीकी भाषामें ही ज्यों का त्यो छपाया है।

इस ग्रन्थका पूर्व प्रकाशन वीर नि॰ सं॰ २४४९ के करीबमें पूज्य श्री मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला द्वारा बंबई से हुआ था, लेकिन सब

प्रतियाँ पूर्ण हो जानेसे आजकल यह ग्रंथ अप्राप्य हो रहा था, अध्यात्म-रसिकोंको इस ग्रन्थकी बहुत आवश्यक्ता थी अतः पूर्व प्रकाशक की अनुमति लेकर यह ग्रन्थ इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित किया गया है। आशा है मुमुक्षुजन पूर्ण लाभ उठावेंगे।

अंतमें मैं श्री मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमालाके मंत्री महोदयको धन्यवाद देता हूँ-जिन्होंने हमको इसके प्रकाशनके लिये अनुमति दी।

भवदीयः—
नेमीचन्द पाटनी
प्र० मंत्री
श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट
मारोठ, (मारवाड़ राजस्थान)

भूमिका

अनेक आनंदधाम अतिरमणीय इस पवित्र भारतीय वसुंधरामें स्वयं अहिंसात्मक तथा समभाव कर जीती है राग द्वेष परिणति जिनने ऐसे धर्मामृत पोषक अगणनीय ऋषिगणगणनीय भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य का शासन साक्षात्तीर्थेश पूज्य श्री १००८ भगवान् वर्द्धमान जिनके समान ही आज इस कलिकाल नाम पंचम कालमें मान्यगणना रूप परिणत हो रहा है क्योंकि उनके अमूल्य स्मृतिबोधक ग्रन्थराज आज भी उनकी उस शांतिप्रदायिनी दिव्य भव्य, तथा लोकांत चिदानन्द प्रापयित्री पावन मूर्तिको प्रत्यक्ष भासुरीय आभामें नयन विषय कर रहे हैं।

यद्यपि इस दिगम्बर जैन समाजमें आत्मविज्ञान कर्मविज्ञान तथा तत्त्वबोधक अनेक कारणात्मक ऐसे ग्रंथराज हैं कि जिनके अंशमात्र ज्ञानसे ही आत्मस्वरूप समझमें आ जाता है तथा आज कल धुरंधर विद्वान् श्रेणिकी गणना प्राप्त हो जाती है इसी समय यदि अगाधतामें रत्नाकर इनका प्रतिस्पर्धी हो तो विशेष अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि गुणरत्न समुद्ररत्नवत् इनमें भी भरे हैं। और वे बड़े ही प्रज्ञाशील कर्मशूरको प्राप्त हो सकते हैं। इसी कारण इनका रचयिता यदि ब्रह्मदेव सर्वज्ञके अनुरूप हो तो वह अशकलतामें सत्य ही है। क्योंकि हमारे जैसेके लिये तो यहां भी वही भाव है। अतएव इनकी अणुती साक्षात् तीर्थेशकी वाणी और ये

साक्षात्तीर्थेशके समानही हमारे लिये हितावह हैं। इनके विषयमें तथा इनकी सर्वज्ञ परंपरागत कृतिके विषयमें यदि किसीकी आक्षेप विक्षेपता होगी वह केवल अगाधजल-आभात्मक मृगतृष्णाके समानही उसके लिये होगी। स्वामी कुन्दकुन्द सरीखे ग्रन्थकार तथा उनके ग्रंथमें कहीं भी ऐसा अंश नहीं है कि जिसमें किसीका आक्षेप विक्षेप हो क्योंकि उनकी ग्रन्थशैली आध्यात्म प्रधानतासे मार्गानुशासिनी है फिर भी यहां सर्वत्र इस प्रकारेका गुंठन है कि किसी भी प्रतिपक्षी तथा परीक्षकको आदिसे अन्ततक कहीं भी ऐसा अंश न मिलेगा कि जिसमें आक्षेप विक्षेपको जगह हो। इसीलिये इनको प्रधान तथा पूज्य प्रमाण कोटीमें भगवान महावीर तथा गौतमगणीके तुल्य माना है क्योंकि शास्त्रकी आदिमें शास्त्र वांचने वाले मंगलाचरणमें 'मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गोतमो गणी मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधम्मोस्तु मंगलं' यह पाठ हमेशाह ही पढ़ते हैं।

इसीसे पता लगता है कि स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यका आसन इस दिगम्बर जैन समाजमें कितना ऊँचा है ये आचार्य मूलसंघके बड़ेही प्राभाविक आचार्य माने गये हैं। अतएव हमारे प्रधानवर्ग मूलसंघके साथ कुन्दकुन्दाम्नायमें आज भी अपनेको प्रगटकर धन्य मानते हैं, वास्तवमें देखा जाय तो जो कुन्दकुन्दाम्नाय है वही मूलसंघ है फिर भी मूलसंघकी असलियत कहाँ है यह प्रगट करनेके लिये कुन्दकुन्द आम्नाय को प्रधान माना है और इसी हेतुसे मूलसंघके साथ जो कुन्दकुन्द आम्नायके लिखने बोलनेकी शैली है वह योग्य भी है क्योंकि मूलसंघता कुन्दकुन्दाम्नायमें ही प्रधानतासे मानी जाती है। और इसकी प्रसिद्धि दिगम्बर प्रमुख समाजमे सर्वत्र ही है। अतः किसीके विवाद औरसंदेह को यहां जगह नहीं है।

श्रीश्रुतसागरसूरिने इनके षट्पाहुड ग्रन्थकी संस्कृत टीकाके

प्रत्येक पाहुडके अन्तमें इनके पांच[1] नाम लिखे हैं जो कि इस प्रकार हैं- **श्री पद्मनंदिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपृच्छाचार्य-नामपंचकविराजितेन,** इससे यह पता लगता है कि तत्वार्थ सूत्रके कर्ता श्री उमास्वामी और ये एक ही व्यक्ति हों। क्योंकि तत्वार्थ-मोक्षशास्त्र के दशाध्यायके अन्तमें भी **तत्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं। वन्दे गणीन्द्रसंज्ञातमुमास्वामिमुनीश्वरं;** इस श्लोकमें भी गृद्धपिच्छ ऐसा उमास्वामीजीका विशेषण दिया है इससे तथा विदेहक्षेत्रमें भगवान श्री १००८ सीमंधरस्वामी द्वारा संबोधित होनेकी कथामें भी गृद्धपिच्छका विषय आता है तथा कुछ एक विद्वान् द्वारा उमास्वामीजीकी कथा भी वैसी ही सुनी जाती है जैसी कि गृद्धपिच्छके विषयमें कुन्दकुन्दाचार्य की है। और कुन्दकुन्दाचार्य सीमंधर स्वामीसे संबोधित हुए इस विषयमें भी श्रीश्रुतसागरसूरिने लिखा है कि—**सीमंधरस्वामिज्ञानसंबोधित-भव्यजनेन,** इससे हम कुछ संदिग्ध होते हैं कि शायद दोनों व्यक्ति एकही हों परन्तु जबतक कोई पुष्ट प्रमाण न मिलै तबतक हम संदिग्धा-वस्थामें रहनेके सिवाय और कर ही क्या सकते हैं। यदि कहीं कुन्दकुन्द

---

१ दिगम्बर जैन नामक पत्रके वर्ष १४ वा वीर स० २४४७ वि० सं० १९७७ सन् १९२१ ईस्वी के पं० नन्दलालजी ईडर (चावली-आगरा) द्वारा भेजे गये **आचार्योंकी पट्टावली और इतिहास** नामक लेखकी टिप्पणीस्थ नं० ग की ईडर भंडार वाली पट्टावली में भी कुन्द-कुन्दके पांच नामका श्लोक इस प्रकार मिलता है।

पट्टावली ग.

आचार्यकुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपृच्छः पद्मनंदीति तन्नुतिः॥५॥

के नामों में उमास्वामि नामभी होता तब तो फिर सन्देहको भी स्थान न मिलता फिर भी इतना जरूर है कि इनका कोई न कोई गुरु शिष्यपने का सम्बन्ध परस्परमें अवश्य होगा।

गृद्धपृच्छ कुन्दकुन्द हों या उमास्वामि हों दोनोंका ही यशोगान इस दि० जैन समाजमें पूर्ण रीतिसे बड़ी भक्ति तथा श्रद्धासे जुदे २ नाम द्वारा गाया जाता है तथा गृद्धपृच्छ नामसे भी किसी किसी ग्रन्थकर्ताने अपनी आंतरिक भक्ति प्रदर्शित की है जैसे कि वादिराज सूरिने अपने पार्श्वचरित्र ग्रथमें सब आचार्योंमे प्रथम गृद्धपृच्छस्वामीका क्या ही अपूर्व शब्दोंमें गुणानुवाद पूर्वक नमस्कार किया है—

अतुच्छगुणसंपातं गृद्धपिच्छं नतोऽस्मि तं।
पक्षीकुर्वंति यं भव्या निर्वाणायोत्पतिष्णवः॥ १ ॥

जो प्रधान २ गुणोंका आश्रय दाता है तथा मोक्ष जानेके इच्छुक उड़नेवाले पक्षियोंके पाखकी तरह जिसका आश्रय लेते है उस गृद्धपृच्छ को मैं नमस्कार करता हूं।

कुन्दकुन्दके विषयमें भाषाटीकाकार पंडित जयचन्द्रजी छाबड़ा तथा पं० 'वृन्द्रावनदासजी वगैर' अनेक विद्वानोंने भी बहुतसे अभ्यर्थनीय

१ जासके मुखारविन्दतें प्रकाश भासवृन्द
स्यादवादजैनवैन इंदु कुन्दकुन्दसे।
तासके अभ्यासतें विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ़ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे॥
देत हैं अशीस शीसनाय इंदु चंद जाहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुन्दकुन्दसे।
विशुद्धिवुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धिसिद्धिदा
हुए न, हैं न, होंहिंगे, मुनिंद कुन्दकुन्दसे॥
—कविवर वृन्दावनदासजी

वाक्योसे स्तुतिगान किया है जो कि अद्यावधि उसी रूपमें प्रवाहित होकर चला आरहा है। वह स्वामीजीके अलौकिक पांडित्य तथा उनकी पवित्र आत्मपरिणतिका ही प्रभाव है स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यने अवतरित होकर इस भारतभूमिको किस समय भूषित तथा पवित्रित किया इस विषयका निश्चितरूपसे अभीतक किसी विद्वान्ने निर्णय नहीं किया क्योंकि कितने ही विद्वानोने सिर्फ अदाजेसे इनको विक्रमकी पांचवी और कितनेही विद्वानोंने तीसरी शताब्दिका होना लिखा है तथा बहुतसे विद्वानोंने इनको विक्रमकी प्रथम शताब्दिसे होना निश्चित किया है और इस मत परही प्राय. प्रधान विद्वानोका झुकाव हे। संभव है कि यही निश्चित रूपमे परिणत हो। परंतु मेरा दिल इनको विक्रमकी पहली शताब्दिसे भी बहुत पहलेका कबूल करता है कारण कि स्वामीजीने जितने ग्रन्थ बनाये है उन किसीमें भी द्वादशानुप्रेक्षाके अतमे नाममात्रके सिवाय अपना परिचय नहीं दिया है परन्तु बोध पाहुडके अंतमे न० ६१ की एक यह गाथा उपलब्ध है—

> सद्दवियारो भूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
> सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥
>
> बोधपाहुड़॥ ६१॥

मुझे इस गाथाका अर्थ गाथाकी शब्द रचनासे ऐसा भी प्रतीत होता है।

जं—यत् जिणे—जिनेन, कहिय—कथितं, सो—तत्, भासासुत्तेसु—भाषासूत्रेषु (भाषारूपपरिणतद्वादशागशास्त्रेषु), सद्दवियारोभूओ—शब्दविकारो भूत· (शब्दविकाररूपपरिणतः) भद्दबाहुस्स—भद्रबाहो· सीसेणय· शिष्येनापि। तह—तथा, णायं—ज्ञातं, कहिय·कथित्तं·।

जो जिनेन्द्रदेवने कहा है वही द्वादशांगमें शब्दविकारसे परिणत हुआ है और भद्रबाहुके शिष्यने उसी प्रकार जाना है तथा कहा है।

इस गाथामें जिन भद्रबाहुका कथन आया है वे भद्रबाहु कौन हैं, इसका निश्चय करनेके लिये उनके आगेकी नं० ६२ की गाथा इस प्रकार है।

बारस अंगवियाणं चउदस पुवंग विउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयओ ॥
बोधपाहुड़ ॥ ६२ ॥

द्वादशांगके ज्ञाता तथा चौदह पूर्वांगका विस्तार रूपमें प्रसार करनेवाले गमकगुरू श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु जयवते रहो।

इन दोनों गाथाओंके पढ़नेसे पाठकोको अच्छी तरह विदित होगा कि ये बोध पाहुडकी गाथायें श्रुतकेवली भद्रबाहुके शिष्यकी कृति है। और ये अष्ट पाहुड ग्रथ निर्विवाद अवस्थामे कुन्दकुन्दस्वामीजीके बनाये हुए हैं इससे यह सिद्ध होता है किस्वामी कुन्दकुन्द श्रुतकेवलीभद्रबाहुके शिष्य थे ऐसी अवस्थामें कुन्दकुन्दका समय विक्रमसे बहुत बहुत पहले का पड़ता है।

परंतु इस गाथाका अर्थ मान्यवर श्री श्रुतसागर सूरिने दूसरे ही प्रकार किया है और उसीके आधार पर जयपुरनिवासी पं जयचन्द्रजी छाबड़ाने भी किया है इससे हम पूर्ण रूपमें यह निश्चय नहीं लिख सकते कि स्वामीजीका समय विक्रम शताब्दिसे पहलेका होगा क्योकि श्रुतसागर सूरिने जो अर्थ लिखा है वह किसी विशेष पट्टावली वगैर. के आधारसे लिखा होगा दूसरे वह एक प्रमाणिक तथा प्रतिभाशाली विद्वान् थे इस वजह उनके अर्थको अमान्य ठहराया जाय यह इस तुच्छ लेखककी शक्तिसे बाह्य है। फिर भी मुझे उस गाथाका जो अर्थ सूझा है वह स्पष्टतासे ऊपर लिखदिया है विद्वान् पाठक इसका समुचित विचार कर स्वामीजीके समय निर्णयकी गहरी गवेषणामें उतरकर समाजकी एक खास त्रुटिको पूरा करेंगे।

भगवत्कुन्दकुन्दस्वामीके बनाये हुये ग्रंथोमे समयसार १ प्रवचनसार, २ पंचास्तिकाय ३ नियमसार ४ रयणसार ५ अष्टपाहुड ६ द्वादशा-

नुप्रेक्षा ७ ये सात ग्रंथ देखने में आते हैं और ये सभी ग्रंथ छप भी गये हैं। अष्टपाहुडमें षट्पाहुडके ऊपर संस्कृत टीका श्री श्रुतसागरजी सूरिकी है जोकि बहुतही मनोज्ञ है और वह माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमालाके षट्प्राभृतादिसंग्रहमें प्रकाशित हो चुकी है। इस अष्ट-पाहुडग्रंथके ऊपर पं. जयचन्द्रजी छावड़ा जयपुर निवासीकृत दूसरी देशभाषामयवचनिका है जिसमें कि षट्पाहुड तक श्री श्रुतसागरसूरिकी टीकाका आश्रय है और दूसरे पाहुडों की उनने खुद लिखी है जिसका कि वर्णन उन्होंने खुद अपनी प्रशस्तिमें लिखा है और वह प्रशस्ति इस ग्रंथके अंतमें उनकी ज्यों की त्यों लगादी है उससे पाठक विशेषज्ञान इस विषयमें कर सकेंगे। पंडित जयचन्द्रजी छावड़ाके विषयमें हम-इस संस्थासे प्रकाशित प्रमेय रत्नमाला तथा आप्तमीमांसाकी भूमिकामें पहले लिख चुके हैं वहांसे पाठक उनके संबंधका कुछ विशेष परिचय कर सकते हैं। आप १९०० शताब्दीके एक प्रतिभाशाली विद्वान थे जिनका कि इस दिगम्बर समाजमें आज भी वैसा ही आदर होता है जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान् टोडरमलजीका होता है। पं. टोडरमलजीने थोड़े ही समयमें प्रतिभा शालिनी अलौकिक बुद्धिसे इस दि० जैन समाजका वह कल्याण किया है कि जिसका प्रतिफल स्वरूप यशोगान यह समाज आज तक गा रहा है। उसी प्रकार टोडरमलजीके समकक्ष पंडित जयचन्द्रजीका भी समाजके ऊपर वैसा ही उपकार है इसीसे समाजकी दृष्टिमें ये भी मान्य हैं पंडित जयचन्द्रजीका पांडित्य हरएक विषयमें अपूर्व ही था यह उनकी ग्रंथरूप कृतिसे पाठकोंको स्वयमेव ही विदित हो सकता है। तथा ये निरपेक्ष परोपकाररत ऐसे विद्वान् थे कि जिनकी बराबरीका उस समय जयपुर भरमें किसी धर्मका भी वैसा कोई विद्वान् नहीं था। तथा भाषा सर्वार्थसिद्धि की प्रशस्ति पढ़नेसे मालूम होता है कि आपके पुत्र नन्द-लालजी भी बड़े विद्वान् थे। उनकी प्रेरणासे तथा भव्यजनोंकी विशेष प्रेरणासे ही उन्होंने सर्वार्थसिद्धि वगैरः ग्रंथोंकी देशभाषामय वचनिका

लिखी है। आपके विषयमें वृद्ध पुरुषोंद्वारा आज तक भी एक प्रसिद्ध कहावत सुननेमे आती है कि एक समय जयपुरनगरमें शास्त्रार्थी अन्यधर्मी एक बड़ा विद्वान् जयपुरनगरके विद्वानोंको शास्त्रार्थमे जीतनेकी इच्छासे आया था उस समय उस विद्वान्से शास्त्रार्थ करनेके लिये जयपुर निवासी कोई भी विद्वान् उसके सन्मुख नहीं गया, ऐसी हालतमे नगरके विद्वानोंकी तथा नगरकी विद्वत्ताके विना अकीर्ति न हो जाय इस हेतु से तथा राज्यकी कीर्ति वाच्छक नगरके विद्वान् पच तथा राज्य कर्मचारी वर्गने पं० जयचन्द्रजी छावड़ासे जाकर सविनय निवेदन किया था कि इस विद्वान्को शास्त्रार्थ में आप ही जीत सकते हैं अत इस नगर की प्रतिष्ठा आप पर ही निर्भर है इसलिये शास्त्रार्थ करनेके निमित्त आप पधारें अन्यथा नगरकी बड़ी बदनामी होगी कि बड़े बड़े पंडितोंकी खानि इस विशाल नगरको एक परदेशी विद्वान् जीत गया। इस बातको सुनकर पंडित जयचन्द्रजी छावड़ाने जवाब दिया कि मैं तो जयपराजयकी अपेक्षासे शास्त्रार्थ करने किसीसे जाता नहीं फिर भी आप लोगोंका ऐसा ही आग्रह है तो मेरे इस पुत्र नदलालको ले जाइये यह उससे शास्त्रार्थ कर सकेगा। इस पर राजी हो कर सब लोग पं० नन्दलालजीको ले गये और प० नन्दलालजीने शास्त्रार्थ कर विदेशी विद्वान्को पराजित किया उसके प्रतिफल राज्य तथा नगरपंचकी तरफ से प० नन्दलालजी को कुछ उपाधि मिली थी उसके विषयमें प० जयचन्द्रजीने अवश्य कर्तव्य में उपकार मानकर उसका प्रतिफल स्वरूप लेना मानो अवश्य कर्तव्य तथा उपकारको नीचे गिराना है, इत्यादि वाक्य कह कर उस पदवीको वापिस करा दिया था।

इस कथानकसे पूरी तौर पर पता चलता है कि आप तथा आपके पुत्र कितने बड़े विद्वान् थे और आप ऐहिक आकाङ्क्षासे कितने निर्पेक्ष थे। आपके पिताका नाम मोतीरामजी था जातिके खडेलवाल श्रावक थे तथा छावड़ा गोत्र में आपका जन्म हुआ था आपकी जिस समय ११

वर्षकी अवस्था थी उस समय से जैन धर्मकी तरफ आपका विशेष चित्त आकर्षित हुआ। आप तेरह पंथके अनुयायी थे। तथा आप परकृत उपकारको विशेष मानते थे इसलिये आप में कृतज्ञता भी भरपूर थी क्योंकि पं० वंशीधरजी पं० टोडरमलजी पं० दौलतरामजी, त्यागी रायमल्लजी, ब्रती मायारामजी वगैरः की कृति तथा इनका उपकार रूप बखान आपने बड़े ही मनोज्ञ शब्दोंमें किया है। आपने गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, समयसार, अध्यात्मसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, परीक्षामुख आदि प्रमुख अनेक ग्रंथों का पठन तथा मनन किया था जिनका कि सब विषय खुलासा भाषा सर्वार्थसिद्धि वगैरःकी प्रशस्ति पढ़नेसे हो जाता है।

आपने जो जो अनुवादरूप ग्रंथ कृत की हैं उनका खुलासा हम प्रमेय रत्नमाला की भूमिकामें कर ही चुके हैं। सर्वार्थसिद्धि वगैर के समान आपने इस अष्टपाहुडमें भी बहुत ही भारी प्रयास किया है। आपने अति कठिन अर्थोंका भी सीधी हृदयग्राही भाषामें अनुवाद कर एक बहुत बड़ी समाजकी त्रुटिको पूरा किया है। इस कारण आपके विषय में समाजका आभारी होना योग्य ही है।

यह पाहुड ग्रंथ यथा नाम तथा विषयसे आठ अंशोंमें विभक्त है जैसे कि दर्शन पाहुडमें-दर्शन विषयक कथन, सूत्र पाहुडमें-सूत्र (शास्त्र) संबंधी कथन, इत्यादि। पंडितजीने इस ग्रंथकी टीकाकी समाप्ति विक्रम सम्वत् १८६७ भाद्रपद सुदि १३ को की है—जैसा कि आपने इस ग्रंथकी प्रशस्ति मे लिखा है.—

संवत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय॥

पण्डितजीके ग्रंथों में आदि तथा अंतके मंगलाचरणसे पता लगता है कि आप परम आस्तिक तथा देव गुरु शास्त्रमें पूर्ण भक्ति रखते थे। सत्य तो यह है कि जहां आस्तिकता तथा भक्ति है वहां सबकी उपकार कर्त्री बुद्धि भी है यही बात उक्त पंडितजीमें थी इसलिये उनमें भी ऐसी उपकर्त्री बुद्धि तथा अन्य मान्य गुण थे। इसीसे आप हमारे तथा सब समाजके मान्य हैं अब हम आकांक्षा करते हैं कि आप शीघ्रही अनंत तथा अक्षय सुखके अनंत काल भोगी हों। इस ग्रंथकी भूमिकाके साथ हमने पाठकोंके सुभीतेके लिये गाथा तथा विषय सूची भी लगादी है। अब हमारा अन्तिम निवेदन है कि अल्पज्ञता वश इस भूमिका तथा ग्रंथ संशोधनमें हमारी बहुतसी त्रुटि रह गई होंगी जिसका आप सुज्ञ मार्जन कर हमें क्षमा करेंगे।

मिती मगसिर सुदि ८
सं० १९८० विक्रम
ता० १५-१२-१९२३ ईस्वी सन्

विनीत—
रामप्रसाद जैन,
बम्बई।

विषय-सूची

विषय पत्र

दर्शनपाहुड।

भाषाकारकृत मंगलाचरण, देशभाषा लिखनेकी प्रतिज्ञा। ... १
भाषा वचनिका बनानेका प्रयोजन तथा लघुताके साथ प्रतिज्ञा, व मंगल २
कुन्दकुन्दस्वामिकृत भगवानको नमस्कार, तथा दर्शनमार्ग लिखनेकी सूचना। ३
धर्मकी जड़ सम्यग्दर्शन है, उसके बिना वंदनकी पात्रता भी नहीं। ४
भाषावचनिका और दर्शन तथा धर्मका स्वरूप। ... ५
दर्शनके भेद तथा भेदोंका विवेचन ६
दर्शनके उद्बोधक चिह्न। ७
सम्यक्त्वके आठगुण, और आठगुणोंका प्रशमादि चिह्नोंमें अन्तर्भाव १०
सम्यक्त्वके आठ अंग। १०
सम्यग्दर्शनके बिना बाह्य चारित्र मोक्षका कारण नहीं। १६
सम्यक्त्वके बिना ज्ञान तथा तप भी कार्यकारी नहीं।... १७
सम्यक्त्व बिना सर्व ही निष्फल है तथा उसके सद्भावमें सर्वही सफल है। १८
कर्मरजनाशक सम्यग्दर्शनकी शक्ति जल-प्रवाहके समान है। १९
जो दर्शनादित्रयमें भ्रष्ट हैं वे कैसे हैं। २०
भ्रष्ट पुरुष ही आप भ्रष्ट होकर धर्मधारको के निंदक होते हैं। २०
जो जिनदर्शनसे भ्रष्ट हैं वे मूलसे ही भ्रष्ट हैं और वे सिद्धिको भी प्राप्त नहीं कर सकते। २१

विषय	पत्र
जिन दर्शन ही मोक्षमार्गका प्रधान साधक रूप मूल है।	२२
दर्शन भ्रष्ट होकर भी दर्शन धारको से अपनी विनय चाहते हैं वे दुर्गतिके पात्र हैं।	२३
लज्जादिके भयसे दर्शन भ्रष्टका विनय करै है वह भी उसीके समान (भ्रष्ट) है।	२४
दर्शनकी (मतकी) हस्ति कहां पर कैसे है।	२५
कल्याण तथा अकल्याणका निश्चयायक सम्यग्दर्शन ही है।	२६
कल्याण अकल्याणके जाननेका फल,	२७
जिन वचन ही सम्यक्त्वके कारण होनेसे दुःखके नाशक हैं।	२७
जिनागमोक्त दर्शन (मत) के भेदोंका वर्णन।	२८
सम्यग्दष्टीका लक्षण।	२९
निश्चय व्यवहार भेदात्मक सम्यक्त्वका स्वरूप	३०
रत्नत्रयमें भी मोक्षसोपानकी प्रथम श्रेणि (पेड़ि) सम्यग्दर्शनही है अतएव श्रेष्ठ रत्न है तथा धारण करने योग्य है।	३१
विशेप न हो सके तो जिनोक्त पदार्थ श्रद्धान ही करना चाहिये क्योंकि वह जिनोक्त सम्यक्त्व है।	३१
जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप, विनय इन पंचात्मकतारूप हैं वे वंदना योग्य हैं तथा गुणधारकोंके गुणानुवाद रूप हैं।	३२
यथाजात दिगम्बर स्वरूपको देखकर मत्सर भावसे जो विनयादि नहीं करै है वह मिथ्यादष्टी है।	३२
नहीं वंदना करने योग्य कौन।	३३
वंदना करने योग्य कौन।	३६
मोक्षमें कारण क्या है	३७
गुणोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठपना।	३७
ज्ञानादि गुणचतुष्ककी प्राप्ति में ही निस्संदेह जीव सिद्ध है।	३८

विषय | पृष्ठ
सुरासुरवंद्य अमूल्य रत्न सम्यग्दर्शन ही है। ... ३९
सम्यग्दर्शनका माहात्म्य। ३९
स्थावर प्रतिमा अथवा केवल ज्ञानस्थ अवस्था। ... ४०
जंगम प्रतिमा अथवा कर्म देहादि नाशके अनन्तर निर्वाण प्राप्ति। ४१

सूत्रपाहुड

सूत्रस्थ प्रमाणीकता तथा उपादेयता। ४३
भव्य (त्व) फलप्राप्तिमें ही सूत्र मार्गकी उपादेयता ... ४४
देशभाषाकारनिर्दिष्ट अन्य ग्रंथानुसार आचार्य परंपरा। ४४
द्वादशांग तथा अंगवाह्य श्रुतका वर्णन। ४५
दृष्टान्त द्वारा भवनाशकसूत्रज्ञानप्राप्तिका वर्णन। ५१
सूत्रस्थ पदार्थोंका वर्णन और उसका जाननेवाला सम्यग्दृष्टी। ५३
व्यवहार परमार्थ भेदद्वयरूप सूत्रका ज्ञाता मलका नाशकर सुखको पाता है। ५३
टीकाद्वारा निश्चय व्यवहार नयवर्णित व्यवहार परमार्थ सूत्रका कथन ५४
सूत्रके अर्थ व पदसे भ्रष्ट है वह मिथ्यादृष्टि है। ५८
हरिहरतुल्यभी जो जिनसूत्रसे विमुख है उसकी सिद्धि नहीं। ५९
उत्कृष्ट शक्तिधारक संघनायक मुनि भी यदि जिनसूत्रसे विमुख है तो वह मिथ्यादृष्टि ही है। ६०
जिनसूत्रमें प्रतिपादित ऐसा मोक्षमार्ग और अन्य अमार्ग। ६०
सर्वारंभ परिग्रहसे विरक्त हुआ जिनसूत्रकथित संयमधारक सुरासुरादिकर वदनीक है। ६१
अनेक शक्तिसहित परीषहोंके जीतनेवालेही कर्मका क्षय तथा निर्जरा करते हैं वे वंदन योग्य हैं। ६२
इच्छाकार करने योग्य कौन? ६३
इच्छाकार योग्य श्रावकका स्वरूप। ६३

विषय पत्र

अन्य अनेक धर्माचरण होने पर भी इच्छाकारके अर्थसे अज्ञ है उसको भी सिद्धि नहीं। ६४

इच्छाकार विषयक दृढ उपदेश। ६४

जिनसूत्रके जाननेवाले मुनियोंके स्वरूपका वर्णन। ६५

यथाजात रूपतामें अल्पपरिग्रहग्रहणसे भी क्या दोष होता है उसका कथन। ६६

जिनसूत्रोक्त मुनिअवस्था परिग्रह रहित ही है परिग्रहसत्तामें निंद्य है ६८

प्रथम वेष मुनिका है तथा जिन प्रवचनमें ऐसे मुनि वंदना योग्य हैं ६८

दूसरा उत्कृष्ट वेष श्रावकका है। ६९

तीसरा वेष स्त्रीका है। ७०

वस्त्रधारकोंके मोक्ष नहीं, चाहे वह तीर्थंकर भी क्यों न हो मोक्ष नग्न (दिगम्बर) अवस्थामें ही है। ७०

स्त्रियोंके नग्न दिगम्बर दीक्षाके अवरोधक कारण। ७१

सम्यक्त्वसहित चारित्र धारक स्त्री शुद्ध है पापरहित है। ७२

स्त्रियोंके ध्यानकी सिद्धि भी नहीं। ७२

जिन सूत्रोक्त मार्गानुगामी ग्राह्यपदार्थोंमें से भी अल्प प्रमाण ग्रहण करें हैं तथा जो सर्व इच्छाओंसे रहित हैं वे सर्व दुःख रहित हैं ७३

चारित्र पाहुड

नमस्कृति तथा चारित्र पाहुड लिखनेकी प्रतिज्ञा। ७५

सम्यग्दर्शनादित्रयका अर्थ। ७७

ज्ञानादिभावत्रयकी शुद्धिके अर्थ दो प्रकारका चारित्र। ७७

चारित्रके सम्यक्त्व-चरण संयम-चरण भेद। ७८

सम्यक्त्व-चरणके शंकादिमलोंके त्यागनिमित्त उपदेश। ७९

अष्ट अंगोंके नाम। ८१

निःशंकित आदि अष्टगुणविशुद्ध जिनसम्यक्त्वका आचरण सम्य-

विषय	पत्र
क्त्व चरण चारित्र है और वह मोक्षके स्थानके लिये है। ..	८२
सम्यक्त्वचरण चारित्र पूर्वक संयमचरण चारित्र शीघ्रही मोक्षका कारण है।	८३
सम्यक्त्वचरण चारित्रसे भ्रष्ट संयमचरणधारी भी मोक्षको नहीं प्राप्त करता।	८३
सम्यक्त्वचरणके चिह्न।	८४
सम्यक्त्व त्याग के चिह्न तथा कुदर्शनोंके नाम	८५
उत्साह भावनादि होने पर सम्यक्त्वका त्याग नहीं हो सकता है।	८६
मिथ्यात्वादित्रय त्यागने का उपदेश।	८७
विशुद्धध्यानके लिये विशेष उपदेश।	८७
मिथ्यामार्गमें प्रवर्त्ताने वाले दोष।	८८
चारित्रदोषको मार्जन करनेवाले गुण।	८८
मोहरहित दर्शनादित्रय मोक्षके कारण हैं।	९०
संक्षेपतासे सम्यक्त्वका महात्म्य, गुणश्रेणी निर्जरा।	९०
संयमचरणके भेद और भेदोंका संक्षेपतासे वर्णन।	९१
सागारसंयमचरणके ११ स्थान अर्थात् ग्यारह प्रतिमा।	९२
सागारसंयमचरणका कथन	९२
पंच अणुव्रतका स्वरूप	९४
तीन गुणव्रतोंका स्वरूप।	९५
शिक्षाव्रतके चार भेद।	९५
यतिधर्मप्रतिपादनकी प्रतिज्ञा।	९६
यतिधर्मकी सामग्री।	९७
पंचेन्द्रियसंवरणका स्वरूप।	९७
पांचव्रतोंका स्वरूप	९८
पंचव्रतोंको महाव्रत संज्ञा किस कारणसे है।	९८
अहिंसाव्रतकी पांच भावना।	९९

विषय	पत्र
सत्यव्रतकी ५ भावना।	९६
अचौर्यव्रतकी भावना।	१००
ब्रह्मचर्यकी भावना।	१०१
अपरिग्रह-महाव्रतकी ५ भावना।	१०१
संयमशुद्धिकी कारण पच समिति।	१०२
ज्ञानका लक्षण तथा आत्माही ज्ञान स्वरूप है।	१०२
मोक्षमार्गस्वरूप श्रेष्ठ ज्ञानीका लक्षण।	१०३
परमश्रद्धापूर्वक-रत्नत्रयका ज्ञाताही मोक्षका भागी है।	१०३
निश्चयचारित्ररूप ज्ञानके धारक सिद्ध होते हैं।	१०४
इष्टअनिष्टके साधक गुणदोषका ज्ञान श्रेष्ठ ज्ञानसेही होता है सम्यग्ज्ञान सहित चारित्रका धारक शीघ्रही अनुपम सुखको प्राप्त होता है।	१०५
संक्षेपतासे चारित्रका कथन।	१०६
चारित्र पाहुडकी भावनाका फल तथा भावनाका उपदेश।	१०६

बोध पाहुड

आचार्यकी स्तुति और ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा।	१०९
आयतन आदि ११ स्थलोंके नाम।	११०
आयतनत्रयका लक्षण।	१११
टीकाकारकृत आयतनका अर्थ तथा इनसे विपरीत अन्यमत-स्वीकृतका निषेध।	१११
चैत्यगृहका कथन।	११३
जंगमथावर रूप जिनप्रतिमाका निरूपण।	११४
दर्शनका स्वरूप।	११७
जिनबिंबका निरूपण।	११८
जिनमुद्राका स्वरूप।	१२०
ज्ञानका निरूपण।	१२१
दृष्टान्तद्वारा ज्ञानका दृढीकरण।	१२१

विषय	पत्र
विनयसंयुक्तज्ञानीके मोक्षकी प्राप्ति होती है।	१२२
मतिज्ञानादि द्वारा मोक्षलक्ष्यसिद्धिमें बाण आदि दृष्टान्तका कथन।	१२२
देवका स्वरूप।	१२३
धर्म, दीक्षा, और देवका स्वरूप।	१२३
तीर्थका स्वरूप।	१२४
अरहंतका स्वरूप।	१२६
नामकी प्रधानतासे गुणोंद्वारा अरहंत का कथन।	१२७
दोषोंके अभावद्वारा ज्ञानमूर्ति अरहंतका कथन।	१२८
गुणस्थानादि पंच प्रकारसे अरहंतकी स्थापना पंच प्रकार है।	१२९
गुणस्थानस्थापनामें अरहंतका निरूपण।	१३०
मार्गणाद्वारा अरहंतका निरूपण।	१३१
पर्याप्तिद्वारा अरहंतका कथन।	१३२
प्राणोंद्वारा अरहंतका कथन।	१३२
जीवस्थानद्वारा अरहंतका निरूपण।	१३३
द्रव्यकी प्रधानताद्वारा अरहंतका निरूपण।	१३४
भावकी प्रधानतासे अरहंतका निरूपण।	१३५
अरहंतके भावका विशेष विवेचन।	१३५
प्रव्रज्या (दीक्षा) कैसे स्थानपर निर्वाहित होती है तथा उसका धारकपात्र कैसा होता है।	१३८
दीक्षाका अंतरंग स्वरूप तथा दीक्षाविषयविशेषकथन।	१४१
दीक्षाका बाह्य स्वरूप, तथा विशेषकथन।	१४४
प्रव्रज्याका संक्षिप्त कथन।	१४९
बोधपाहुड (षट्जीवहितकर) का संक्षिप्त कथन।	१४९
सर्वज्ञप्रणीत तथा पूर्वाचार्यपरंपरागत–अर्थका प्रतिपादन भद्रबाहुश्रुतकेवलिके शिष्यने किया है ऐसा कथन।	१५४
–श्रुतिकेवलि भद्रबाहुकी स्तुति।	१५४

विषय | पत्र

भावपाहुड

जिनसिद्धसाधुवंदन तथा भावपाहुड कहनेकी सूचना। १५६
द्रव्यभावरूपलिंगमें गुणदोषोका उत्पादक भावलिंगही परमार्थ है। १५७
बाह्यपरिग्रह का त्याग भी अंतरंगपरिग्रहके त्यागमेंही सफल है। १५९
करोडोभव तप करने परभी भावके विना सिद्धि नहीं। १५९
भावके विना (अशुद्ध परिणतिमें) बाह्य त्याग कार्यकारी नहीं। १६०
मोक्षमार्गमें प्रधान भावही है अन्य अनेक लिंग धारनेसे सिद्धि नहीं। १६१
अनादि कालसे अनंतानंत संसारमें भावरहित बाह्यलिंग अनंतवार छोड़े तथा ग्रहण किये हैं। १६१
भावके विना सांसारिक अनेक दुःखोंको प्राप्त हुआ है इसलिये जिनोक्त भावनाकी भावना करो। १६२
नर्कगतिके दुःखोका वर्णन। १६२
तिर्यंच-गतिके दुःखोंका वर्णन। १६३
मनुष्यगतिके दुःखोंका वर्णन। १६३
देवगतिके दुःखोका वर्णन। १६४
द्रव्यलिंगी कंदर्पी आदि पांच अशुभ भावनाके निमित्तसे नीच देव होता है। १६५
कुभावनारूप भाव कारणोंसे अनेकवार अनंतकाल पार्श्वस्थ भावना भाकर दुखी हुआ। १६६
हीनदेव होकर महर्द्धिकदेवोकी विभूति देखकर मानसिक दुःख हुआ। १६६
मदमत्त अशुभभावनायुक्त अनेक वार कुदेव हुआ। १६६
गर्भजन्य दुःखोंका वर्णन। १६७
जन्म धारणकर अनंतानंत वार इतनी माताओंका दूध पीया कि जिसकी तुलना समुद्रजलसे भी अधिक है। १६८

विषय	पत्र
अनत वार मरणसे माताओंके अश्रुओंकी तुलना समुद्र जलसे अधिक है।	१६८
अनंत जन्मके नख तथा केशोंकी राशि भी मेरुसे अधिक है।	१६६
जल थल आदि अनेक तीन भुवनके स्थानोंमें बहुत वार निवास किया।	१६९
जगतके समस्त पुद्गलोंको अनतवार भोगा तो भी तृप्ति नहीं हुई।	१७०
तीन भुवन संबंधी समस्त जल पीया तो भी प्यास न शांत हुई।	१७०
अनंत भवसागर अनेक शरीर धारण किये जिनका कि प्रमाण भी नहीं।	१७१
विषादि द्वारा मरणकर अनेकवार अपमृत्युजन्य तीव्र दुःख पाये।	१७२
निगोदके दुःखोंका वर्णन।	१७२
क्षुद्र भवोंका कथन।	१७३
रत्नत्रय धारण करनेका उपदेश।	१७४
रत्नत्रयका सामान्य लक्षण।	१७४
जन्म मरण नाशक सुमरणका उपदेश।	१७५
टीकाकार वर्णित १७ सुमरणोंके भेद तथा सबके लक्षण।	१७५
द्रव्य श्रमणका त्रिलोकीमें ऐसा कोई भी परमाणु मात्र क्षेत्र नहीं जहा कि जन्म मरणको प्राप्त नहीं हुआ भावलिंगके विना बाह्य जिनलिंग प्राप्तिमें भी अनंत काल दुःख सहे।	१७८
पुद्गलकी प्रधानतासे भ्रमण।	१७९
क्षेत्रकी प्रधानतासे भ्रमण और शरीरके रोग प्रमाणकी अपेक्षासे दुःखका वर्णन।	१८०
अपवित्र गर्भ-निवासकी अपेक्षा दुःखका वर्णन।	१८१
बाल्य अवस्था संबंधि वर्णन।	१८२
शरीरसंबंधि अशुचित्वका विचार।	१८३

विषय

कुटुम्बसे छूटना वास्तविक छूटना नहीं किंतु भावसे छूटनाही वास्तविक छूटना है।

मुनि बाहुबलीजीके समान भावशुद्धिके बिना बहुत कालपर्यंत सिद्धि न भई।

मुनि पिंगलका उदाहरण तथा टीकाकार वर्णित कथा।

वशिष्ठ मुनिका उदाहरण और कथा।

भावके विना चौरासी योनियोंमें भ्रमण।

भावसेही लिंगी होता है द्रव्यसे नहीं।

बाहु मुनिका दृष्टान्त और कथा।

द्वीपायन मुनिका उदाहरण और कथा।

भावशुद्धिकी सिद्धिमें शिवकुमार मुनिका दृष्टान्त तथा कथा।

भावशुद्धि बिना विद्वत्ताभी कार्यकारी नहीं उसमें उदाहरण-अभव्यसेन मुनि।

विद्वत्ता विना भी भावबुद्धि कार्यकारिणी है उसका दृष्टान्त-शिवभूति तथा शिवभूतिकी कथा।

नग्नत्वकी सार्थकता भावसेही है।

भावके विना कोरा नग्नत्व कार्यकारी नहीं।

भावलिंगका लक्षण।

भावलिंगीके परिणामोंका वर्णन।

मोक्षकी इच्छामें भावशुद्ध आत्माका चिंतवन।

आत्म चिंतवन भी निजभाव सहित कार्यकारी है।

सर्वज्ञ प्रतिपादित जीवका स्वरूप।

जिसने जीवका अस्तित्व अंगीकार किया है उसीके सिद्धि है।

जीवका स्वरूप वचन गम्य न होने पर भी अनुभव गम्य है।

पंचप्रकार ज्ञान भी भावनाका फल है।

विषय	पत्र
भाव विना पठन श्रवण कार्यकारी नहीं।	२०१
बाह्य नग्नपने करि ही सिद्धि होय तो तिर्यंचआदि सभी नग्न है।	२०२
भाव विना केवल नग्नपना निष्फलही है।	२०३
पापमलिन कोरा नग्न मुनि अपयशका ही पात्र है।	२०३
भावलिंगी होनेका उपदेश।	२०४
भावरहित कोरा नग्नमुनि निर्गुण निष्फल।	२०४
जिनोक्त समाधि बोधि द्रव्यलिंगीके नहीं।	२०५
भावलिंग धारणकर द्रव्यलिंग धारण करना ही मार्ग है।	२०६
शुद्धभाव मोक्षका कारण अशुद्ध भाव संसारका कारण।	२०६
भावके फलका माहात्म्य।	२०७
भावोंके भेद और उनके लक्षण।	२०७
जिनशासनका माहात्म्य।	२०८
दर्शन विशुद्धि आदि भाव शुद्धि तीर्थंकर प्रकृतिकी भी कारण है।	२०९
विशुद्धिनिमित्त आचरणका उपदेश।	२१०
जिनलिंगका स्वरूप।	२१०
जिनधर्मकी महिमा।	२१२
प्रवृत्ति निवृत्तिरूप धर्मका कथन।	२१२
पुण्य प्रधानताकर भोगका निमित्त है कर्मक्षयका नहीं।	२१३
मोक्षका कारण आत्मीक स्वभावरूप धर्मही है।	२१४
आत्मीक शुद्ध परिणतिके विना अन्य समस्त पुण्य परिणति सिद्धिसे रहित हैं।	२१४
आत्मस्वरूपका श्रद्धान तथा ज्ञान मोक्षका साधक है ऐसा उपदेश	२१५
बाह्य हिंसादि क्रिया विना सिर्फ अशुद्ध भाव भी सप्तम नरकका कारण है उसमें उदाहरण—तंदुल मत्स्यकी कथा।	२१६
भावविना बाह्य परिग्रहका त्याग निष्फल है।	२१७
भावशुद्धि निमित्तक उपदेश।	२१८

विषय	पत्र
भावशुद्धिका फल।	२१८
भावशुद्धिके निमित्त परीपहोके जीतनेका उपदेश।	२२०
परीषह विजेता उपसर्गोंसे विचलित नहीं होता उसमें दृष्टान्त।	२२०
भावशुद्धि निमित्त भावनाओका उपदेश।	२२१
भावशुद्धिमे ज्ञानाभ्यासका उपदेश।	२२१
भावशुद्धिके निमित्त ब्रह्मचर्यके अभ्यासका कथन।	२२२
भावसहित चार आराधनाको प्राप्त करता है भावरहित संसारमें भ्रमण करै है।	२२३
भाव तथा द्रव्यके फलका विशेष।	२२३
अशुद्ध भावसेही दोष दूषित आहार किया फिर उसीसे दुर्गतिके दुःख सहे।	२२४
सचित्त त्यागका उपदेश।	२२५
पंचप्रकार विनय पालनका उपदेश।	२२६
वैयावृत्यका उपदेश।	२२७
लगे हुए दोषोको गुरुके सन्मुख प्रकाशित करनेका उपदेश	२२८
क्षमाका उपदेश।	२२८
क्षमाका फल।	२२९
क्षमाके द्वारा पूर्व संचित क्रोधके नाशका उपदेश।	२३०
दीक्षाकाल आदिकी भावनाका उपदेश।	२३०
भावशुद्धिपूर्वक ही चार प्रकारका बाह्य लिंग कार्यकारी है।	२३१
भाव विना आहारादि चारि संज्ञाके परवश होकर अनादिकाल संसार भ्रमण होता है।	२३२
भावशुद्धि पूर्वक बाह्य उत्तर गुणोंकी प्रवृत्तिका उपदेश।	२३२
तत्वकी भावनाका उपदेश।	२३३
तत्वभावना विना मोक्ष नहीं।	२३५
पापपुण्यरूपबंध तथा मोक्षका कारण भावही है।	२३६

विषय	पत्र
पापबंधके कारणोंका कथन।	२३६
पुण्यबंधके कारणोंका कथन।	२३७
भावना सामान्यका कथन।	२३८
उत्तरभेदसहित शीलव्रत भावनेका उपदेश।	२३९
टीकाकारद्वारा वर्णित शीलके अठारह हजार भेद तथा चौरासी लाख उत्तर गुणोंका वर्णन, गुणस्थानों की परिपाटी।	२३९
धर्मध्यान शुक्लध्यानके धारण तथा आर्तरौद्रके त्यागका उपदेश	२४३
भवनाशक ध्यान भावश्रमणके ही है।	२४४
ध्यानस्थितिमें दृष्टान्त।	२४४
पंचगुरुके ध्यावनेका उपदेश।	२४५
ज्ञानपूर्वक भावना मोक्षका कारण है।	२४६
भावलिंगीके संसार परिभ्रमणका अभाव होता है।	२४७
भाव धारण करनेका उपदेश तथा भाव लिंगी उत्तमोत्तम पद तथा उत्तमोत्तम सुखको प्राप्त करता है।	२४८
भावश्रमणको नमस्कार।	२४९
देवादि ऋद्धि भी भावश्रमणको मोहित नहीं करतीं तो फिर अन्य संसारके सुख क्या मोहित कर सकते हैं।	२४९
जबतक जरारोगादिका आक्रमण न हो तबतक आत्म कल्याण करो।	२५०
अहिंसा धर्मका उपदेश।	२५१
चार प्रकारके मिथ्यात्वियोंके भेदोंका वर्णन।	२५३
अभव्य विषयक कथन।	२५५
मिथ्यात्व दुर्गतिका निमित्त है।	२५६
तीनसै त्रेसठि प्रकारके पाखंडियोंके मतको छुड़ानेका और जिनमत में प्रवृत्त करनेका उपदेश।	२५७
सम्यग्दर्शनबिना जीव चलते हुए मुरदेके समान है, अपूज्य है।	२५८

विषय	पत्र
सम्यक्त्वकी उत्कृष्टता।	२५९
सम्यग्दर्शनसहित लिंगकी प्रशंसा।	२६०
दर्शनरत्नके धारण करनेका आदेश।	२६०
असाधारण धर्मों द्वारा जीवका विशेष वर्णन।	२६१
जिनभावना परिणत जीव घातिकर्मका नाश करै है।	२६३
घातिकर्मका नाश अनत चतुष्टयका कारण है।	२६४
कर्मरहित आत्माही परमात्मा है उसके कुछ एक नाम।	२६४
देवसे उत्तम बोधिकी प्रार्थना।	२६६
जो भक्तिभावसे अरहंतको नमस्कार करते वे शीघ्रही संसार वेलिका नाश करते हैं।	२६६
जलस्थित कमलपत्रके समान सम्यग्दृष्टी विषयकषायोंसे अलिप्त है	२६७
भावलिंग विशिष्ट द्रव्यलिंगी मुनि कोरा द्रव्यलिंगी है और श्रावकसे भी नीचा है।	२६८
धीर वीर कौन।	२६९
धन्य कौन।	२६९
मुनिमहिमाका वर्णन।	२७०
मुनि सामर्थ्यका वर्णन।	२७०
मूलोत्तर-गुण-सहित मुनि जिनमत आकाशमे तारागण सहित पूर्ण चद्रसमान है।	२७१
विशुद्धभावके धारक ही तीर्थंकर चक्री आदिके पद तथा सुख प्राप्त करैं हैं।	२७२
विशुद्ध भाव धारक ही मोक्ष सुखको प्राप्त होते हैं।	२७२
शुद्धभावनिमित्त आचार्यकृत सिद्ध परमेष्ठीकी प्रार्थना।	२७३
चार पुरुषार्थ तथा अन्य व्यापार सर्व भावमें ही परिस्थित हैं ऐसा संक्षिप्त वर्णन।	२७४
भाव प्राभृतके पढ़ने सुनने मननकरनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ऐसा उपदेश। तथा पं. जयचन्द्रजी कृत ग्रंथका देशभाषामें सार।	२७५

विषय	पत्र

मोक्षपाहुड

मंगलनिमित्त देवको नमस्कार।	२७८
देव नमस्कृति पूर्वक मोक्षपाहुड लिखनेकी प्रतिज्ञा।	२७९
परमात्माके ज्ञाता योगीको मोक्ष प्राप्ति।	२७९
आत्माके तीन भेद।	२८०
आत्मत्रयका स्वरूप।	२८१
परमात्माका विशेष स्वरूप।	२८२
बहिरात्माको छोडकर परमात्माको ध्यानेका उपदेश।	२८२
बहिरात्माका विशेष कथन।	२८३
मोक्ष की प्राप्ति किसके है।	२८५
बंधमोक्षके कारणका कथन।	२८६
कैसा हुआ मुनि कर्मका नाश करै है।	२८६
कैसा हुआ कर्मका बंध करै है।	२८७
सुगति और दुर्गतिके कारण।	२८८
परद्रव्यका कथन।	२८९
स्वद्रव्यका कथन।	२८९
निर्वाणकी प्राप्ति किस द्रव्यके ध्यानसे होती है।	२९०
जो मोक्ष प्राप्त कर सकता है उसे स्वर्ग प्राप्ति सुलभ है।	२९०
इसमें दृष्टान्त।	२९१
स्वर्गमोक्षके कारण।	२९२
परमात्मस्वरूप प्राप्तिके कारण और उस विषयका दृष्टान्त।	२९२
दृष्टान्त द्वारा श्रेष्ठ अश्रेष्ठका वर्णन।	२९३
आत्मध्यानकी विधि।	२९४
ध्यानावस्थामें मौनका हेतुपूर्वक कथन	२९६
योगीका कार्य।	२९६
कोन कहां सोता तथा जगता है।	२९७

विषय	पत्र
ज्ञानी योगीका कर्तव्य।	२९८
ध्यान अध्ययनका उपदेश।	२९९
आराधक तथा आराधना की विधिके फलका कथन।	२९९
आत्मा कैसा है।	३००
योगीको रत्नत्रयकी आराधनासे क्या होता है।	३०१
आत्मामें रत्नत्रयका सद्भाव कैसे।	३०१
प्रकारान्तरसे रत्नत्रयका कथन।	३०२
सम्यग्दर्शनका प्राधान्य।	३०२
सम्यग्ज्ञानका स्वरूप।	३०३
सम्यक् चारित्रका लक्षण।	३०५
परमपदको प्राप्त करनेवाला कैसा हुआ होता है।	३०६
कैसा हुआ आत्माका ध्यान करै है।	३०६
कैसा हुआ उत्तम सुखको प्राप्त करता है।	३०७
कैसा हुआ मोक्षसुखको प्राप्त नहीं करता।	३०८
जिनमुद्रा क्या है।	३०९
परमात्माके ध्यानसे योगीके क्या विशेषता होती है।	३०९
चारित्रविषयक विशेष कथन।	३१०
जीवके विशुद्ध अशुद्ध कथनमें दृष्टान्त।	३११
सम्यक्तसहित सरागी योगी कैसा।	३१२
कर्मक्षयकी अपेक्षा अज्ञानी तपस्वीसे ज्ञानी तपस्वीमें विशेषता।	३१२
अज्ञानी ज्ञानीका लक्षण।	३१३
ऐसे लिंगग्रहणसे क्या सुख।	३१५
सांख्यादि अज्ञानी क्यों तथा जैनमें ज्ञानित्व किस कारणसे।	३१६
ज्ञानतपकी संयुक्तता मोक्षकी साधक है पृथक २ नहीं।	३१७
स्वरूपाचरणचारित्रसे भ्रष्ट कौन।	३१८

विषय	पत्र
ज्ञानभावना कैसी कार्यकारी है ।	३१९
किनको जीतकर निज आत्माका ध्यान करना ।	३१९
ध्येय आत्मा कैसा ।	३२०
उत्तरोत्तर दुःखसे किनकी प्राप्ति होती है ।	३२०
जब तक विषयोमे प्रवृत्ति है तब तक आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं ।	३२१
कैसा हुआ संसारमें भ्रमण करै है ।	३२१
चतुर्गतिका नाश कौन करते हैं ?	३२२
अज्ञानी विषयक विशेष कथन ।	३२३
वास्तविक मोक्षप्राप्ति कौन करते हैं ?	३२३
कैसा राग संसारका कारण है ।	३२४
समभावसे चारित्र ।	३२५
ध्यान योगके समयके निषेधक कैसे है ।	३२५
पंचमकालमें धर्म ध्यान नहीं मानें हैं वे अज्ञानी हैं ।	३२७
इस समय भी रत्नत्रय शुद्धिपूर्वक आत्मध्यान इंद्रादि फलका दाता है	३२७
मोक्षमार्गसे च्युत कौन ?	३२८
मोक्षमार्गी मुनि कैसे होते हैं ?	३३०
मोक्षप्रापक भावना ।	३३०
फिर मोक्षमार्गी कैसे ।	३३१
निश्चयात्मक ध्यानका लक्षण तथा फल ।	३३१
पापरहित कैसा योगी होता है ।	३३२
श्रावकोंका प्रधानकर्तव्य निश्चलसम्यक्त्व प्राप्ति तथा उसका ध्यान और ध्यानका फल ।	३३३
जो सम्यक्त्वको मलिन नहीं करते वे कैसे कहे जाते हैं ।	३३५
सम्यक्त्वका लक्षण ।	३३६
सम्यक्त्व किसके है ।	३३६

विषय	पत्र
मिथ्यादृष्टीका लक्षण।	३३८
मिथ्याकी मान्यता सम्यग्दृष्टीके नहीं। तथा दोनोंका परस्पर विपरीत धर्म।	३३८
कैसा हुआ मिथ्यादृष्टी संसारमें भ्रमें है।	३३९
मिथ्यात्वी लिंगीकी निरर्थकता।	३४०
जिनलिंगका विरोधक कौन?	३४१
आत्मस्वभावसे विपरीतका सभी व्यर्थ है।	३४२
ऐसा साधु मोक्षकी प्राप्ति करता है।	३४४
देहस्थ आत्मा कैसा जानने योग्य है।	३४५
पंचपरमेष्ठी आत्मामें ही हैं अतः वही शरण है।	३४६
चारो आराधना आत्मा ही में हैं अतः वही शरण हैं।	३४६
मोक्ष पाहुड पढने सुननेका फल।	३४७
टीकाकारकृत मोक्षपाहुडका सार रूप कथन।	३४८
ग्रंथके अलावा टीकाकारकृत पंच नमस्कार मंत्र विषयक विशेष वर्णन	३५१
लिंगपाहुड।	
अरहंतोंको नमस्कार पूर्वक लिंग पाहुड बनानेकी प्रतिज्ञा।	३५६
भावधर्मही वास्तविक लिंग प्रधान है।	३५७
पापमोहित दुर्बुद्धि नारदके समान लिंगकी हंसी करें हैं।	३५८
लिंग धारणकर कुक्रिया करें हैं वे तिर्यंच हैं।	३५८
ऐसा तिर्यंच योनि है मुनि नहीं।	१५९
लिंगरूपमें खोटी क्रिया करनेवाला नरकगामी है।	३६०
लिंगरूपमें अब्रह्मका सेवनेवाला संसारमें भ्रमण करता है।	३६०
कौनसा लिंगी अनंत संसारी है।	३६१
किस कर्मका करनेवाला लिंगी नरकगामी है।	३६१
फिर कैसा हुआ तिर्यंच योनि है।	३६३
कैसा जिनमार्गी श्रमण नहीं हो सकता।	३६४

विषय

चोरके समान फँसता मुनि कहा जाता है।
लिंगरूपमें कैसी क्रियायें तिर्यंचताकी द्योतक हैं।
भावरहित श्रमण नहीं है।
स्त्रियोंका संसर्ग विशेष रखनेवाला श्रमण नहीं पार्श्वस्थसे भी गिरा
पुंश्चलीके घर भोजन तथा उसकी प्रशंसा करनेवाला ज्ञान भाव रहित है श्रमण नहीं।
लिंगपाहुड धारण करनेका तथा पढ़नेका फल।

शीलपाहुड।

महावीर स्वामीको नमस्कार और शीलपाहुड लिखनेकी प्रतिज्ञा। ३७२
शील और ज्ञान परस्पर विरोध रहित हैं। शीलके बिना ज्ञान भी नहीं। ३७३
ज्ञान होनेपर भी ज्ञान भावना विषय विरक्ति उत्तरोत्तर कठिन है ३७४
जबतक विषयोंमें प्रवृत्ति है तबतक ज्ञान नहीं तथा कर्मोंका नाश भी नहीं। ३७५
कैसा आचरण निरर्थक है। ३७६
महाफल देनेवाला कैसा आचरण होता है। ३७६
कैसे हुए संसारमें भ्रमें हैं। ३७७
ज्ञानप्राप्ति पूर्वक कैसे आचरण संसारका नाश करते हैं। ३७८
ज्ञानद्वारा शुद्धिमें सुवर्णका दृष्टांत। ३७८
विषयोंमें आसक्ति किस दोषसे है। ३७९
निर्वाण कैसे होती है। ३७९
नियमसे मोक्षप्राप्ति किसके है। ३८०
किनका ज्ञान निरर्थक है। ३८१
कैसे पुरुष आराधना रहित होते हैं। ३८१
किनका मनुष्यजन्म निरर्थक है। ३८२
शास्त्रोंका ज्ञान होनेपर भी शील ही उत्तम है। ३८३

विषय	पत्र
शील मंडित देवोंके भी प्रिय होते हैं।	३८४
मनुष्यत्व किनका सुजीवित है।	३८४
शीलका परिवार।	३८५
तपादिक सब शीलही है।	३८६
विषयरूपी विष ही प्रबल विष है।	३८६
विषयासक्त हुआ किस फलका प्राप्त होता है।	३८७
शीलवान तुपके समान विषयोका त्याग करता है।	३८८
अगके सुदर अवयवोंसे भी शील ही सुदर है।	३८९
मूढ तथा विषयी संसारमेंही भ्रमण करें हैं।	३९०
कर्मबध कर्मनाशक गुण सब गुणोंकी शोभा शीलसे है।	३९१
मोक्षका शोध करनेवालेही शोध्य हैं।	३९२
शीलके विना ज्ञान कार्यकारी नहीं उसका सोदाहरण वर्णन।	३९२
नारकी जीवोंको भी शील अर्हद्विभूतिसे भूषित करता है उसमें वर्द्धमान जिनका दृष्टात।	३९४
मोक्षमे मुख्य कारण शील।	३९४
अग्निके समान पंचाचार कर्मका नाश करते हैं।	३९५
कैसे हुए सिद्ध गतिको प्राप्त करते हैं।	३९५
शीलवान महात्माका जन्मवृक्ष गुणोंसे विस्तारित होता है।	३९६
किसके द्वारा कौन बोधिकी प्राप्ति करता है।	३९७
कैसे हुए मोक्षसुखको पाते हैं।	३९८
आराधना कैसे गुण प्रगट करती है।	३९८
ज्ञान वही है जो सम्यक्त्व और शीलसहित है।	३९९
टीकाकारकृत शील पाहुडका सार।	४००
टीकाकारकी प्रशस्ति।	४०२

* नमः सिद्धेभ्यः *

—ः स्वामि कुन्दकुन्दाचार्य विरचित ः—

अष्टपाहुड

दोहा

श्रीमत वीरजिनेशरवि मिथ्यातम हरतार।
विघनहरन मंगलकरन वंदूं वृषकरतार ॥ १ ॥
वानी वंदूं हितकरी जिनमुखनभतैं गाजि।
गणधरगणश्रुतभूझरी बूंदवर्णपद साजि ॥ २ ॥
गुरु गौतम वंदूं सुविधि संयमतपधर और।
जिनितैं पंचमकालमैं वरत्यो जिनमत दौर ॥ ३ ॥
कुन्दकुन्दमुनिकूं नमूं कुमतध्वांतहर भान।
पाहुड ग्रंथ रचे जिनहिं प्राकृत वचन महान ॥ ४ ॥
तिनिमैं कई प्रसिद्ध लखि करूं सुगम सुविचार।
देशवचनिकामय लिखूं भव्यजीवहितधार ॥ ५ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृतगाथाबध पाहुडग्रन्थ हैं तिनिमैंसूं केईकनिकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है,—

तहां प्रयोजन ऐसा है जो इस हुंडावसर्पिणी कालविषै मोक्षमार्गकूं अन्यथा प्ररूपण करनहारे अनेक मत प्रवर्त्तें हैं तहां भ. इस पंचमकालमैं केवली श्रुतकेवलीका व्युच्छेद होनेतैं जिनमतमैं भी जड़ वक्र जीवनिके निमित्तकरि परंपरामार्गकूं उल्लंघि बुद्धिकल्पित मत श्वेताम्बर आदिक भये हैं, तिनिका निराकरण करि यथार्थ स्वरूप स्थापनेके अर्थि दिगम्बर आम्नाय मूलसंघमैं आचार्य भये तिनिनैं सर्वज्ञकी परंपराका अव्युच्छेद रूप प्ररूपणाके अनेक ग्रन्थ रचे हैं, तिनिमैं दिगम्बर संप्रदाय मूलसंघ नंदिआम्नाय सरस्वतीगच्छमैं श्रीकुन्दकुन्द मुनि भये तिनिनैं पाहुड ग्रंथ रचे तिनिकूं संस्कृतभाषामैं प्राभृतनाम कहिये, ते प्राकृत गाथाबंध हैं सो कालदोषतैं जीवनिकी बुद्धि मंद होय है सो अर्थ समझया जाता नाहीं, तातैं देशभाषामय वचनिका होय तौ सर्व ही बाचैं अर्थ समझैं श्रद्धान दृढ़ होय, यह प्रयोजन विचारि वचनिका लिखिये है, अन्य किछू ख्याति बडाई लाभका प्रयोजन है नाहीं। यातैं भव्यजीव ताकूं बांचि अर्थ समझि चित्तमैं धारण करि यथार्थमतका बाह्यलिंग तथा तत्वार्थका दृढ़ श्रद्धान करियो। यामैं किछू बुद्धिकी मंदतातैं तथा प्रमादके वशतै अर्थ अन्यथा लिखूं तौ बड़े बुद्धिवान मूल ग्रंथ देखि शुद्धकरि बांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जानि क्षमा कीजियो।

अब इहां प्रथम ही दर्शनपाहुडकी वचनिका लिखिये है —

दोहा।

वंदूं श्रीअरहंतकूं मन वच तन इकतान।
मिथ्याभाव निवारिकैं करैं सुदर्शन ज्ञान॥

अब ग्रंथकर्त्ता श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ग्रंथकी आदि विषै ग्रंथकी उत्पत्ति अर ताका ज्ञानकूं कारण जो परंपरा गुरुका प्रवाह ताकूं मंगलकै अर्थि नमस्कार करै हैं.—

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स ।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण ॥१

कृत्वा नमस्कारं जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य ।
दर्शनमार्गं वक्ष्यामि यथाक्रमं समासेन ॥ १ ॥

याका देशभाषामय अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं जिनवर वृषभ ऐसा जो आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव बहुरि वर्द्धमान नाम अंतिम तीर्थंकर ताहि नमस्कार करि अर दर्शन कहिये मत ताका मार्ग जो है ताहि यथा अनुक्रम संक्षेपकरि कहूँगा। भावार्थ—इहां जिनवर वृषभ ऐसा विशेषण है, ताका ऐसा अर्थ है जो जिन ऐसा शब्दका तौ यह अर्थ है—जो कर्म शत्रुकूं जीतै सो जिन, सो सम्यग्दृष्टी अव्रतीसूं लगाय कर्मकी गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सर्व ही जिन हैं, तिनमैं वर कहिये श्रेष्ठ, ऐसे जिनवर नाम गणधर आदिक मुनिनिकूं कहिये, तिनमैं वृषभ कहिये प्रधान ऐसे भगवान तीर्थंकर परमदेव हैं। तिनिमैं आदि तौ श्रीऋषभदेव भए, अर इस पंचमकालकी आदि अर चतुर्थकालके अन्तमैं अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी भये तिनिका विशेषण भया। बहुरि जिनवर वृषभ ऐसे सर्वही तीर्थंकर भये, तिनिकूं नमस्कार भया, तहां वर्द्धमान ऐसा विशेषण सर्वहीका जानना, सर्व ही अन्तरंग बाह्य लक्ष्मीकरि वर्द्धमान हैं। अथवा जिनवर वृषभ शब्द करि तौ आदि तीर्थंकर श्रीऋषभदेव लेने अर वर्द्धमान शब्दकरि अन्तिम तीर्थंकर लेने, ऐसैं आदि अंत तीर्थंकरकूं नमस्कार करनेतैं मध्यकेकूं नमस्कार सामर्थ्यतैं जानना। बहुरि तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतरागकूं तौ परमगुरु कहिये,

अर इनिकी परिपाटीतैं चले आए गौतमादिक मुनि भये तिनिका नाम जिनवर वृषभ इस विशेषणमैं जनाया तिनिकूं अपरगुरु कहिये; ऐसैं परापर गुरुका प्रवाह जानना ते शास्त्रकी उत्पत्ति तथा ज्ञानकूं कारण हैं। तिनिकं ग्रंथकी आदिविषैं नमस्कार किया ॥ १ ॥

आगैं धर्मका मूल दर्शन है तातैं दर्शनतैं रहित होय ताकूं नहीं वदना, ऐसैं कहैं हैं:—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

दर्शनमूलो धर्मः उपदिष्टः जिनवरैः शिष्याणाम्।
तं श्रुत्वा स्वकर्णे दर्शनहीनो न वन्दितव्यः ॥२॥

अर्थ—जिनवर जे सर्वज्ञदेव तिननैं शिष्य जे गणधर आदिक तिनिकूं धर्म उपदेश्या है सो कैसा उपदेश्या है, दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म उपदेश्या है। सो मूल कहा कहिए—जैसैं मन्दिरकै नींव अथवा वृक्षकै जड़ तैसैं धर्मका मूल दर्शन है। तातैं आचार्य उपदेश करैं है—जो हे सकर्ण! कहिये पंडित सतपुरुषहो! तिस सर्वज्ञके कहे दर्शन मूल रूप धर्मकूं अपने काननिविषैं सुनिकरि, अर जो दर्शनकरि रहित है सो वंदिवे योग्य नाही है दर्शनहीनकूं मति वदौ। जाकै दर्शन नांही ताकैं धर्म भी नाही, मूल बिना वृक्षकै स्कंध शाखा पुष्प फलादिक कहांतै होय, तातैं यह उपदेश है—जाकैं धर्म नाही तिसतैं धर्मकी प्राप्ति नांही, ताकूं धर्मनिमित्त काहेकू वन्दिए, ऐसा जाननां।

अब इहां धर्मका तथा दर्शनका स्वरूप जान्या चाहिये, सो स्वरूप तौ संक्षेपकरि ग्रंथकार ही आगैं कहसी तथापि किछूक अन्य ग्रथनिकै अनुसार इहा भी लिखिए है—तहां 'धर्म' ऐसा शब्दका अर्थ यह,

करिये सो भी व्यवहार है। तहां वस्तुस्वभाव कहनेमैं तो जे निर्विकार चेतनाके शुद्ध परिणामके साधकरूप मंदकषायरूप शुद्ध परिणाम हैं तथा बाह्य क्रिया हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिये है। बहुरि तैसैंही रत्नत्रय कहनेतैं स्वरूपके भेद दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तिनिके कारण बाह्यक्रियादिक हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिए है। तथा तैसैंही जीवनिकी दया कहनेतैं क्रोधादि कषाय मंद होनेतैं अपने वा परके मरण दुःख क्लेश आदि न करना, तिसके साधक बाह्यक्रियादिक ते सर्वही धर्मकरि कहिए हैं। ऐसैं निश्चय व्यवहार नय करि साध्या हुवा जिनमतमैं धर्म कहिए है। तहां एक स्वरूप अनेकस्वरूप कहनेतैं स्याद्वादकरि विरोध नाहीं आवै है, कथंचित् विवक्षातैं सर्व प्रमाणसिद्ध है। बहुरि ऐसे धर्मका मूल दर्शन कह्या सो ऐसे धर्मका श्रद्धा प्रतीति रुचि सहित आचरण करना सो ही दर्शन है, यह धर्मकी मूर्ति है, याहीकूं मत कहिए सो यह ही धर्मका मूल है। बहुरि ऐसे धर्मकी पहलैं श्रद्धा प्रतीति रुचि न होय तौ धर्मका आचरण भी न होय, जैसैं वृक्षके मूल विना स्कधादिक न होय तैसैं सो दर्शनकूं धर्मका मूल कहना युक्त है। सो ऐसे दर्शनका जैसैं सिद्धांतनिमैं वर्णन है तैसैं किछूक लिखिए है।

तहां अन्तरंग सम्यग्दर्शन है सो तौ जीवका भाव है सो निश्चयकरि उपाधितैं रहित शुद्धजीवका साक्षात् अनुभव होना ऐसा एक प्रकार है। सो ऐसा अनुभव अनादिकालतैं मिथ्यादर्शन नामा कर्मके उदयतैं अन्यथा होय रह्या है। या मिथ्यात्वकी सादि मिथ्यादृष्टीकैं तीन प्रकृति सत्तामैं होय है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति ऐसैं। अर याकी सहकारिणी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ भेदकरि च्यार कषाय नामा प्रकृति हैं। ऐसैं ये सात प्रकृति ही सम्यग्दर्शनके घात करनेवाली हैं; सो इनि सातनिका उपशम भये पहलें तौ इस जीवकैं उपशम सम्यक्त्व होय है। इनि प्रकृतिनिके उपशम होनेके बाह्य कारण सामान्यकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव हैं, तिनिमैं प्रधान द्रव्यमैं

तौ साक्षात् तीर्थंकरका देखना आदिक है, क्षेत्रमैं प्रधान समवसरणादिक हैं, कालमैं अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन संसारका भ्रमण बाकी रहै सो, भावमैं अध प्रवृत्त करण आदिक हैं। बहुरि विशेषकरि अनेक हैं. तिनिमैं केई-कनिकै तौ अरहंतके बिंबका देखना है, अर केईकनिकै जिनेन्द्रके कल्याण आदिकी महिमाका देखना है, केईकनिकै जातिस्मरण है, अर केईकनिकै वेदनाका अनुभव है, अर केईकनिकै धर्मश्रवण है, अर केई-कनिकै देवनिकी ऋद्धिका देखना है, इत्यादिक बाह्य कारणनितैं मिथ्यात्वकर्मका उपशम भये उपशमसम्यक्त्व होय है। बहुरि इनि सात प्रकृतिनिमैं छहका तौ उपशम अथवा क्षय होय अर एक सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होय तब क्षयोपशम सम्यक्त्व होय है. इस प्रकृतिके उदयतैं किछू अतीचार मल लागै। बहुरि इनि सात प्रकृतिनिका सत्तामैंसू नाश होय तब क्षायिक सम्यक्त्व होय है। सो ऐसैं उपशम आदिक भये जीवका परिणाम भेदकरि तीन प्रकार होय है, ते परिणाम होय सो अतिसूक्ष्म है केवलज्ञानगम्य हैं जातैं इनि प्रकृतिनिका द्रव्य पुद्गल परमाणूनिके स्कंध हैं ते अतिसूक्ष्म हैं, अर तिनिमैं फल देनेकी शक्तिरूप अनुभाग है सो अतिसूक्ष्म है सो छद्मस्थके ज्ञान गम्य नाही। अर इनिका उपशमादिक होतैं जीवके परिणाम भी सम्यक्त्वरूप होय ते भी अति-सूक्ष्म हैं ते भी केवलज्ञानगम्य हैं। तथापि किछू छद्मस्थके ज्ञानमैं आवने योग्य जीवका परिणाम होय हैं ते ताके जनावनेके बाह्यचिह्न हैं तिनिकी परीक्षाकरि निश्चय करनेका व्यवहार है, ऐसैं नहीं होय तौ छद्मस्थ व्यवहारी जीवकैं सम्यक्त्वका निश्चय नहीं होय तब आस्तिक्यका अभाव ठहरै, व्यवहारका लोप होय यह बडा दोष आवै। तातैं बाह्य चिह्ननिका आगम अनुमान स्वानुभवतैं परीक्षाकरि निश्चय करना।

ते चिंह्न कौन, सो लिखिये है—तहां मुख्य चिह्न तौ यह है जो उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान चेतनास्वरूप आत्माकी अनुभूति है सो यद्यपि यह अनुभूति ज्ञानका विशेष है तथापि सम्यक्त्व भये यह होय है तातैं

याकूं बाह्यचिन्ह कहिए है। ज्ञान है सो आपका आपकै स्वसंवेदनरूप है ताका रागादि विकाररहित शुद्ध ज्ञानमात्रका आपकै आस्वाद होय "जो यह शुद्धज्ञान है सो मैं हूं अर ज्ञानमैं रागादि विकार हैं ते कर्मके निमित्ततैं उपजै है ते मेरा रूप नाही हैं" ऐसैं भेदज्ञान करि ज्ञानमात्रका आस्वादकूं ज्ञानकी अनुभूति कहिये यह ही आत्मा अनुभूति है शुद्धनयका यहही विषय है। ऐसी अनुभूतितैं शुद्धनयकै द्वारैं ऐसा भी श्रद्धान होय है जो सर्व कर्मजनित रागादिक भावतैं रहित अनत चतुष्टय मेरा रूप है, अन्य भाव सर्व सयोग जनित हैं, ऐसी आत्माकी अनुभूति सो सम्यक्त्वका मुख्यचिह्न है। यह मिथ्यात्व अनतानुबधीका अभावकरि सम्यक्त्व होय ताका चिह्न है, सो चिह्नकूं ही सम्यक्त्व कहनां यह व्यवहार है। बहुरि याकी परीक्षा सर्वज्ञके आगमकरि तथा अनुमानकरि तथा स्वानुभव प्रत्यक्षकरि इनि प्रमाणनिकरि कीजिये है। बहुरि याहीकू निश्चय तत्वार्थश्रद्धान भी कहिए है। तहा आपकै तौ आपका स्वसवेदनकूं प्रधानकरि होय है, अर परकैं परकी परीक्षा परके वचन कायकी क्रियाकी परीक्षातैं अतरंगमैं भयेकी परीक्षा होय है, यह व्यवहार है, परमार्थ सर्वज्ञ जानैं है। व्यवहारी जीवकै सर्वज्ञनैं भी व्यवहारहीका शरणां उपदेश्या है। केई कहैं हैं—जो सम्यक्त्व तौ केवलीगम्य है यातैं आपकै सम्यक्त्व भयेका निश्चय नही होय तातैं आपकू सम्यग्दृष्टी नहीं माननां ?। सो ऐसैं सर्वथा एकान्त करि कहना तौ मिथ्या दृष्टि है, सर्वथा ऐसैं कहे व्यवहारका लोप होय, सर्व मुनि श्रावककी प्रवृत्ति मिथ्यात्वसहित ठहरै। तब सर्वही मिथ्यादृष्टी आपकू मानैं तब व्यवहार काहेका रह्या, तातै परीक्षा भये पीछै यह श्रद्धान नाही राखणा जो मैं मिथ्यादृष्टीहीहूं, मिथ्यादृष्टी तौ अन्यमतीकूं कहिए है तब तिस समान आप भी ठहरै, तातैं सर्वथा एकान्त पक्ष ग्रहण नही करना। बहुरि तत्त्वार्थका श्रद्धान है सो बाह्य चिह्न है, तहा तत्त्वार्थ तौ जीव अजीव आस्रव बध संवर निर्जरा मोक्ष ऐसैं

मात हैं, बहुरि इनिमैं पुण्य पापका विशेष करिए तब नव पदार्थ होय हैं, सो इनिकी श्रद्धा कहिये इनिकै सन्मुख बुद्धि अरु रुचि कहिए इनि रूप अपना भाव करना बहुरि प्रतीति कहिये जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसै ही हैं ऐसैं अंगीकार करना, बहुरि इनिका आचरणरूप क्रिया, ऐसैं श्रद्धानादिक होना सो सम्यक्त्वका बाह्य चिह्न है। बहुरि प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न हैं। तहां अनंतानुबंधी क्रोधादिक कषायका उदयका अभाव सो प्रशम है; ताका बाह्य चिह्न ऐसा—जो सर्वथा एकान्त तत्वार्थके कहनेवाले जे अन्यमत जिनका श्रद्धान तथा बाह्यभेष ताविषैं सत्यार्थपणांका अभिमान करनां तथा पर्यायनिविषैं एकान्ततैं आत्मबुद्धिकरि अभिमान तथा प्रीति करनी ये अनंतानुबंधीका कार्य है, सो ये जाकै न होय तथा अपना काहूनैं बुरा किया ताका घात करना आदि विकारबुद्धि मिथ्यादृष्टिकी ज्यौं आपकै नहीं उपजै। अर ऐसैं विचारै जो मेरा बुरा करनेवाला मेरा परिणामकरि मैं बांध्या था जो कर्म, सो है, अन्य तौ निमित्तमात्र हैं, ऐसी बुद्धि आपकैं उपजै. ऐसैं मंदकषाय होय। अर अनंतानुबंधीविना अन्य चारित्रमोहकी प्रकृतिनिके उदयतैं आरंभादिक क्रियामैं हिंसादिक होय है तिनिकूं भी भला नहीं जानै है यातैं तिससै प्रशमका अभाव नहीं कहिए। बहुरि धर्मविषैं अर धर्मका फलविषै परम उत्साह होय सो संवेग है, तथा साधर्मीनितैं अनुराग तथा परमेष्ठीनिविषै प्रीति सो भी संवेगही है। अर इस धर्मविषैं अर धर्मका फलविषैं अनुरागकूं अभिलाष न कहनां जातैं अभिलाष तौ इन्द्रियनिके विषयनिविषैं चाह होय ताकूं कहिये है, अपनां स्वरूपकी प्राप्तिविषैं अनुरागकू अभिलाष नहीं कहिये। बहुरि इस संवेगहीमैं निर्वेद भी भया जानना जातैं अपने स्वरूपरूप धर्मकी प्राप्तिविषैं अनुराग भया तब अन्यत्र सर्वही अभिलाषका त्याग भया सर्व परद्रव्यनिसूं वैराग्य भया, सो ही निर्वेद है। बहुरि सर्व प्राणीनिविषैं उपकारकी बुद्धि तथा मैत्रीभाव सो अनुकंपा है तथा माध्यस्थ्यभाव होय तातैं सम्यग्दृष्टिकैं शल्य नांही है काहूसू वैरभाव न होय है. सुख दुःख

परलोकका भय, मरणका भय, अन्नरक्षाका भय, अगुप्तिभय, वेदनाका भय, अकस्मात् भय। तेमें ये भय होय तब जानिये याकै मिथ्यात्वकर्मका उदय है; सम्यग्दृष्टि भये ये होय नाही। इहां प्रश्न—जो भय प्रकृतिका उदय तो आठमा गुणस्थान ताई है ताके निमित्ततें सम्यग्दृष्टीकै भय होय ही है, भयका अभाव कैसें? ताका समाधान:—जो यद्यपि सम्यग्दृष्टीकै चारित्रमोहके भेदरूप भयप्रकृतिके उदयतें भय होय है तथापि ताकू निर्भय ही कहिये जातें याकै कर्मके उदयका स्वामीपणां नांही है अर परद्रव्यतें अपनां द्रव्यत्वभावका नाश नहीं मानें है, पर्यायका स्वभाव विनाशीक मानें है, तातें भय होतें भी निर्भय ही कहिये। भय होतें ताका इलाज भागनां इत्यादि करै है, तहां वर्त्तमानकी पीड़ा नहीं सही जाय तातें इलाज करै है यह निबलाईका दोष है। ऐसें सदेह अर भयरहित सम्यग्दृष्टी होय ताकैं नि.शंकित अग होय है॥ १॥

वहुरि कांक्षा नाम भोगनिकी इच्छा अभिलापका है। तहां पूर्वं किये भोग तिनिकी वाछा तथा तिनि भोगनिकी मुख्य क्रिया विषै वाछा तथा कर्म अर कर्मके फलविषैं वाछा तथा मिथ्यादृष्टीनिकैं भोगनिकी प्राप्ति देखि तिनिकूं अपने मनमैं भला जानना, अथवा इंद्रियनिकू नहीं रुचै ऐसे विषयनिविषैं उद्वेग होना, ये भोगाभिलापके चिह्न हैं। सो यह भोगाभिलाप मिथ्यात्वकर्मके उदयतें होय है। सो यह जाकै नहीं होय सो नि कांक्षित अगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है। यह सम्यग्दृष्टी यद्यपि शुभक्रिया व्रतादिक आचरण करै है ताका फल शुभकर्मबंध है ताकू भी नाही वांछै है व्रतादिककू स्वरूपके साधक जानि आचरै है कर्मके फलकी वाछा नाही करै है। ऐसें नि कांक्षित अंग है॥ २॥

वहुरि आपविषैं अपने गुणकी महंतताकी बुद्धिकरि आपकूं श्रेष्ठ मानि परविषैं हीनताकी बुद्धि होय ताकूं विचिकित्सा कहिये, यह जाकै नहीं होय सो निर्विचिकित्सा अगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है। याके चिह्न

ऐसैं—जो कोई पुरुष पापके उदयतैं दुःखी होय, असाताके उदयतैं ग्लानियुक्त शरीर होय ताविषैं ग्लानिबुद्धि नहीं करै। ऐसी बुद्धि नहीं करै—जो मैं सपदावान हू सुन्दरशरीरवान हूँ, यह दीन रांक मेरी वराबरी नाही करि सकै। उलटा ऐसैं विचारै जो प्राणीनिकै कर्मउदयतैं विचित्र अनेक अवस्था होय है, मेरे कर्मका उदय ऐसा आवै तब मै भी ऐसा ही होजाऊ। ऐसैं विचारतैं निर्विचिकित्सा अग होय है ॥३॥

बहुरि अतत्वविषै तत्वपणांका श्रद्धान सो मूढदृष्टि है। ऐसैं मूढदृष्टि जाकै नहीं होय सो अमूढदृष्टि है। तहां मिथ्यादृष्टीनिकरि खोटे हेतु दृष्टांतकरि साध्या पदार्थ है सो सम्यग्दृष्टीकूं प्रीति नाही उपजावै है। बहुरि लौकिक रूढी अनेक प्रकार है सो यह निःसार है, निःसार पुरुपनिकरि ही आचरिए है, अनिष्ट फलकी देनहारी हैं तथा निष्फल है तथा जाका खोटा फल है तथा ताका किछू हेतु नाही ताका किछू अर्थ नाही, जो किछू लोक रूढ़ि चलि पडै सो लोक आदरिलै फेरि ताका त्यजनां कठिन होय जाय इत्यादि लोकरूढि हैं। बहुरि अदेवविषैं तौ देवबुद्धि, अधर्मविषैं धर्मबुद्धि, अगुरुविषै गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढता है सो यह कल्याणकारी नांही। सदोष देवकूं देव मानना, बहुरि तिनिकै निमित्त हिंसादिकरि अधर्मकूं धर्म मानना, बहुरि खोटा आचारवान शल्यवान परिग्रहवान सम्यक्त्वव्रतरहितकू गुरु मानना इत्यादि मूढ़ दृष्टिके चिह्न हैं। अब इहां देव धर्म गुरु कैसे होय तिनिका स्वरूप जान्या चाहिये, सो ही कहिये है—तहां रागादिक दोप अर ज्ञानावरणादिक कर्म सो ही आवरण, ये दोऊ जाकै नांही सो देव है, ताकै केवलज्ञान केवलदर्शन अनतसुख अनतवीर्य ये अनंतचतुष्टय होय हैं। सो सामान्यतैं तौ देव ऐसा एक है अर विशेषकरि अरहत सिद्ध ऐसैं दोय भेद हैं, बहुरि इनिके नामभेदके भेदकरि भेद करिये तब हजारां नाम हैं। बहुरि गुणभेद करिए तब अनत गुण हैं। तहा परम औदारिक देह विषैं तिष्ठ्या घातियाकर्मरहित अनतचतुष्टयसहित धर्मका

उपदेश करनहारा ऐसा तौ अरहंत देव है। बहुरि पुद्गलमयी देहसूंरहित लोकके शिखर तिष्ठ्या सम्यक्त्वादिक अष्टगुणमंडित अष्टकर्मरहित ऐसा सिद्ध देव है, इनिके अनेक नाम हैं—अरहंत, जिन, सिद्ध, परमात्मा, महादेव, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, हरि, बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग परमात्मा इत्यादि अर्थसहित अनेक नाम हैं; ऐसा तौ देव जानना। बहुरि गुरु भी अर्थ थकी विचारिये तौ अरहंत देवही है जातैं मोक्षमार्गका उपदेश करनहारा अरहंत ही है साक्षात् मोक्षमार्ग यहही प्रवर्त्तावै है;बहुरि अरहंतकै पीछै छद्मस्थ ज्ञानके धारक तिनिहीका निर्ग्रंथ दिगंबर रूप धारनेवाले मुनि है ते गुरु हैं जातै अरहंतका एकदेशशुद्धपणां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका तिनिकैं पाइये सोही संवर निर्जरा मोक्षके कारण हैं तातैं अरहंतकी ज्यों एकदेशपणैं निर्दोष हैं ते मुनि भी गुरु हैं, मोक्षमार्गके उपदेश करनहारे हैं। बहुरि ऐसा मुनिपणां सामान्यकरि एकप्रकार है, बहुरि विशेषकरि सो ही तीन प्रकार है—आचार्य, उपाध्याय, साधु। ऐसैं यह पदवीका विशेष है, तिनिके मुनिपणांकी क्रिया एकही है, बाह्य लिंग भी समान है, पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति ऐसैं तेरह प्रकारका चारित्र भी समानही है, तप भी शक्तिसारू समानही है, साम्यभाव भी समान है, मूलगुण उत्तरगुण भी समान हैं, परीषह उपसर्गनिका सहना भी समान है, आहार आदिकी विधि भी समान है, चर्या स्थान आसन आदि भी समान हैं, मोक्षमार्गका साधनां सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र भी समान हैं। ध्याता ध्यान ध्येयपणा भी समान है, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयपणा भी समान है, च्यार आराधनांका आराधना क्रोधादिक कषायनिका जीतनां इत्यादि मुनिनिकी प्रवृत्ति है सो सर्व समान है। इहां विशेष यहु है—जो आचार्य है सो तौ पंच आचार अन्यकूं अंगीकार करावै है, बहुरि अन्यकूं दोष लागै ताका प्रायश्चित्तकी विधि बतावै है,धर्मोपदेश दीक्षा शिक्षा दे सो तौ आचार्य होय है सो ऐसा आचार्य गुरु वंदने योग्य है। बहुरि उपाध्याय है सो वादित्व वाग्मित्व कवित्व गमकत्व

ये च्यार विद्या है तिनिमैं प्रवीण होय है,इस विषैं शास्त्रका अभ्यास प्रधान कारण है आप शास्त्र पढै अन्यकूं पढ़ावै, ऐसा उपाध्याय गुरु बंदने योग्य है, याकै अन्य मुनिव्रत मूलगुण उत्तरगुणकी क्रिया आचार्यसमान ही होय है। बहुरि साधु है सो रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गकूं साधै सो साधु है याकैं दीक्षा शिक्षा उपदेशादिक देनेंकी प्रधानता नाही अपने स्वरूपके साधनविषैं ही तत्पर होय है, निर्ग्रंथ दिगबर मुनिकी प्रवृत्ति जैसी जिनागममैं वर्णन करी है तैसी सर्वही होय है, ऐसा साधु वदनेयोग्य है। अन्यलिंगी भेषी व्रतादिकतैं रहित परिग्रहवान विषयनिमैं आसक्त गुरु नाम धरावै ते बंदनेयोग्य नांही हैं। इस पचमकालमैं भेषी जिनमतमैं भी भये है ते श्वेतांबर, यापनीयसंघ, गोपुच्छपिच्छसघ, नि पिच्छसघ, द्राविड़सघ आदि लेय अनेक भये हैं सो ये सर्वही वंदनेयोग्य नाही है। मूलसघ, नग्नदिगंबर, अट्ठाईस मूलगुणनिके धारक, मयूरपिच्छक कमडलु दयाका अर शौचका उपकरण धारैं यथोक्तविधि आहार करनेंवाले गुरु वदनेयोग्य हैं जातैं तीर्थंकर देव दीक्षा धारैं है तब ऐसाही रूप धारैं हैं अन्य भेष नांही धारैं हैं, याहीकूं जिनदर्शन कहिए है। बहुरि धर्म जाकूं कहिए जो जीवकू ससारके दुःखरूप नीचा पदतै मोक्षका सुखरूप ऊचा पदमै धारै, ऐसा धर्म मुनिश्रावकके भेदकरि दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक एकदेश सर्वदेशरूप निश्चय व्यवहार करि दोय प्रकार कह्या है ताका मूल सम्यग्दर्शन है या विनां धर्मकी उत्पत्ति नाही है। ऐसैं देव गुरु धर्म विषैं अर लोकविषैं यथार्थ दृष्टि होय अर मूढता नहीं होय सो अमूढ दृष्टि अंग है ॥ ४ ॥

बहुरि अपने आत्माकी शक्तिका वधावना सो उपबृंहण अग है सो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका अपनां पौरुषकरि बधावना सो ही उपबृंहण है। याकूं उपगूहन भी कहिये है, तहां ऐसा अर्थ जानना जो स्वयसिद्ध जिनमार्ग है ताकै बालकके तथा असमर्थ जनके आश्रयतैं जो न्यूनता होय ताकूं अपनी बुद्धितैं गोप्यकरि दूरिही करै सो उपगूहन अंग है ॥ ५ ॥

बहुरि धर्मतैं जो च्युत होता होय ताकूं दृढ करनां सो स्थितीकरण अंग है सो जो आप कर्मके उदयके वशतैं कदाचित् श्रद्धानतैं तथा क्रिया आचारतैं छूटै तौ आपकूं फेरि पौरुष करि श्रद्धानमैं दृढ करना। बहुरि तैसैं ही अन्य धर्मात्मा धर्मतैं च्युत होता होय तौ ताकूं उपदेशादिक करि धर्म विषैं स्थापनां, ऐसैं स्थितीकरण अंग होय है ॥ ६ ॥

बहुरि अरहत सिद्ध तथा तिनिके बिंब तथा चैत्यालय तथा चतुर्विधसंघ तथा शास्त्र इनिविषैं दासपणां होय जैसैं स्वामीका भृत्य दास होय तैसै, सो वात्सल्य अंग है। तहां धर्मके स्थानकनिकैं उपसर्गादिक आवै ताकूं अपनी शक्तिसारू मेटै अपनी शक्तिकूं छिपावै नाही, यह धर्मतैं अतिप्रीति होय तब होय है ॥ ७ ॥

बहुरि धर्मका उद्योत करनां सो प्रभावना अंग है। तहां अपने आत्माका रत्नत्रयकरि उद्योत करनां अर दान तप पूजा विधानकरि तथा विद्या अतिशय चमत्कारादिककरि जिनधर्मका उद्योत करना, ऐसैं प्रभावना अंग होय है ॥ ८ ॥

ऐसैं ये आठ अंग सम्यक्त्वके हैं जाकैं ये प्रकट होय ताकै जानिये सम्यक्त्व है। इहां प्रश्न—जो ये सम्यक्त्वके चिह्न कहे तैसैही मिथ्यादृष्टीकैं भी देखैं तब सम्यक् मिथ्याका विभाग कैसैं होय ?। ताका समाधान—जो जैसैं सम्यक्त्वीके होय तैसै तौ मिथ्यात्वीकै कभी हीं नहीं होय है तौ हू अपरीक्षककूं समान दीखैं तहां परीक्षा किये भेद जान्या जाय है। बहुरि परीक्षाविषै अपना स्वानुभव प्रधान है सर्वज्ञके आगममैं जैसा आत्माका अनुभव होना कह्या है तैसा आपकैं होय तब ताके होतैं अपनी वचन कायकी प्रवृत्ति भी तिस अनुसार होय है, तिस प्रवृत्तिके अनुसार अन्यकी भी वचन कायकी प्रवृत्ति पहचानिये है, ऐसैं परीक्षा किये विभाग होय है। बहुरि यह व्यवहार मार्ग है, सो व्यवहारी छद्मस्थ जीवनिकैं अपने ज्ञानकै अनुसार प्रवृत्ति है, यथार्थ सर्वज्ञदेव जानैं हैं, व्यवहारीकूं सर्वज्ञदेव व्यवहारहीका आश्रय बताया

है। यह अतरग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है सो ही सम्यग्दर्शन है, बहुरि बाह्यदर्शन व्रत समिति गुप्तिरूप चारित्र अर तपसहित अट्ठाईस मूलगुणसहित नग्न दिगबर मुद्रा याकी मूर्ति है ताकूं जिन दर्शन कहिये। ऐसै धर्मका मूल सम्यग्दर्शन जानि जे सम्यग्दर्शनरहित है तिनिका वंदना पूजनां निषेध्या है, सो भव्य जीवनिकूं यह उपदेश अंगीकार करने योग्य है ॥ २ ॥

आगै अतरंग सम्यग्दर्शनविना बाह्य चारित्रतै निर्वाण नांही है, ऐसै कहैं हैं —

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥३॥

दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम्।
सिध्यन्ति चारित्रभ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति ॥३॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनतैं भ्रष्ट है ते भ्रष्ट है जे दर्शनतैं भ्रष्ट है तिनिकैं निर्वाण नाहीं होय है जातैं यह प्रसिद्ध है जे चारित्रतैं भ्रष्ट हैं ते तौ सिद्धिकूं प्राप्त होय है अर दर्शन भ्रष्ट हैं ते सिद्धिकू प्राप्त नाही होय हैं ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं तिनिकू भ्रष्ट कहिये अर श्रद्धातैं भ्रष्ट नांही है अर कदाचित् चारित्रभ्रष्ट कर्मके उदयतैं भये हैं तिनिकू भ्रष्ट नहीं कहिये जातैं जो दर्शनतैं भ्रष्ट है ताकै निर्वाणकी प्राप्ति नांही होय है, जे चारित्रतैं भ्रष्ट होय है अर श्रद्धानदृढ रहै है तिनिकै तौ शीघ्रही फेरि चारित्रका ग्रहण होय है मोक्ष होय है, बहुरि दर्शन श्रद्धातैं भ्रष्ट होय है तिनिकै फेरि चारित्रका ग्रहण कठिन होय है तातैं निर्वाणकी प्राप्ति दुर्लभ होय है. जैसैं वृक्षका स्कधादिक कटि जाय अर मूल बण्या रहै तौ स्कधादिक शीघ्रही फेरि होय फल लागै,

अर मूल उपडि जाय तब स्कंधादिक कैसैं होय; तैसे धर्मका मूल दर्शन जानना ॥ ३ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनतैं भ्रष्ट हैं अर शास्त्रनिकूं बहोत प्रकार जानैं हैं तौ हू संसारमैं भ्रमैं हैं, ऐसे ज्ञानतैं भी दर्शनकूं अधिक कहैं हैं.—

सम्मत्तरयणभट्टा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥४॥
सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।
आराधनाविरहिताः भ्रमंति तत्रैव तत्रैव ॥४॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्नकरि भ्रष्ट हैं अर बहुत प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौऊ ते आराधनाकरि रहित भये संते तिस संसारविषैंही भ्रमैं हैं। दोय बार कहनेतैं बहुत भ्रमण जनाया है ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातै भ्रष्ट हैं अर शब्द न्याय छंद अलंकार आदि अनेक प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौ हू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप आराधनां तिनिकै नाहीं होय है यातैं कुमरणकरि चतुर्गतिरूप संसारविषैं ही भ्रमण करै हैं मोक्ष नाहीं पावै हैं जातैं सम्यक्त्व विना ज्ञानकूं आराधना नाम नहीं कहिये ॥ ४ ॥

आगैं कहैं हैं, तप हू करै अर सम्यक्त्वरहित होय तौ तिनिकैं स्वरूपका लाभ नहीं होय;—

सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठ वि उग्गं तवं चरंता णं ।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥५॥
सम्यक्त्वविरहिता णं सुष्ठु अपि उग्रं तपः चरंतो णं ।
न लभन्ते बोधिलाभं अपि वर्षसहस्रकोटिभिः ॥५॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वकरि विरहित हैं ते सुष्ठु कहिये भलै प्रकार उग्र तपकूं आचरते हैं तौऊ ते बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयी अपनां स्वरूप ताका लाभकूं नांही पावैं हैं, जो हजार कोडि वर्ष तांई तप करैं तौऊ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होय। इहां गाथामैं 'ण' ऐसा शब्द दोय जायगां है सो प्राकृतमै अव्यय है, याका अर्थ वाक्यका अलकार है॥

भावार्थ—सम्यक्त्व विना हजार कोडि वर्ष तप करै तौऊ मोक्षमार्गकी प्राप्ति नाही। इहा हजार कोडि कहनेतैं एतेही वर्ष नहीं जाननें, कालका बहुतपणा जणाया है। तप मनुष्यपर्यायहीमैं होय है तातैं मनुष्यकाल भी थोडा है तातैं तप कहनेतैं ये भी वर्ष बहुतही कहिये॥ ५ ॥

आगैं ऐसै पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व विना चारित्र तप निष्फल कहे, अब सम्यक्त्वसहित सर्वही प्रवृत्ति सफल है ऐसैं कहैं हैं—

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण॥६॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनबलवीर्यवर्द्धमानाः ये सर्वे।
कलिकलुषपापरहिताः वरज्ञानिनः भवंति अचिरेण॥६॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन बल वीर्य इनि करि वर्द्धमान हैं अर कलिकलुषपाप कहिए इस पंचमकालके मलिन पापकरि रहित हैं ते सर्व ही थोडे ही कालमैं वरज्ञानी कहिये केवल ज्ञानी होय हैं॥

भावार्थ—इस पचमकालमैं जड वक्र जीवनिके निमित्त करि यथार्थ मार्ग अपभ्रंश भया है तिसकी वासनातैं रहित भये जे जीव यथार्थ

जिनमार्गके श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान दर्शन अपना पराक्रम बलकूं न छिपाय करि अर अपनां वीर्य जो शक्ति ताकरि वर्द्धमान भये सते प्रवर्त्तें हैं ते थोडे ही कालमें केवलज्ञानी होय मोक्ष पावें हैं ॥ ६ ॥

आगें कहैं है, जो सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह आत्माकै कर्मरज नांही लागनें दे है.—

सम्मत्तसलिलपवहो णिचं हियए पवट्टए जस्स ।
कम्मं वालुयवरण बन्धुच्चिय णासए तस्स ॥७॥

सम्यक्त्वसलिलप्रवाहः नित्यं हृदये प्रवर्त्तते यस्य ।
कर्म वालुकावरणं बद्धमपि नश्यति तस्य ॥७॥

अर्थ—जा पुरुषका हृदयकै विषैं सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह निरन्तर प्रवर्त्तै है तापुरुषकै कर्म सो ही भया वालूरजका आवरण सो नांही लागै है, बहुरि ताकै पूर्वें लग्या कर्मका बंध सो भी नाशकूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व सहित पुरुषकै कर्मके उदयतै भये जे रागादिक भाव तिनिका स्वामीपणां नाही है तातैं कषायनिकी तीव्र कलुषतातैं रहित परिणाम उज्ज्वल होय हैं, ताकूं जलकी उपमा है। जैसें जलका प्रवाह जहां निरन्तर वहै तहां बालू रेत रज लागै नाही जैसें सम्यक्त्व-वान जीव कर्म के उदयकूं भोगता भी कर्मतैं नाही लिपै है। अर बाह्य व्यवहार अपेक्षा ऐसा भी भावार्थ जाननां—जाकै निरंतर हृदयमैं सम्यक्त्वरूप जलप्रवाह वहै है सो सम्यक्त्ववान पुरुष इस कलिकाल-संबंधी वासना जो कुदेव कुशास्त्र कुगुरु इनके नमस्कारादिरूप अती-चाररूप रज भी नाही लगावै है, अर ताकै मिथ्यात्वसबंधी प्रकृतिनिका आगामी बंध भी नाही होय है ॥ ७ ॥

आगैं कहै हैं, जे दर्शनभ्रष्ट हैं अर ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते आप तौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु अन्यकूं भ्रष्ट करै हैं, यह अनर्थ है,—

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।
एदे भट्ट वि भट्टा सेसं पि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः ज्ञाने भ्रष्टाः चारित्रभ्रष्टाः च।
एते भ्रष्टात् अपि भ्रष्टाः शेषं अपि जनं विनाशयंति ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं बहुरि ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते पुरुष भ्रष्टनिविषैं भी विशेष भ्रष्ट हैं। केई तौ दर्शनसहित है अर ज्ञान चारित्र जिनकै नाही है, बहुरि केई अंतरंग दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तौऊ ज्ञान चारित्र नीकैं पालै हैं, अर जे दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननितैं भ्रष्ट है ते तौ अत्यन्त भ्रष्ट हैं, ते आपतौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु शेष कहिये आप सिवाय अन्य जन हैं तिनिकूं भी नष्ट करै हैं।

भावार्थ—इहां सामान्य वचन है तातैं ऐसा भी आशय सूचै है जो सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान चारित्र तौ दूरिही रहौ जो अपने मतकी श्रद्धा ज्ञान आचरणतैं भी भ्रष्ट हैं ते तौ निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं ते आप भ्रष्ट हैं तैसैं ही अन्य लोककूं उपदेशादिक करि भ्रष्ट करै हैं तथा तिनिकी प्रवृत्ति देखि स्वयमेव लोक भ्रष्ट होय हैं तातैं ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं तिनिकी संगति करनां भी उचित नांहीं ॥ ८ ॥

आगैं कहै हैं, जो ऐसे भ्रष्ट पुरुष आप भ्रष्ट है ते धर्मात्मा पुरुषनिकूं दोष लगाय भ्रष्ट बतावैं हैं;—

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोयगुणधारी।
तस्स य दोष कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति ॥ ९ ॥

यः कोऽपि धर्मशीलः संयमतपोनियमयोगगुणधारी।
तस्य च दोषान् कथयंतः भग्ना भग्नत्वं ददति ॥ ९ ॥

अर्थ—जो कोई पुरुष धर्मशील कहिये अपना स्वरूपरूप धर्म साधनेंका जाका स्वभाव है तथा संयम कहिये इन्द्रिय मनका निग्रह षट् कायके जीवनिकी रक्षा, अर तप कहिये बाह्य आभ्यतर भेदकरि बारह प्रकार तप, नियम कहिये आवश्यक आदि नित्य कर्म, योग कहिए समाधि ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग, गुण कहिये मूलगुण उत्तरगुण, इनिका धारनेवाला है ताकै केई मततै भ्रष्ट जीव दोषनिका आरोपण करि कहैं हैं—जो ये भ्रष्ट हैं दोपनिसहित हैं ते पापात्मा जीव आप भ्रष्ट हैं तातैं अपना अभिमान पोषनेकूं अन्य धर्मात्मा पुरुषनिकूं भ्रष्टपणां दे है ॥

भावार्थ—पापीनिका ऐसा ही स्वभाव होय है जो आप पापी है तैसै ही धर्मात्मामैं दोष बताय आप समान किया चाहै है, ऐसे पापीनिकी संगति नहीं करनी ॥ ९ ॥

आगे कहैं है—जो दर्शनभ्रष्ट है सो मूलभ्रष्ट है ताके फलकी प्राप्ति नाहीं;—

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति ॥ १० ॥

यथा मूले विनष्टे द्रुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धिः।
तथा जिनदर्शनभ्रष्टाः मूलविनष्टाः न सिद्ध्यन्ति ॥ १० ॥

अर्थ—जैसैं वृक्षका मूल विनष्ट होतैं संतैं ताके परिवार कहिये स्कंध शाखा पत्र पुष्प फल ताकी वृद्धि नहीं होय है तैसैं जे जिनदर्श-

नतैं भ्रष्ट हैं बाह्य तौ निर्ग्रंथ लिंग नग्न दिगम्बर यथाजातरूप मूलगुणका धारण मयूरपुच्छिकापींछी अर कमंडलु धारना यथाविधि दोष टालि शुद्ध खड़ा भोजन करनां इत्यादि बाह्य शुद्ध भेष धारना अर अंतरंग जीवादि षट् द्रव्य नव पदार्थ सप्त तत्वका यथार्थ श्रद्धान तथा भेदविज्ञानकरि आत्मस्वरूपका अनुभवन ऐसा जो दर्शन मत तातैं बाह्य हैं ते मूलविनष्ट हैं तिनिकै सिद्धि नाहीं होय है, मोक्षफलकूं नांही पावैं हैं ॥ १० ॥

आगैं कहैं हैं, जो जिनदर्शन है सो ही मूल मोक्षमार्ग है,—

जह मूलाओ खन्धो साहापरिवार बहुगुणो होइ ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स ॥ ११ ॥

यथा मूलात् स्कंधः शाखापरिवारः बहुगुणः भवति
तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसैं वृक्षकै मूलतैं स्कंध होय है, सो कैसाक स्कंध होय है—शाखा आदि परिवार बहुत हैं गुण जाकै, इहां गुण शब्द बहुतका वाचक है तैसैं ही मोक्षमार्गका मूल जिनदर्शन गणधर देवादिकनैं कह्या है ॥

भावार्थ—इहां जिनदर्शन कहिये जो भगवान तीर्थंकरपरमदेव दर्शन ग्रहण किया सो ही उपदेश्या सो ऐसा मूलसंघ है अट्ठाईस मूलगुणसहित कह्या है । पंच महाव्रत, पंच समिति, षट् आवश्यक पांच इन्द्रियनिका वश करना, स्नान न करनां, वस्त्रादिकका त्याग, दिगम्बर मुद्रा, केशलोंच करना, एक बार भोजन करना, खड़ा भोजन करना, दंतधावन न करना ये अट्ठाईस मूलगुण हैं । बहुरि छियालीस दोष टालि आहार करना सो एषणा समितिमैं आगया । ईर्यापथ सोधि

चालना सो ईर्यासमितिमैं आय गया। अर दयाका उपकरण तौ मोर पुच्छकी पींछी अर शौचका उपकरण कमडलुका धारण ऐसा तौ बाह्य भेष है। बहुरि अंतरंग जीवादिक षट् द्रव्य पंचास्ति काय सप्त तत्त्व नव पदार्थनिकू यथोक्त जानि श्रद्धान करना अर भेदविज्ञानकरि अपना आत्मस्वरूपका चितवन करना अनुभव करना, ऐसा दर्शन जो मत सो मूलसंघका है। ऐसा जिनदर्शन है सो मोक्षमार्गका मूल है, इस मूलतैं मोक्षमार्गकी सर्व प्रवृत्ति सफल होय है। बहुरि जे इसतैं भ्रष्ट भये हैं ते इस पंचमकालके दोषतैं जैनाभास भये हैं, ते श्वेताम्बर द्राविड यापनीय गोपुच्छपिच्छ निपिच्छ पांच संघ भये हैं तिनिनैं सूत्र सिद्धांत अपभ्रंश किये हैं बाह्य भेष पलटि बिगाड्या है आचरण जिनूंनै ते जिनमतके मूलसंघतैं भ्रष्ट हैं तिनिकैं मोक्षमार्गकी प्राप्ति नाहीं है। मोक्षमार्गकी प्राप्ति मूलसंघके श्रद्धान ज्ञान आचरणहीतैं है ऐसा नियम जानना॥ ११॥

आगै कहैं हैं जो, जे यथार्थ दर्शनतैं भ्रष्ट है अर दर्शनके धारकनितैं आप विनय कराया चाहै हैं ते दुर्गति पावैं हैं;—

जे[1] दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं॥ १२॥

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान्।
ते भवंति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम्॥१२॥

---

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस गाथाका पूर्वार्द्ध इसप्रकार है जिसका यह अर्थ है कि 'जो दर्शन भ्रष्ट पुरुष दर्शन धारियोंके चरणोंमें

"जे दंसणेसु भट्ठा पाए न पडंति दंसणधराणं"—

उत्तरार्द्ध समान है।

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं अर अन्य जे दर्शनके धारक हैं तिनिकूं अपनें पगनि पडावैं हैं नमस्कारादि करावै हैं ते परभव विषैं लूला मूका होय है अर तिनिकै बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति सो दुर्लभ होय है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जे दर्शनभ्रष्ट हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं अर दर्शनके धारक हैं ते सम्यग्दृष्टी हैं, सो मिथ्यादृष्टी होय करि सम्यग्दृष्टीनितैं नमस्कार चाहैं हैं ते तीव्र मिथ्यात्वके उदयसहित हैं ते परभवविषैं लूला मूका होय हैं, भावार्थ—एकेंद्रिय होय हैं तिनिकै पग नांही ते परमार्थतैं लूला मूका हैं ऐसैं एकेंद्रियस्थावर होय निगोदमैं वास करैं हैं तहां अनतकाल रहैं हैं, तिनिकै दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति दुर्लभ होय है, मिथ्यात्वका फल निगोदही कह्या है। इस पंचम कालमैं मिथ्या मतके आचार्य बनि लोकनितैं विनयादिक पूजा चाहैं हैं तिनिकै जानिये है कि त्रसराशिका काल पूरा हुआ अब एकेंद्रिय होय निगोदमैं वास करैंगे, ऐसैं जान्या जाय है ॥ १२ ॥

आगै कहैं है जो जे दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकै लज्जादिकतैं भी पगा पडैं हैं ते भी तिनि सारिखे ही हैं.—

जे वि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥१३॥

येऽपि पतन्ति च तेषां जानंतः लज्जागारवभयेन ।
तेषामपि नास्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानाम् ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनसहित हैं ते भी दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकूं मिथ्यादृष्टी जानते संते भी तिनिके पगा पडैं हैं तिनिका लज्जा भयगारव करि विनयादि करैं हैं, तिनिकै भी बोधि कहिये दर्शन ज्ञान चरित्र ताकी

प्राप्ति नाहीं है जातैं ते भी पाप जो मिथ्यात्व ताकी अनुमोदन करते हैं, करनां करावना अनुमोदनां करना समान कह्या है। इहा लज्जा तौ ऐसैं--जो हम काहूका विनय नांहीं करैंगे तौ लोक कहैंगे ये उद्धत हैं मानी हैं तातैं हमकूं तौ सर्वका साधन करना, ऐसैं लज्जाकरि दर्शनभ्रष्टका भी विनयादिक करै। बहुरि भय ऐसैं—जो ये राज्यमान्य है तथा मत्र विद्यादिककी सामर्थ्य युक्त है याका विनय नहीं करैंगे तौ कछू हमारे ऊपरि उपद्रव करैगा, ऐसैं भय करि विनय करै। बहुरि गारव तीन प्रकार कह्या है, रसगारव ऋद्धिगारव सातगारव। तहां रसगारव तो ऐसा जो मिष्ट इष्ट पुष्ट भोजनादि मिलिबो करै तब ताकरि प्रमादी रहै। बहुरि ऋद्धिगारव ऐसा जो कछू तपके प्रभाव आदिकरि ऋद्धिकी प्राप्ति होय ताका गौरव आय जाय, ताकरि उद्धत प्रमादी रहै। बहुरि सातगारव ऐसा जो शरीर नीरोग होय कछू क्लेशका कारण नहीं आवै तब सुखियापणा आय जाय, ताकरि मग्न रहै। इत्यादिक गारवभाव मस्ताईतैं किछू भले बुरेका विचार नहीं करै तब दर्शनभ्रष्टका भी विनय करिवा लगिजाय इत्यादि निमित्ततैं दर्शनभ्रष्टका विनय करै तौ यामैं मिथ्यात्वकी अनुमोदना आवै ताकू भला जानैं तब आप भी ता समान भया तब ताके बोधि काहेकी कहिये ? ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होई ॥१४॥

द्विविधः अपि ग्रंथत्यागः त्रिषु अपि योगेषु संयमः तिष्ठति।
ज्ञाने करणशुद्धे उद्भभोजने दर्शनं भवति ॥१४

अर्थ—जहां बाह्य आभ्यंतर भेदकरि दोय प्रकार परिग्रहका त्याग होय अर मन वचन काय ऐसे तीनूं योगनिविषैं संयम तिष्ठै बहुरि कृत कारित अनुमोदना ऐसे तीन करण जामें शुद्ध होय ऐसा ज्ञान होय

बहुरि निर्दोष जामैं कृत कारित अनुमोदना आपका नहीं लागै ऐसा खडा पाणिपात्र आहार करैं, ऐसें मूर्तिमंत दर्शन होय है ॥

भावार्थ—इहां दर्शन नाम मतका है तहां बाह्य भेष शुद्ध दीखै सो दर्शन सो ही ताके अंतरंग भावकूं जनावै, तहां बाह्य परिग्रह तौ धनधान्यादिक अर अन्तरंग परिग्रह मिथ्यात्व कषायादिक सो जहां नहीं होय यथाजात दिगंबर मूर्त्ति होय, बहुरि इन्द्रिय मनका वश करना त्रस थावर जीवनिकी दया करनी ऐसा संयम मन वचन काय करि शुद्ध पालनां जहां होय, अर ज्ञान विषैं विकार करना करावनां अनुमोदना ऐसैं तीन करणनिकरि विकार नहीं होय, अर निर्दोष पाणिपात्र खडा-रहि भोजन करनां, ऐसैं दर्शनको मूर्त्ति है सो जिनदेवका मत है सो ही वंदने पूजने योग्य है, अन्य पाखंड भेष वंदने पूजनें योग्य नाही हैं ॥ १४ ॥

आगैं कहैं हैं जो इस सम्यग्दर्शनतैं ही कल्याण अकल्याणका निश्चय होय है:—

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी ।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ॥१५॥

सम्यक्त्वात् ज्ञानं ज्ञानात् सर्वभावोपलब्धिः ।
उपलब्धपदार्थे पुनः श्रेयोऽश्रेयो विजानाति ॥१५॥

अर्थ—सम्यक्त्वतैं तौ ज्ञान सम्यक् होय है, बहुरि सम्यक् ज्ञानतैं सर्व पदार्थनिकी उपलब्धि कहिये प्राप्ति तथा जानना होय है, बहुरि पदार्थनिकी उपलब्धि होतैं श्रेय कहिये कल्याण अर अश्रेय कहिये अकल्याण इनि दोऊनिकूं जानिये है ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना ज्ञानकूं मिथ्याज्ञान कह्या है तातैं सम्यग्दर्शन भये ही सम्यग्ज्ञान होय है अर सम्यग्ज्ञानतैं जीव आदि

पदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जानिये है, बहुरि जब पदार्थनिका यथार्थ स्वरूप जानिये तब भला बुरा मार्ग जानिये है। ऐसैं मार्गके जाननेमैं भी सम्यग्दर्शन ही प्रधान है॥ १५॥

आगै कल्याण अकल्याणकूं जाने कहा होय है, सो कहै है,—

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं॥ १६॥

श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्धृतदुःशीलः शीलवानपि।
शीलफलेनाभ्युदयं ततः पुनः लभते निर्वाणम्॥ १६॥

अर्थ—कल्याण अर अकल्याण मार्गका जाननेवाला पुरुष है सो 'उद्धुददुस्सील' कहिये उडाया है मिथ्यात्वस्वभाव जानै ऐसा होय है, बहुरि 'सीलवंतो वि' कहिये सम्यक् स्वभावयुक्त भी होय है, बहुरि तिस सम्यक् स्वभावका फलकरि अभ्युदय पावै है तीर्थंकर आदि पद पावै है, बहुरि अभ्युदय भये पीछैं निर्वाणकूं पावै है।

भावार्थ—भला बुरा मार्ग जानैं तब अनादि संसारतै लगाय मिथ्याभावरूप प्रकृति है सो पलटि सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होय, तिस प्रकृतितैं विशिष्ट पुण्य बाधै तब अभ्युदयरूप पदवी तीर्थंकर आदिकी पाय निर्वाण पावै है॥ १६॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा सम्यक्त्व जिनवचनतैं पाइये है तातैं ते ही सर्व दुःखके हरण हारे हैं;—

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥ १७॥

जिनवचनमौषधमिदं विषयसुखविरेचनममृतभूतम् ।
जरामरणव्याधिहरणं क्षयकरणं सर्वदुःखानाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—यह जिनवचन है सो औषध है, सो केसा औषध है विषय जो इन्द्रियनिके विषय तिनतैं मान्या सुख ताका विरेचन कहिये दूरि करन हारा है, बहुरि कैसा है—अमृतभूत कहिये अमृतसारिखा है याहीतैं जरा मरण रूप रोग ताका हरन हारा है, बहुरि सर्व दुःखनिका क्षय करन हारा है।

भावार्थ—या संसारविषैं प्राणी विषयसुख, सेवै है तिनतैं कर्म बधैं हैं तिसतैं जन्म जरा मरणरूप रोगनिकरि पीडित होय है, तहां जिनवचनरूप औषध ऐसा है जो विषयसुखतैं अरुचि उपजाय तिसका विरेचन करै है। जैसैं गरिष्ट आहारतैं मल बधै तब ज्वर आदि रोग उपजै तब ताके विरेचनकूं हरड़ै आदिक औषधि उपकारी होय तैसैं है। सो विषयनितैं वैराग्य होय तब कर्मबन्ध नहीं होय तब जन्म जरा मरण रोग नहीं होय तब संसारका दुःखका अभाव होय। ऐसैं जिनवचनकूं अमृत सारिखे जांनि अंगीकार करनें ॥ १७ ॥

आगैं जिनवचनविषैं दर्शनका लिंग जो भेष सो कै प्रकार कह्या है, सो कहै है,—

एगं जिणस्स रूवं वीयं उक्किट्ठसावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥ १८ ॥

एकं जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्टश्रावकाणां तु ।
अवरस्थितानां तृतीयं चतुर्थं पुनः लिंगदर्शनं नास्ति ॥

अर्थ—दर्शनविषैं एक तौ जिनका स्वरूप है सो जैसा लिंग जिनदेव धार्‍या सो लिंग है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावकनिका लिंग है, बहुरि

तीजा 'अवरट्ठिय' कहिये जघन्य पद विषैं स्थित ऐसी आर्यिकानिका लिंग है, बहुरि चौथा लिंग दर्शन विषैं नांही है ॥

भावार्थ—जिनमत विषैं तीन ही लिंग कहिये भेष कहैं है। एक तौ यथाजातरूप जिनदेव धाऱ्या सो है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमी प्रतिमा धारकका है, बहुरि तीजा स्त्री आर्यिका होय ताका है, बहुरि चौथा अन्य प्रकारका भेष जिनमतमैं नांही है। जे मानैं हैं ते मूलसंघतै बाह्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहैं हैं—ऐसा बाह्य लिंग होय ताकै अंतरग श्रद्धान ऐसा होय है सो सम्यग्दृष्टि है;—

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ १९ ॥

षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्त तत्वानि निर्दिष्टानि।
श्रद्धाति तेषां रूपं सः सद्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

अर्थ—छह द्रव्य नव पदार्थ पांच अस्तिकाय सप्त तत्व ये जिनवचनमैं कहे हैं तिनिका स्वरूपकूं जो श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी जाननां ॥ १९ ॥

भावार्थ—जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये तो छह द्रव्य हैं, बहुरि जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं, छह द्रव्य काल विना पंचास्तिकाय हैं। पुण्य पाप विना नव पदार्थ सप्त तत्व हैं। इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा—जो जीवन तै चेतनास्वरूप है सो चेतना दर्शनज्ञानमयी है, पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण गुणमयी मूर्तीक है, याके परमाणु और स्कन्ध ऐसे दोय भेद हैं; बहुरि स्कधके भेद शब्द बन्ध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप

उद्योत इत्यादि अनेक प्रकार है, धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य ये एक एक हैं अमूर्त्तीक हैं निष्क्रिय है, अर कालाणुअसख्यात द्रव्य है। काल विना पांच द्रव्यनिकै वहुप्रदेशीपणां है यातैं पांच अस्तिकाय हैं काल द्रव्य बहुप्रदेशी नाही तातैं अस्तिकाय नांहीं, इत्यादिक इनिका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातै जानना। वहुरि एक तौ जीव पदार्थ है अर अजीव पदार्थ पांच हैं, बहुरि जीवकै कर्मबंध योग्य पुद्गल होय सो आश्रव है वहुरि कर्म बंधै सो बंध है, बहुरि आश्रव रुकै सो सवर है, कर्मबध झड़ै सो निर्जरा है संपूर्ण कर्मका नाश होय सो मोक्ष है जीवनिकूं सुखका निमित्त सो पुण्य है, बहुरि दु खका निमित्त सो पाप है, ऐसैं सप्त तत्व नव पदार्थ हैं। इनिका आगमकै अनुसार स्वरूप जानि श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी होय है ॥ १९ ॥

आगैं व्यवहार निश्चय करि सम्यक्त्व दोय प्रकार करि कहैं हैं,—

जीवादी सद्दहणं सम्मत्त जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥२०॥

जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम्।
व्यवहारात् निश्चयतः आत्मैव भवति सम्यक्त्वम् ॥

अर्थ—जीव आदि कहे जे पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व जिनभगवाननैं कह्या है, वहुरि निश्चयतैं अपना आत्माहीका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है ॥ २० ॥

भावार्थ—तत्वार्थका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व है, वहुरि अपना आत्मस्वरूपका अनुभव करि तिसकी श्रद्धा प्रतीति रुचि आचरण सो निश्चयतैं सम्यक्त्व है, सो यह सम्यक्त्व आत्मातैं जुदा वस्तु नांही है आत्माहीका परिणाम है सो आत्माही है। ऐसैं सम्यक्त्व अर आत्मा एकही वस्तुहै यह निश्चयका आशय जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहैं हैं जो यह सम्यग्दर्शन है सो सर्व गुणनिमैं सार है ताहि धारण करो;-

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण ।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥२१॥

एवं जिनप्रणीतं दर्शनरत्नं धरत भावेन ।
सारं गुणरत्नत्रये सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥२१॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देवनैं कह्या दर्शन है सो गुणनिविषैं अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीन रत्ननिविषैं सार है उत्तम है, बहुरि मोक्षमंदिरके चढनेकूं प्रथम पैडी है, सो आचार्य कहैं हैं—हे भव्य जीव हो ! तुम याकूं अंतरंग भावकरि धारण करो, बाह्य क्रियादिक करि धारण किया तौ परमार्थ नाहीं अंतरंगकी रुचिकरि धारणा मोक्षका कारण है ॥ २१ ॥

आगैं कहैं हैं—जो श्रद्धान करै ताहीकै सम्यक्त्व होय है,—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं ।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

यत् शक्नोति तत् क्रियते यत् च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धानम् ।
केवलिजिनैः भणितं श्रद्धधानस्य सम्यक्त्वम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जो करनेंकूं समर्थ हूजे सो तौ कीजिये बहुरि जो करनैकूं नहीं समर्थ हूजिये सो श्रद्धिए जातैं केवली भगवाननैं श्रद्धान करनेंवालेकैं सम्यक्त्व कह्या है ॥ २२ ॥

भावार्थ—इहां आशय ऐसा है जो कोऊ कहै सम्यक्त्व भये पीछैं तौ सर्व परद्रव्य संसारकूं हेय जानियेहै सो जाकूं हेय जानैं ताकू छोड़ै मुनि होय चारित्र आचरै तब सम्यक्त्व भया जानिये. ताका समाधानरूप यह गाथा है जो सर्व परद्रव्यकूं हेय जानि निज स्वरूपकूं उपादेय जान्यां श्रद्धान किया तब मिथ्याभाव तौ मिट्या परतु चारित्रमोहकर्मको उदय प्रबल होय जेतैं चारित्र अगीकार करनेकी सामर्थ्य नहीं होय तेतै जेती सामर्थ्य होय तेता तौ करै तिस सिवायका श्रद्धान करै, ऐसे श्रद्धान करनेवालाहीकै भगवानतै सम्यक्त्व कह्या है ॥ २२ ॥

आगैं कहैं है, जो ऐसै दर्शन ज्ञान चारित्र विपैं तिष्ठैं है ते वंदिवे योग्य हैं,—

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं ॥ २३ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये नित्यकालसुप्रस्वस्थाः।
एते तु वन्दनीया ये गुणवादिनः गुणधराणाम् ॥ २३ ॥

अर्थ.—दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तप विनय इनिविपैं जे भले प्रकार तिष्ठैं हैं ते प्रशस्तहैं सराहने योग्य हैं अथवा भलै प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं, बहुरि गणधर आचार्य हैं तिनिके गुणानुवाद करनेवाले हैं ते वन्दने योग्य है। अन्य जे दर्शनादिकतैं भ्रष्ट हैं अर गुणवाननितैं मत्सरभाव राखि विनयरूप नहीं प्रवर्तैं हैं ते वन्दिवेयोग्य नाही हैं ॥२३॥

आगै कहै हैं जो यथाजात रूपकूं देखि मत्सरभाव करि वन्दना नहीं करै हैं ते मिथ्या दृष्टी ही हैं,—

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ॥ २४ ॥

सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरी ।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिः भवति एषः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो सहजोत्पन्न यथाजात रूपकू देखि करि न मानै है तिसका विनय सत्कार प्रीति नाहीं करै है अर मत्सरभाव करै है सो संयमप्रतिपन्न है दीक्षा ग्रहण करी है तौऊ प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टी है ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो यथाजातरूपकूं देखि मत्सरभावकरि ताका विनय नहीं करै तौ जानिये याकै इस रूपकी श्रद्धा रुचि नांहीं ऐसैं श्रद्धा रुचि विना तौ मिथ्यादृष्टी ही होय । इहां आशय ऐसा जो श्वेताम्बरादिक भये ते दिगम्बररूपतैं मत्सरभाव राखै अर तिसका विनय नहीं करैं तिनिका निषेध है ॥ २४ ॥

आगैं याहीकू दृढ़ करैं हैं,—

अमराण वंदियाणं रूवं दट्टूण सीलसहियाणं ।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥ २५ ॥

अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानाम् ।
ये गौरवं कुर्वन्ति च सम्यक्त्वविवर्जिताः भवंति ॥

अर्थ—शीलकरि सहित देवनिकरि वंदनेयोग्य जो जिनेश्वर देवका यथाजात रूपकूं देखिकरि गौरव करै हैं विनयादिक नहीं करै हैं ते सम्यक्त्वकरि वर्जित है ॥

भावार्थ—जा रूपकूं अणिमादिक ऋद्धिनिके धारी देव भी पगा पड़ैं ताकू देखि मत्सरभावकरि नहीं वदैं हैं तिनिकै सम्यक्त्व काहेका ? ते सम्यक्त्वतैं रहितही हैं ॥ २५ ॥

आगै कहैं हैं जो असंयमी वंदवे योग्य नांही है;—

असंसंजदं ण वन्दे वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि ॥२६

असंयतं न वन्देत वस्त्रविहीनोऽपि स न वन्द्येत।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकः अपि न संयतः भवति ॥२६॥

अर्थ—असंयमीकूं नांही वंदिये बहुरि भावसंयम नहीं होय अर बाह्य वस्त्ररहित होय सो भी वंदिवे योग्य नाही जातैं ये दोऊ ही संयम-रहित समान हैं, इनिमैं एक भी संयमी नांही ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ भेष धार्‌या है सो तौ असंयमी है ही, बहुरि जो बाह्य नग्नरूप धारण किया अर अन्तरङ्ग भावसंयम नांही है तौ वह भी असंयमीही है, तातैं ये दोऊही असंयमी है, तातै दोऊ ही वंदवे योग्य नाहीं। इहां आशय ऐसा है जो ऐसैं मति जानियो–जो आचार्य यथाजातरूपकूं दर्शन कहते आवैं हैं सो केवल नग्नरूपही यथाजातरूप होगा, जातैं आचार्य तौ बाह्य अभ्यंतर सर्व परिग्रहसूं रहित होय ताकूं यथाजातरूप कहे हैं। अभ्यंतर भावसंयम विना बाह्य नग्न भये तौ किछू संयमी होयहै नाही ऐसैं जानना। इहां कोई पूछै—बाह्य भेष शुद्ध होय आचार निर्दोष पालताकै अभ्यंतर भावमैं कपट होय ताका निश्चय कैसैं होय, तथा सूक्ष्म भाव केवलीगम्य हैं, मिथ्यात्व होय ताका निश्चय कैसैं होय, निश्चयविना वंदनेकी कहा रीति? ताका समाधान ऐसा जो कपटका जेतैं निश्चय नहीं होय तेतैं आचार शुद्ध देखि वंदै तामैं दोष नाही, अर कपटका कोई कारणतैं निश्चय होजाय तब नहीं वंदै, बहुरि केवलीगम्य मिथ्यात्वकी व्यवहारमैं चर्चा नाही छद्मस्थके ज्ञान गम्यकी चर्चा है। जो अपने ज्ञानका विषयही नाही ताका बाध निर्बाध करनेका व्यवहार नाही सर्वज्ञ भगवानकी भी यह ही आज्ञा है, व्यवहारी जीवकूं व्यवहारका ही शरण है ॥ २६ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृढ करता संता कहैं हैं;—

णवि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥२७

नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापिच जातिसंयुक्तः।
कः[1] वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति ॥२७

अर्थ—देहकूं भी नाही वंदिये है बहुरि कुलकूं भी नाही वंदिये है बहुरि जातियुक्तकूं भी नांही वंदिये है जातैं गुणरहित होय ताकूं कौन वंदे गुण बिना प्रकट मुनि नहीं श्रावक भी नांही है॥

भावार्थ—लोकमैं भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन होय ताकूं कोऊ श्रेष्ठ मानै नाही, देह रूपवान होय तौ कहा, कुल बड़ा होय तौ कहा, जाति बड़ी होय तौ कहा, जातैं मोक्षमार्गमैं तौ दर्शन ज्ञान चारित्र गुण हैं इनिविना जाति कुल रूप आदिक वंदनीक नाही हैं, इनितैं मुनि-श्रावकपणा आवै नांही, मुनिश्रावकपणा तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रतैं होय है, तातैं इनिके धारक हैं तेही वंदिवे योग्य हैं जाति कुल आदि वंदिवे योग्य नांही हैं॥ २७॥

आगै कहैं हैं जे तप आदिकरि संयुक्त हैं तिनिकूं वंदूं हूं,

वंदमि तवसावण्णा[1] सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण[2] सुद्धभावेण॥ २७॥

---

१ 'क वन्देगुणहीन' षट्पाहुडमें ऐसी है।

१—'तवसमण्णा, छाया—(तपःसमापन्नात) 'तवसउण्णा' 'तवसमाण' ये तीन पाठ मुद्रित षट्प्राभृतकी पुस्तक तथा उसकी टिप्पणीमें हैं। २ 'सम्मत्तेणेव' ऐसा पाठ होनेसे पादभग नहीं होता।

वन्दे तपःश्रमणान् शीलं च गुणं च ब्रह्मचर्यं च ।
सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन शुद्धभावेन ॥ २७ ॥

अर्थ—आचार्य कहैं हैं जो—जे तपकरि सहित श्रमणपणा धारैं हैं तिनिकूं तथा तिनिके शीलकूं बहुरि तिनिके गुणकूं बहुरि ब्रह्मचर्यकूं मैं सम्यक्त्वसहित शुद्धभावकरि वंदूं हूँ जातैं तिनिकै तिनि गुणनिकरि सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव करि सिद्धि कहिये मोक्ष ता प्रति गमन होय है ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या जो–देहादिक वंदिवे योग्य नांही, गुण वंदिवे योग्य हैं। अब इहां गुणसहितकूं वदना करी है तहां जे तप धारि गृहस्थपणां छोड़ि मुनि भये हैं तिनिकूं तथा तिनिके शीलगुण ब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभावकरि संयुक्त होय तिनिकूं वंदना करी है। तहा शीलशब्दकरि तौ उत्तरगुण लेना, बहुरि गुणशब्दकरि मूलगुण लेनें, बहुरि ब्रह्मचर्य शब्दकरि आत्मस्वरूपविषैं लीनपणा लेनां ॥ २८ ॥

आगैं कोई आशका करै जो संयमी वंदनें योग्य कह्या तौ समवसरणादि विभूति सहित तीर्थंकरहैं ते वदिवे योग्य हैं कि नांही ताका समाधानकूं गाथा कहैं हैं–जो तीर्थंकर परमदेव हैं ते सम्यक्त्वसहित तपके माहात्म्यकरि तीर्थंकर पदवी पावैहैं सोभी वदिवे योग्य हैं;

चउसट्ठिचमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो ।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ॥२९॥

चतुःषष्टिचमरसहितः चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयैः संयुक्तः ।
[1]अनवरतबहुसत्त्वहितः कर्मक्षयकारणनिमित्तः[2] ॥२९॥

अर्थ—जो चौसठि चमरनिकरि सहित हैं, बहुरि चौतीस अतिशयनिकरि सहित हैं, बहुरि निरन्तर बहुत प्राणीनिका हित जाकरि

होय है, ऐसे उपदेशके दाता है बहुरि कर्मका क्षयका कारण है ऐसे तीर्थंकर परमदेव है ते वंदिवे योग्य हैं।

भावार्थ—इहां चौसठि चमर चौतीस अतिशय सहित विशेषणनिकरि तौ तीर्थंकरका प्रभुत्व जनाया है, अर प्राणीनिका हित करना अर कर्मका क्षयका कारण विशेषणतैं परका उपकारकरनहारापणां जनाया है, इनि दोऊही कारणनितैं जगतमैं वंदवे पूजवे योग्य हैं। यातैं ऐसा भ्रम नहीं करनां जो तीर्थंकर कैसैं पूज्य हैं, ये तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं। तिनिकै समवसरणादिक विभूति रचि इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करै हैं। इनिकैं कछू प्रयोजन नांही है आप दिगंबरताकूं धारै अंतरीख तिष्ठैं हैं, ऐसा जानना ॥ २९ ॥

आगैं मोक्ष काहेतैं होय है सो कहैं हैं,—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३०॥

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण संयमगुणेन।
चतुर्णामपि समायोगे मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥ ३० ॥

अर्थ—ज्ञान करि दर्शनकरि तपकरि अर चारित्रकरि इनि च्यारनिका समायोग होतैं जो संयमगुण होय ताकरि जिनशासनविषै मोक्ष होना कह्या है ॥ ३० ॥

आगैं इनि ज्ञान आदिकै उत्तरोत्तर सारपणा कहैं हैं,—

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥३१॥

---

१ 'अणुचरबहुसत्तहिओ' (अनुचरबहुसत्वहित.) मुद्रित षट्प्राभृतमें यह पाठ है। २ 'लिमित्ते' मुद्रित षट्प्राभृतमें ऐसा पाठ है।

ज्ञानं नरस्य सारः सारः अपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम् ।
सम्यक्त्वात् चरणं चरणात् भवति निर्वाणम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—प्रथम तौ या पुरुष के ज्ञान सार है जातैं ज्ञानतैं सर्व हेय उपादेय जाने जाय हैं. बहुरि या पुरुषकैं सम्यक्त्व निश्चय करि सार है जातैं सम्यक्त्व विना ज्ञान मिथ्या नाम पावै है, सम्यक्त्वतैं चारित्र होय है जातै सम्यक्त्व विना चारित्र भी मिथ्याही है, बहुरि चारित्र तैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—चारित्र तैं निर्वाण होय है अर चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होय है अर ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होय है ऐसैं विचार किये सम्यक्त्व के सारपणां आया। यातैं पहलैं तौ सम्यक्त्व सारहै पीछैं ज्ञान चारित्र सार है। पहलैं ज्ञानतैं पदार्थनिकू जानिये हैं यातैं पहलैं ज्ञान सार है तौऊ सम्यक्त्व विना ताका भी सारपणा नाही, ऐसा जानना ॥३२

आगै इसही अर्थकू दृढ़ करैं हैं—

णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण ।
चोण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो ॥३२॥

ज्ञाने दर्शने च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।
चतुर्णामपि समायोगे सिद्धा जीवा न सन्देहः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ज्ञान होतै दर्शन होतैं सम्यक्त्वसहित तपकरि चारित्र करि इनि च्यारनिका समायोग होतैं जीव सिद्ध भये हैं, यामैं संदेह नाही है ॥

भावार्थ—पूर्वैं जे सिद्ध भये हैं ते सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिके संयोगहीतैं भये हैं यह जिनवचन है, यामैं संदेह नाही ॥ ३२ ॥

आगैं कहै है जो लोक विषैं सम्यग्दर्शनरूप रत्न अमोलक है जो देव दानवनिकरि पूज्य है—

कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं ।
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए ॥ ३३ ॥

कल्याणपरंपरया लभंते जीवाः विशुद्धसम्यक्त्वम् ।
सम्यग्दर्शनरत्नं अर्घ्यते सुरासुरे लोके ॥ ३३ ॥

अर्थ—जीव है ते विशुद्ध सम्यक्त्व है ताहि कल्याणकी परंपरा सहित पावैं हैं तातैं सम्यग्दर्शन रत्न है सो इस सुर असुरनिकरि भऱ्या लोकविषैं पूज्य है ॥

भावार्थ—विशुद्ध कहिये पचीस मलदोषनिकरि रहित निरतिचार सम्यक्त्वतैं कल्याणकी परंपरा कहिये तीर्थंकर पदवी पावै है सो यातैं यह सम्यक्त्व रत्न सर्व लोक देव दानव मनुष्यनिकरि पूज्य होय है। तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके कारण सोलह कारण भावना कही हैं तिनिमैं पहलै दर्शनविशुद्धि है सो ही प्रधान है, ये ही विनयादिक पंद्रह भावनानिका कारण है, यातैं सम्यग्दर्शनकै ही प्रधानपणा है ॥३३॥

आगैं कहै हैं जो उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणांकूं पाय सम्यक्त्व पाय मोक्ष पावै है यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है—

लद्धूण[1] य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गुत्तेण ।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसुक्खं[2] च मोक्खं च ॥३४

१ 'दद्‌ठूण' मुद्रित प्रतिमें ऐसा पाठ है।

२ 'अक्खयसोक्खं लहदि मोक्खं च' मुद्रितप्रतिकी टिप्पणीमें ऐसा पाठ भी है।

लब्ध्वा च मनुजत्वं सहितं तथा उत्तमेन गोत्रेण ।
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अक्षयसुखं च मोक्षं च ॥ ३४ ॥

अर्थ—उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणा प्रत्यक्ष पाय करि अर तहा सम्यक्त्व पाय करि अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान पावैं हैं, बहुरि तिस सुखसहित मोक्ष पावैं हैं ॥

भावार्थ—यह सर्व सम्यक्त्वका माहात्म्य है ॥ ३४ ॥

आगैं प्रश्न उपजै है जो सम्यक्त्वके प्रभावतैं मोक्ष पावैं हैं सो तत्काल ही पावैं हैं कि किछू अवस्थान भी रहैं हैं ? ताके समाधानरूप गाथा कहैं हैं,—

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीस अइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया ॥३५

विहरति यावत् जिनेंद्रः सहस्राष्टलक्षणैः संयुक्तः ।
चतुस्त्रिंशदतिशययुतः सा प्रतिमा स्थावरा भणिता ॥३५॥

अर्थ—केवलज्ञान भये पीछैं जिनेन्द्र भगवान जेतैं इस लोकमैं आर्यखडमैं विहार करैं तेतै तिनिकी सो प्रतिमा कहिये शरीर सहित प्रतिबिंब तिसकूं 'थावर प्रतिमा' ऐसा नाम कहिये । सो कैसे हैं जिनेन्द्र एकहजार आठ लक्षणनि करि सयुक्त है। तहा श्रीवृक्ष कू आदि लेय एकसौ आठतौ लक्षण होयहैं । बहुरि तिल मुसकूं आदिलेय नवसै व्यंजन होयहैं । बहुरि चौतीस अतिशयमैं दश तौ जन्मतैं ही लिये उपजैहैं,—निस्वेदता १ निर्मलता २ श्वेतरुधिरता ३ समचतुरस्र संस्थान ४ वज्रवृषभ नाराच सहनन ५ सुरूपता ६ सुगधता ७ सुलक्षणता ८ अतुलवीर्य ९ हितमित वचन १० ऐसैं दश । बहुरि घातिया कर्म क्षय भये दश होय,—शतयोजन सुभिक्षता १ आकाशगमन २ प्राणि-

घधको अभाव ३ कवलाहारको अभाव ४ उपसर्गको अभाव ५ चतुर्मुखपणौं ६ सर्वविद्याप्रभुत्व ७ छायारहितत्व ८ लोचननिस्पंदनरहितत्व ९ केश नखवृद्धिरहितत्व १० ऐसैं दश। वहुरि देवनिकरि भये चोदह,—सकलार्द्धमागधी भाषा १ सर्वजीव मैत्रीभाव २ सर्वऋतुफलपुष्पप्रादुर्भाव ३ आदर्शसदृश पृथ्वी होय ४ मंद सुगंध पवन चलै ५ सर्व लोकमैं आनंद वर्त्तै ६ भूमिकंटकादिरहित होय ७ देव गंधोदक वृष्टि करै ८ विहार होय तव पदकमल तलैं देव सुवर्णमयी कमल रचै ९ भूमि धान्यनिष्पत्तिसहित होय १० दिशा आकाश निर्मल होय ११ देवनिका आह्वानन शब्द होय १२ धर्म चक्र आगैं चलै १३ अष्ट मंगल द्रव्य होय १४ ऐसैं चोदह। सर्व मिलि चौंतीस भये। वहुरि अष्ट प्रातिहार्य होय, तिनिके नाम;—अशोकवृक्ष १ पुष्पवृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर ४ सिंहासन ५ छत्र ६ भामंडल ७ दुंदुभिवादित्र ८ ऐसैं आठ। ऐसैं अतिशयनिसहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य सहित तीर्थंकर परमदेव जेतैं जीवनिकै संबोधन निमित्त विहार करते विराजैं तेतैं स्थावर प्रतिमा कहिये। ऐसैं स्थावर प्रतिमा कहनेतैं तीर्थंकरकै केवलज्ञान भये पीछैं अवस्थान जनाया है अर धातु पाषाणकी प्रतिमा रचि स्थापिये है सो याका व्यवहार है॥ ३५॥

आगैं कर्म नाश करि मोक्ष प्राप्त होय हैं ऐसैं कहै है,—

वारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊणविहिवलेण स्सं।
वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता॥ ३६॥

द्वादशविधतपोयुक्ताः कर्म क्षपयित्वा विधिबलेन स्वीयम्।
व्युत्सर्गत्यक्तदेहा निर्वाणमनुत्तरं प्राप्ताः॥ ३६॥

अर्थ—जे वारह प्रकार तप करि संयुक्त भये संते विधिके वल करि अपने कर्मकूं खिपाय करि 'वोसट्टचत्तदेहा' कहिये न्यारा करि

छोड्या है देह ज्या ऐसे भये ते अनुत्तर कहिये जातैं परै अन्य अवस्था नाही ऐसी निर्वाण अवस्थाकूं प्राप्त होय हैं।

भावार्थ—जे तपकरि केवलज्ञान उपाय जेतै विहार करैं तेतै अवस्थान रहैं पीछैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी सामग्रीरूप विधिके बलकरि कर्म क्षिपाय व्युत्सर्गकरि देहकूं छोड़ि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। इहां आशय ऐसा जो निर्वाणकूं प्राप्त होय तब लोकके शिखर जाय तिष्ठै है तहां गमनविषै एक समय लागै तिस काल जगम प्रतिमा कहिये। ऐसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि मोक्षकी प्राप्ति होय है तहां सम्यग्दर्शन प्रधान है। इस पाहुडमैं सम्यग्दर्शनका प्रधानपणाका व्याख्यान किया ॥ ३६ ॥

सवैया छंद।

मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा।
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध फलै सुचरित्रा ॥
जे नर आगम जानि करै पहचानि यथावत मित्रा।
घाति क्षिपाय रु केवल पाय अघाति हने लहि मोक्ष पवित्रा ॥१

दोहा

नमूं देव गुरु धर्मकूं जिन आगमकूं मानि।
जा प्रसाद पायो अमल सम्यग्दर्शन जानि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित अष्टप्राभृतमे प्रथम दर्शनप्राभृत
और तिसकी जयचन्द्र छाबडा कृत देशभाषामयवचनिका

❀ समाप्त ❀

* श्री *

अथ [1]सूत्रपाहुड

—❀ २ ❀—

दोहा

वीर जिनेश्वरकूं नमूं गौतम गणधर लार ।
काल पंचमा आदिमैं भए सूत्रकरतार ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकरि श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा बंध सूत्रपाहुड है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिए है;—

तहां प्रथमही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्रकी महिमागर्भित सूत्रका स्वरूप जनावै हैं:—

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥ १ ॥

अर्हद्भाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक् ।
सूत्रार्थमार्गणार्थं श्रमणाः साधयंति परमार्थम् ॥१॥

अर्थ—जो गणधर देवनिनैं सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूंथ्या रच्या जो सूत्र है, सो कैसाक है सूत्र—सूत्रका जो किछू अर्थ है ताका मार्गण कहिये हेरना जाननां सो है प्रयोजन जामैं, ऐसे सूत्र करि श्रमण कहिये मुनि हैं ते परमार्थ कहिये उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो

---

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें दूसरा चारित्रपाहुड है ।

अविनाशी मोक्ष ताहि साधै है। इहां गाथामैं सूत्र ऐसा विशेष्य पद न कह्या तौऊ विशेषणनिकी सामर्थ्यतैं लिया है।

भावार्थ—जो अरहंत सर्वज्ञ करि भाषित है अर गणधर देवनिकरि अक्षर पद वाक्यमयी गूंथ्या है अर सूत्रके अर्थका जाननेकाही है अर्थ प्रयोजन जामैं ऐसा सूत्र करि मुनि परमार्थ जो मोक्ष ताहि साधै है। अन्य जे अक्षपाद जैमिनि कपिल सुगत आदि छद्मस्थनिकरि रचे कल्पित सूत्र हैं तिनिकरि परमार्थकी सिद्धि नांही है, ऐसा आशय जानना ॥ १ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा सूत्रका अर्थ आचार्यनिकी परपरा करि वर्त्तै तिसकूं जानि मोक्षमार्गकूं साधै है सो भव्य है,—

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपरेण मग्गेण ।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो ॥ २ ॥

सूत्रे यत् सुदृष्टं आचार्यपरंपरेण मार्गेण ।
ज्ञात्वा द्विविधं सूत्रं वर्त्तते शिवमार्गे यः भव्यः ॥ २ ॥

अर्थ—जो सर्वज्ञभाषित सूत्रविषैं जो किछू भलै प्रकार कह्या है ताकूं आचार्यनिकी परंपरारूप मार्ग करि दोयप्रकार सूत्रकूं शब्द थकी अर्थ थकी जानि अर मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै है सो भव्यजीव है मोक्ष पावने योग्य है।

भावार्थ—इहा कोई कहै—अरहंतका भाष्या अर गणधर देवनिका गूंथ्या सूत्र तौ द्वादशांगरूप हैं ते तौ अबार कालमैं दीखै नाही तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसैं सधै, ताका समाधानकूं यह गाथा है—जो अरहतभाषित गणधर गूंथित सूत्रमैं जो उपदेश है तिसकूं आचार्यनिकी परपराकरि जानिये है, तिसकूं शब्द अर्थ करि जानि जो मोक्षमार्ग साधै है सो मोक्ष होने योग्य भव्य है। इहा फेरि कोऊ पूछै—जो

आचार्यनिकी परंपरा कहा ? तहां अन्य ग्रंथनिमें आचार्यनिकी परंपरा कही है, सो ऐसें है;--

श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर सर्वज्ञ देव पीछैं तीन तौ केवलज्ञानी भये; गौतम १ सुधर्म २ जंबू ३। बहुरि तापीछैं पांच श्रुतकेवली भये तिनिकूं द्वादशांग सूत्रका ज्ञान भया.--विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्द्धन ४ भद्रबाहु ५। तिनिपीछैं दश पूर्वनिके पाठी ग्यारह भये; विशाख १ प्रोष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिल ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११। तिनि पीछैं पांच ग्यारह अंगनिके धारक भये, नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंस ५। बहुरि तिनि पीछैं एक अंगके धारक च्यार भये; सुभद्र १ यशोभद्र २ भद्रबाहु ३ लोहाचार्य ४। इनि पीछैं एक अंगके पूर्ण ज्ञानीकी तौ व्युच्छित्ति भई अर अंगका एकदेश अर्थके ज्ञानी आचार्य भये तिनिमैं केतेकनिके नाम;-अर्हद्बलि, माघनंदि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र इत्यादि। बहुरि तिनि पीछैं तिनिकी परिपाटीमैं आचार्य भये तिनितैं अर्थका व्युच्छेद नहीं भया, ऐसैं दिगंबरनिके संप्रदायमैं प्ररूपणा यथार्थ है। बहुरि अन्य श्वेताम्बरादिक वर्द्धमानस्वामीतैं परंपरा मिलावै है सो कल्पित है जातैं भद्रबाहु स्वामी पीछैं केई मुनिकालमैं भ्रष्ट भये ते अर्द्धफालक कहाये तिनिकी संप्रदायमैं श्वेताम्बर भये, तिनिमैं देवगणनामा साधु तिनिकी संप्रदायमैं भया है तानैं सूत्र रचे हैं सो तिनिमैं शिथिलाचार पोषनेकूं कल्पित कथा तथा कल्पित आचरणकी कथनी करी है सो प्रमाणभूत नाहीं है। पंचमकालमैं जैनाभासनिकै शिथिलाचारकी बहुल्यता है सो युक्त है इस कालमैं सांचा मोक्षमार्गकी विरलता है तातैं शिथिलाचारीनिकै सांचा मोक्षमार्ग कहातैं होय ऐसा जाननां।

अब इहां कछूक द्वादशांगसूत्र तथा अंगबाह्यश्रुतका वर्णन लिखिये है,--तहां तीर्थंकरके मुखतैं उपजी जो सर्व भाषामय दिव्य-

ध्वनि ताकूं सुनिकरि च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक गणधर देवनिनै अक्षर पदमय सूत्ररचना करी। तहा सूत्र दोय प्रकार है,—एक अग दूसरा अंगवाह्य। तिनके अपुनरुक्त अक्षरनिकी संख्या वीस अकनि प्रमाण है ते अंक एक घाटि इकट्ठी प्रमाण हैं। ते अक–१८४४६७४४०७३-७०९५५१६१५ एते अक्षर है। तिनिके पद करिये तब एक मध्यपदके अक्षर सौलासै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी कहे हैं तिनिका भाग दिये एकसौ बारह कोडि तियासीलाख अठावन हजार पांच इतनें पावैं येते पदहैं ते तौ बारह अंगरूप सूत्रके पदहैं। अर अवशेष वीस अंकनिमैं अक्षर रहे ते अगवाह्य सूत्र कहिये, ते आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तर अक्षर हैं तिनि अक्षरनिमैं चौदह प्रकीर्णकरूप सूत्ररचना है।

अब इनि द्वादशागरूप सूत्ररचनाके नाम अर पद संख्या लिखिए है,—तहां प्रथम अंग आचारांग है तामैं मुनीश्वरनिके आचारका निरूपण है ताके पद अठारह हजार हैं। बहुरि दूसरा सूत्रकृत अग है ताविषैं ज्ञानका विनय आदिक अथवा धर्मक्रियामैं स्वमत परमतकी क्रियाका विशेपका निरूपण है याके पद छत्तीस हजार है। बहुरि तीसरा स्थान अग है ताविषै पदार्थनिका एक आदि स्थाननिका निरूपण है जैसैं जीव सामान्य करि एकप्रकार विशेषकरि दोय प्रकार तीन प्रकार इत्यादि ऐसै स्थान कहे हैं याके पद वियालीस हजार है। बहुरि चौथा समवाय अग है याविषैं जीवादिक छह द्रव्यनिका द्रव्य क्षेत्र कालादि करि वर्णन है याके पद एक लाख चौसठि हजार हैं। पांचमा व्याख्याप्रज्ञप्ति अग है याविषै जीवके अस्ति नास्ति आदिक साठि हजार प्रश्न गणधरदेव तीर्थंकरकै निकट किये तिनिका वर्णन है याके पद दोय लाख अठाईस हजार है। बहुरि छठा ज्ञातृधर्मकथा नामा अग है यामैं तीर्थंकरनिके धर्मकी कथा जीवादिक पदार्थनिका स्वभावका वर्णन तथा गणधरके प्रश्ननिका उत्तरका वर्णन है याके पद पांच लाख छप्पन हजार हैं। बहुरि सातवा उपासकाध्ययननाम

अंग है याविषैं ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकका आचारका वर्णन है याके पद ग्यारह लाख सत्तर हजार है। बहुरि आठमा अंतकृतदशागनामा अंग है याविषैं एक एक तीर्थंकरकै वारैं दशदश अतकृत केवली भये तिनिका वर्णन है याके पद तेईस लाख अठाईस हजार हैं। बहुरि नवमा अनुत्तरोपपादकनामा अग है याविषैं एक एक तीर्थंकरकै वारैं दशदश महामुनि घोर उपसर्ग सहि अनुत्तर विमाननिमैं उपजे तिनिका वर्णन है याके पद बाणवै लाख चवालीस हजार है। बहुरि दशमा प्रश्न व्याकरणनाम अग है याविषैं अतीत अनागत कालसंबधी शुभाशुभका प्रश्न कोई करै ताका उत्तर यथार्थ कहनेका उपायका वर्णन है तथा आक्षेपणी विक्षेपणी सवेदनी निर्वेदनी इनि च्यार कथानिका भी या अंगमैं वर्णन है याके पद तिराणवैं लाख सोलह हजार हैं। बहुरि ग्यारमां विपाकसूत्र नामा अंग है याविषैं कर्मका उदयका तीव्र मंद अनुभागका द्रव्य क्षेत्र काल भावका अपेक्षा लिये वर्णन है याके पद एक कोडि चौरासी लाख हैं। ऐसैं ग्यारह अग हैं तिनिके पदनिकी सख्याका जोड़ दिये च्यार कोडि पदरह लाख दोय हजार पद होय हैं। बहुरि बारमा दृष्टिवादनामा अग है ताविषैं मिथ्यादर्शनसबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिका वर्णन है याके पद एक सौ आठ कोडि अड़सठि लाख छप्पनहजार पाच पद हैं। या बारमा अंगका पाच अधिकार हैं;—परिकर्म १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ चूलिका ५ ऐसैं। तहां परिकर्मविषैं गणितके करण सूत्र है ताके पाच भेद हैं,—तहां चन्द्रप्रज्ञप्ति प्रथम है तामैं चन्द्रमाका गमनादिक परिवार वृद्धि हानि ग्रह आदिका वर्णन है याके पद छत्तीस लाख पांच हजार हैं। बहुरि दूजा सूर्यप्रज्ञप्ति है यामैं सूर्यकी ऋद्धि परिवार गमन आदिका वर्णन है याके पद पाच लाख तीन हजार हैं। बहुरि तीजा जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति है यामै जंबूद्वीपसबंधी मेरु गिरि क्षेत्र कुलाचल आदिका वर्णन है याकै पद तीन लाख पचीस हजार है। बहुरि चौथा द्वीपसागरप्रज्ञप्ति है यामैं द्वीपसागरका स्वरूप तथा तहां तिष्ठै

ज्योतिषी व्यंतर भवनवासी देवनिके आवास तथा तहां तिष्टे जिन-मंदिरनिका वर्णन है याके पद बावन लाख छत्तीस हजार हैं। बहुरि पांचमा व्याख्याप्रज्ञप्ति है याविषैं जीव अजीव पदार्थनिका प्रमाणका वर्णन है याके पद चौरासी लाख छत्तीस हजार हैं। ऐसैं परिकर्मके पाच भेदनिके पद जोडे एक कोडि इक्यासी लाख पाच हजार है। बहुरि बारमां अंगका दूजा भेद सूत्र नाम है ताविषै मिथ्यादर्शनसबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिकी पूर्वपक्ष लेकरि तिनिका जीव पदार्थपरि लगावना आदि वर्णन है याके भेद अठ्यासी लाख हैं। बहुरि बारमां अंगका तीजा भेद प्रथमानुयोग है या विषैं प्रथम जीवकू उपदेशयोग्य तीर्थंकर आदि तरेसठि शलाका पुरुषनिका वर्णन है याके पद पाच हजार है। बहुरि बारमा अंगका चौथा भेद पूर्वगत है, ताके चौदह भेद हैं तहां प्रथम उत्पाद नामा है ताविषैं जीव आदि वस्तुनिकै उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्मनिकी अपेक्षा भेद वर्णन है याके पद एक कोडि हैं। बहुरि दूजा अग्रायणीनाम पूर्व है याविषै सातसै सुनय दुर्नयका अर षट्द्रव्य सप्त तत्व नव पदार्थनिका वर्णन है याके छिनवै लाख पद हैं। बहुरि तीजा वीर्यानुवादनाम पूर्व है याविषैं षट् द्रव्यनिकी शक्तिरूप वीर्यका वर्णन है याके पद सत्तरि लाख हैं। बहुरि चौथा अस्तिनास्ति प्रवाद-नामा पूर्व है या विषैं जीवादिक वस्तुका स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्ति पररूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा नास्ति आदि अनेक धर्मनिविषैं विधि निषेध करि सप्तभगकरि कथंचित् विरोध मेटने रूप मुख्य गौण करि वर्णन है याके पद साठि लाख हैं। बहुरि ज्ञान-प्रवादनामा पांचमां पूर्व है यामैं ज्ञानके भेदनिका स्वरूप संख्या विषय फल आदिका वर्णन है याके पद एक घाटि कोडि है। बहुरि छठा सत्यप्रवादनामा पूर्व है या विषैं सत्य असत्य आदिक वचननिकी अनेक प्रकार प्रवृत्ति है ताका वर्णन है याके पद एक कोडि छह हैं। बहुरि सातमां आत्मप्रवादनामा पूर्व है याविषैं आत्मा जो जीव पदार्थ है ताका कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मनिका निश्चय व्यवहार नय अपेक्षा वर्णन

है याके पद छब्बीस कोडि हैं। बहुरि कर्मप्रवाद नामा आठमा पूर्व है याविषैं ज्ञानावरण आदि आठ कर्मनिका बंध सत्व उदय उदीरणपणा आदिका तथा क्रियारूप कर्मनिका वर्णन है याके पद एक कोडि अस्सी लाख हैं। बहुरि प्रत्याख्याननामा नवमा पूर्व है यामैं पापके त्यागका अनेक प्रकार करि वर्णन है याके पद चौरासी लाख हैं। बहुरि दशमा विद्यानुवादनामा पूर्व है यामैं सातसै क्षुद्रविद्या अर पाचसै महाविद्या इनिका स्वरूप साधन मंत्रादिक अर सिद्ध भये इनिका फलका वर्णन है तथा अष्टाग निमित्त ज्ञानका वर्णन है याके पद एक कोडि दश लाख है बहुरि कल्याणवादनामा ग्यारवा पूर्व है यामैं तीर्थंकर चक्रवर्त्ती आदिके गर्भ आदि कल्याणका उत्सव तथा तिसके कारण षोडश भावनादिके तपश्चरणादिक तथा चन्द्रमा सूर्यादिकके गमनविशेष आदिकका वर्णन है याके पद छब्बीस कोडि हैं बहुरि प्राणवादनामा बारमा पूर्व है यामैं आठ प्रकार वैद्यक तथा भूतादिक व्याधि दूरि करनेके मंत्रादिक तथा विष दूरि करनेके उपाय तथा स्वरोदय आदिका वर्णन है याके तेरह कोडि पद हैं। बहुरि क्रियाविशालनामा तेरमा पूर्व है यामै संगीतशास्त्र छन्द अलंकारादिक तथा चौसठि कला, गर्भाधानादि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एकसौ आठ क्रिया, देववंदनादि पचीस क्रिया, नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिका वर्णन है याके पाद नव कोडि हैं। चौदहमां त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व है या विषै तीन लोकका स्वरूप अर बीजगणितका स्वरूप तथा मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षको कारणभूत क्रियाका स्वरूप इत्यादिका वर्णन है याके पाद बारह कोडि पचास लाख हैं। ऐसै चौदह पूर्व हैं, इनिके सर्व पदनिका जोड पिच्याणवै कोडि पचास लाख है। बहुरि बारमा अंगका पांचमा भेद चूलिका है ताके पांच भेद हैं तिनिके पद दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोयसै हैं। तहां जलगता चूलिकामैं जलका स्तंभन करना जलमैं गमन करना। अग्निगता चूलिकामैं अग्निस्तंभन करना अग्निमैं प्रवेश करना अग्निका भक्षण करना

इत्यादिके कारणभूत मंत्र तत्रादिकका प्ररूपण है, याके पद दोय कोडि नवलाख निवासी हजार दोयसै हैं। एते एते ही पद अन्य च्यार चूलिकाके जानने। बहुरि दूजी स्थलगता चूलिका है याविषैं मेरुपवत भूमि इत्यादि विषैं प्रवेश करनां शीघ्र गमन करना इत्यादि क्रियाके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है। बहुरि तीजी मायागता चूलिका है तामैं मायामयी इद्रजाल विक्रियाके कारणभूत मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादि-का प्ररूपण है। बहुरि चौथी रूपगता चूलिका है यामैं सिंह हाथी घोड़ा बैल हरिण इत्यादि अनेकप्रकार रूप पलटि लेना ताके कारणभूत मन्त्र तत्र तपश्चरण आदिका प्ररूपण है, तथा चित्राम काष्ठलेपादिकका लक्षण वर्णन है तथा धातु रसायनका निरूपण है। बहुरि पाचमीं आकाशगता चूलिका है यामैं आकाशविषै गमनादिकके कारणभूत मंत्र यंत्र तत्रादिकका प्ररूपण है। ऐसैं बारमा अग है। या प्रकार तौ बारह अंग सूत्र है।

बहुरि अङ्गबाह्य श्रुतके चौदह प्रकीर्णक हैं। तिनिमैं प्रथम प्रकी-र्णक सामायिक नामा है, ताविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेद-करि छह प्रकार इत्यादिक सामायिकका विशेषकरि वर्णन है। बहुरि दूजा चतुर्विंशतिस्तव नाम प्रकीर्णक है ताविषैं चौवीस तीर्थंकरनिकी महिमाका वर्णन है। बहुरि तीजा वदनानाम प्रकीर्णक है तामैं एक तीर्थंकरके आश्रय वदना स्तुतिका वर्णन है। बहुरि चौथा प्रति-क्रमणनामा प्रकीर्णक है तामैं सात प्रकारके प्रतिक्रमणका वर्णन है। बहुरि पाचमा वैनयिकनाम प्रकीर्णक है तामैं पंच प्रकारके विनयका वर्णन है। बहुरि छठा कृतिकर्मनामा प्रकीर्णक है तामैं अरहन्त आदिककी वदनाकी क्रियाका वर्णन है। बहुरि सातमा दशवैकालिकनामा प्रकीर्णक है तिसविषै मुनिका आचार आहा-रकी शुद्धता आदिका वर्णन है। बहुरि आठमा उत्तराध्ययननामा प्रकीर्णक है ताविषै परीषह उपसर्गका सहनेका विधान वर्णन है।

बहुरि नवमा कल्पव्यवहार नामा प्रकीर्णक है तामैं मुनिके योग्य आचरण अर अयोग्य सेवनके प्रायश्चित तिनिका वर्णन है। बहुरि दशमा कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ताविषैं मुनिकू यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसा द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा वर्णन है। बहुरि ग्यारमा महाकल्पनामा प्रकीर्णक है तामैं जिनकल्पी मुनिकै प्रतिमायोग त्रिकालयोगका प्ररूपण है तथा स्थविरकल्पी मुनिनिकी प्रवृत्तिका वर्णन है। बहुरि बारमा पुण्डरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं च्यार प्रकारके देवनिविषैं उपजनेके कारणनिका वर्णन है। बहुरि तेरमा महापुण्डरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं इन्द्रादिक बडी ऋद्धिके धारक देवनिके उपजनेके कारणनिका प्ररूपण है। बहुरि चौदहमा निषिद्धिकानामा प्रकीर्णक है ताविषैं अनेकप्रकार दोषकी शुद्धतानिमित्त प्रायश्चित्तनिका प्ररूपण है, यह प्रायश्चित्त शास्त्र है, याका निसितिका ऐसा भी नाम है। ऐसैं अङ्गबाह्य श्रुत चौदह प्रकार है।

बहुरि पूर्वनिकी उत्पत्ति पर्यायसमास ज्ञानतैं लगाय पूर्वज्ञानपर्यंत बीस भेद हैं तिनिका विशेष वर्णन है सो श्रुतज्ञानका वर्णन गोमट्टसार नाम ग्रन्थमैं विस्तार करि है तहांतैं जानना॥ २॥

आगैं कहै है जो सूत्रविषैं प्रवीण है सो संसारका नाश करै है,—

सुत्तम्मि[1] जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते[2] सहा णो वि॥ ३॥

सूत्रे ज्ञायमानः भवस्य भवनाशनं च सः करोति।
सूची यथा असूत्रा नश्यति सूत्रेण सह नापि॥ ३॥

---

१ 'सुत्तहि'। २ 'सुत्तहि' षट्पाहुडमें ऐसा पाठ है।

अर्थ—जो पुरुष सूत्रविषैं जाणमान है प्रवीण है सो संसारकै उपजनेंका नाश करै है बहुरि जैसैं लोहकी सूई है सो सूत्र कहिये डोरा तिस विना होय तौ नष्ट होजाय अर डोरासहित होय तौ नष्ट नहीं होय यह दृष्टांत है ॥

भावार्थ—सूत्रका ज्ञाता होय सो संसारका नाश करै है बहुरि ऐसैं है—जो सूई डोरासहित होय तौ दृष्टिगोचर होय पावै कदाचित् ही नष्ट नहीं होय अर डोरा विना होय तौ दीखै नाही नष्ट होय जाय तैसैं जाननां ॥ ३ ॥

आगैं सूईके दृष्टांतका दार्ष्टांत कहैं है;—

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥४॥

पुरुषोऽपि यः ससूत्रः न विनश्यति स गतोऽपि संसारे।
सच्चेतनप्रत्यक्षेण नाशयति तं सः अदृश्यमानोऽपि ॥४॥

अर्थ—जैसैं सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होय तैसैं सो पुरुष भी संसारमैं गत होय रह्या है अपना रूप आपकै दृष्टिगोचर नांही है तौऊ सूत्रसहित होय सूत्रका ज्ञाता होय तौ ताकै आत्मा सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदनकरि प्रत्यक्ष अनुभवमैं आवै है यातैं गत नाही है नष्ट नहीं भया है, सो जिस संसारमैं गत है तिस संसारका नाश करै है।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नांही है तौऊ सूत्रकै ज्ञाताकै स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि अनुभव गोचर है सो सूत्रका ज्ञाता संसार का नाश करै है आप प्रकट होय है यातैं सूईका दृष्टांत युक्त है ॥ ४ ॥

आगैं सूत्रमैं अर्थ कह्या है सो कहै हैं;—

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं ।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥ ५ ॥

सूत्रार्थं जिनभणितं जीवाजीवादिबहुविधमर्थम् ।
हेयाहेयं च तथा यो जानाति स हि सद्दृष्टिः ॥५॥

अर्थ—सूत्रका अर्थ है सो जिन सर्वज्ञ देव करि कह्या है बहुरि सूत्रविषैं अर्थ है सो जीव अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय कहिये त्यागने योग्य पुद्गलादिक अर अहेय कहिये त्यागने योग्य नांही ऐसा आत्मा सो याकूं जानैं सो प्रगट सम्यग्दृष्टी है।

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे सूत्र विषैं जीवादिक नव पदार्थ अर इनिमैं हेय उपादेय ऐसैं बहुत प्रकार करि व्याख्यान है ताकूं जानैं सो श्रद्धानवान सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ५ ॥

आगैं कहै हैं जो जिनभाषित सूत्र है सो व्यवहार परमार्थरूप दोय प्रकार है ताकूं जानि योगीश्वर शुद्ध भाव करि सुखकूं पावैं हैं;—

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो ।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥ ६ ॥

यत्सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च जानीहि परमार्थम् ।
तत् ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुंजं ॥ ६ ॥

अर्थ—जो जिनभाषित सूत्र है सो व्यवहार रूप है तथा परमार्थ रूप है ताकूं योगीश्वर जानि सुख पावै है बहुरि मलपुंज कहिये द्रव्य कर्म भाव कर्म नोकर्म ताहि क्षेपै है।

भावार्थ—जिन सूत्रकूं व्यवहार परमार्थरूप यथार्थ जानि योगीश्वर मुनि है सो कर्मका नाश करि अविनाशी सुखरूप मोक्षकूं पावै है। तहां परमार्थ कहिए निश्चय अर व्यवहार इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा जो-जिन आगमकी व्याख्या च्यार अनुयोगरूप शास्त्रनिमैं दोय प्रकार सिद्ध है एक आगमरूप, दूजी अध्यात्मरूप । तहां सामान्य विशेष करि सर्व पदार्थनिका प्ररूपण करिये है सो तौ आगमरूप है । बहुरि जहां एक आत्माहीकै आश्रय निरूपण करिये सो अध्यात्म है। तथा अहेतुमत् अर हेतुमत् ऐसैं भी दोय प्रकार है; तहां जो सर्वज्ञकी आज्ञाही करि केवल प्रमाणता मानिये सो तो अहेतुमत् है। अर जहां प्रमाण नयनि करि वस्तुकी निर्बाध सिद्धि जामैं करि मानिये सो हेतुमत् है। ऐसैं दोय प्रकार आगममैं निश्चय व्यवहार करि व्याख्यान ऐसैं है, सो किछू लिखिए हैं;—तहां जब आगमरूप सर्व पदार्थनिका व्याख्यानपरि लगाइये तब तौ वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप अनंतधर्मस्वरूप है सो-ज्ञानगम्य है, तिनिमैं सामान्यरूप तौ निश्चयनयका विषय है, अर विशेष रूप जे ते हैं तिनिकूं भेदरूपकरि न्यारे न्यारे कहै सो व्यवहार नयका विषय है ताकूं द्रव्यपर्याय स्वरूप भी कहिये। तहा जिस वस्तुकूं विवक्षित करि साधिये ताके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि जो किछू सामान्य विशेषरूप वस्तुका सर्वस्व होय सो तौ निश्चय व्यवहार करि कह्या है तैसैं सधै है, बहुरि तिस वस्तुके किछू अन्य वस्तुके संयोगरूप अवस्था होय तिसकूं तिस वस्तुरूप कहनां सो भी व्यवहार है ताकूं उपचार ऐसा भी नाम कहिये। याका उदाहरण ऐसा—जैसैं एक विवक्षित घटनामा वस्तु परि लगाइये तब जिस घटका द्रव्य क्षेत्र-काल भावरूप सामान्यविशेषरूप जैसा सर्वस्व है ते ता कह्या तैसैं निश्चय व्यवहार करि कहना सो तौ निश्चय व्यवहार है; अर घटकै किछू अन्य वस्तुका लेप करि तिस घटकूं तिस नाम करि कहना तथा अन्य पटादिविषै घटका आरोपण करि घट कहना सो भी व्यवहार है। तहां व्यवहारका दोय आश्रय हैं; एक

प्रयोजन, दूजा निमित्त। तहा प्रयोजन साधनेकू काहू वस्तुकूं घट कहनां सो तो प्रयोजनाश्रित है वहुरि काहू अन्य वस्तुके निमित्ततैं घटमैं अवस्था भई ताकूं घटरूप कहना सो निमित्ताश्रित है। ऐसैं विवक्षित सर्व जीव अजीव वस्तुनिपरि लगावनां। वहुरि जब एक आत्माहीकूं प्रधान करि लगावना सो अध्यात्म है। तहा जीव सामान्यकू भी आत्मा कहिये है। अर जो जीव अपनां सर्व जीवनितै भिन्न अनुभव करै ताकूं भी आत्मा कहिये है, तहां जब आपकूं सर्वतैं न्यारा अनुभव करि, आपापरि निश्चय लगाइये तब ऐसै जो आप अनादि अनत अविनाशी सर्व अन्य द्रव्यनितैं भिन्न एक सामान्य विशेषरूप अनतधर्मा द्रव्य पर्यायात्मक जीवनामा शुद्ध वस्तु है, सो कैसाक है—शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्मकू लिये अनत शक्तिका धारक है तामैं सामान्य भेद चेतना अनत शक्तिका समूह सो द्रव्य है। वहुरि अनत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य ये तौ चेतनाके विशेष हैं ते तौ गुण हैं अर अगुरुलघु गुणकै द्वारै षट्स्थान पतित हानि वृद्धिरूप परिणमता जीवकै त्रिकाला-त्मक अनत पर्याय हैं। ऐसा शुद्ध जीव नामा वस्तु सर्वज्ञ देख्या जैसा आगममैं प्रसिद्ध है सो तो एक अभेद रूप शुद्ध निश्चय नयका विषय भूत जीवै है इस दृष्टि करि अनुभव कीजे जब तौ ऐसा है। अर अनत धर्मनिमैं भेदरूप कोई एक धर्मकूं लेकरि कहना सो व्यवहार है वहुरि आत्म वस्तुकै अनादिहीतै पुद्गल कर्मका सयोग है ताकै निमि-त्ततैं विकार भावकी उत्पत्ति है ताके निमित्ततै रागद्वेष रूप विकार होय हैं ताकूं विभाव परिणति कहिये है, तिस करि फेरि आगामी कर्मका-वध होय है। ऐसैं अनादि निमित्त नैमित्तिक भाव करि चतुर्गति रूप ससारका भ्रमणरूप प्रवृत्ति होय है तहा जिस गतिकू प्राप्त होय तैसाही जीव नाम कहावै है तथा जैसा रागादिक भाव होय तैसा नाम कहावै वहुरि जब द्रव्यक्षेत्र काल भावकी वाह्य अतरग सामग्रीका निमित्त करि अपना शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनयका विषय स्वरूप आपकूं

जानि श्रद्धान करै, अर कर्म संयोगकूं अर तिसके निमित्ततैं अपनें भाव होय हैं तिनिका यथार्थ स्वरूप जानैं तब भेदज्ञान होय तब परभावनितैं विरक्त होय तब तिनिका मेटनेका उपाय सर्वज्ञके आगमतैं यथार्थ समझि ताकूं अंगीकार करै तब अपनें स्वभावमैं स्थिर होय अनंत चतुष्टय प्रगट होय सर्व कर्मका क्षय करि लोकके शिखर विराजै तब मुक्त भया कहावै ताकूं सिद्ध भी कहिये। ऐसैं जेती संसारकी अवस्था अर यह मुक्त अवस्था ऐसैं भेदरूप आत्माकूं निरूपै है सो भी व्यवहारनयका विषय है, याकूं अध्यात्म शास्त्रमैं अभूतार्थ असत्यार्थ नाम कहि करि वर्णन किया है जातैं शुद्ध आत्मामैं संयोगजनित अवस्था होय सो तौ असत्यार्थही है, किछू शुद्ध वस्तुका तौ यह स्वभाव नाहीं तातैं असत्यही है। बहुरि जो निमित्ततैं अवस्था भई सो भी आत्माहीका परिणाम है सो जो आत्माका परिणाम है सो आत्माहीमैं है तातैं कथंचित् याकूं सत्य भी कहिये परन्तु जेतैं भेदज्ञान नहीं होय तेतैंही यह दृष्टि है, भेदज्ञान भये जैसे है तैसै जानै है। बहुरि जे द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं ते आत्मातैं न्यारे हैं ही तिनितैं शरीरादिका संयोग है सो आत्मातैं प्रगट ही भिन्न हैं, तिनिकूं आत्माके कहिये हैं सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही, याकूं असत्यार्थ कहिये उपचार कहिये। इहां कर्मके संयोगजनित भाव हैं ते सर्व निमित्ताश्रित व्यवहारका विषय है अर उपदेश अपेक्षा याकूं प्रयोजनाश्रित भी कहिये ऐसैं निश्चय व्यवहारका संक्षेप है। तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं मोक्षमार्ग कह्या तहां ऐसैं समझना जो ये तीनूं एक आत्माहीके भाव हैं, ऐसैं तिनिका स्वरूप आत्माहीका अनुभव होय सो तौ निश्चय मोक्षमार्ग है तामैं भी जेतैं अनुभवकी साक्षात् पूर्णता नाहीं होय तेतैं एकदेशरूप होय ताकूं कथंचित् सर्वदेशरूप कहिकरि कहना सो तौ व्यवहार है अर एक देश नामकरि कहना सो निश्चय है। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं भेदरूप कहि मोक्षमार्ग कहिये तथा इनिके बाह्य परद्रव्य स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भाव निमित्त हैं तिनिकूं दर्शन

ज्ञान चारित्र नाम करि कहिये सो व्यवहार है। देव गुरुशास्त्रकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये जीवादिक तत्वनिकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये। शास्त्रके ज्ञान कहिये जीवादिक पदार्थनिके ज्ञानकूं ज्ञान कहिये इत्यादि। तथा पन्च महाव्रत पन्च समिति तीन गुप्तिरूप प्रवृत्तिकूं चारित्र कहिये। तथा बारह प्रकार तपकूं तप कहिये। ऐसें भेदरूप तथा परद्रव्यके आलंबनरूप प्रवृत्ति हैं ते सर्व अध्यात्मशास्त्र अपेक्षा व्यवहार नामकरि कहिये हैं जातै वस्तुका एकदेशकूं वस्तु कहनां सो भी व्यवहार है, अर परद्रव्यका आलंबनरूप प्रवृत्तिकू तिस वस्तुके नामकरि कहनां सो भी व्यवहार है। बहुरि अध्यात्मशास्त्रमै ऐसै भी वर्णन है जो वस्तु अनंतधर्मरूप है सो सामान्य विशेषकरि तथा द्रव्यपर्यायकरि वर्णन कीजिये है तहां द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहनां सो व्यवहारका विषय है। बहुरि द्रव्यका भी तथा पर्यायका भी निषेध करि वचन अगोचर कहनां सो निश्चयनयका विषय है। बहुरि द्रव्यरूप है सो ही पर्याय रूप है ऐसै दोऊहीकूं प्रधान करि कहना सो प्रमाणका विषय है, याका उदाहरण ऐसा जैसें जीवकू चैतन्य रूप नित्य एक अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहना सो तौ द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर ज्ञानदर्शनरूप अनित्य अनेक नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहनां सो पर्यायार्थिक नयका विषय है। अर दोऊ ही प्रकारकै प्रधानताका निषेधमात्र वचन अगोचर कहना सो निश्चयनयका विषय है। अर दोऊ ही प्रकारकूं प्रधान करि कहना प्रमाणका विषय है इत्यादि। ऐसैं निश्चय व्यवहारका सामान्य संक्षेप स्वरूप है ताकूं जानि जैसें आगम अध्यात्म शास्त्रनिमैं विशेष करि वर्णन होय ताकूं सूक्ष्मदृष्टिकरि जानना जिनमत अनेकान्तस्वरूप स्याद्वाद है, अर नयनिकै आश्रय कथनी है तहां नयनिकै परस्पर विरोध है ताकू स्याद्वाद मेंटै है, ताका विरोधका तथा अविरोधका स्वरूप नीकै जाननां, सो यथार्थ तौ गुरु आम्नायहीतैं होय परन्तु गुरुका निमित्त इस कालमैं विरला होय गया तातैं अपना ज्ञानका बल चालैं जेतै विशेष समझिबो ही करनां किछु ज्ञानका लेश पाय उद्धत नही होना, अबार

इस कालमैं अल्पज्ञानी वहुत हैं यातै तिनितैं किछू अधिक अभ्यास करि तिनिमैं महन्त वणि उद्धत भये मद आवै तब ज्ञान थकित होय जाय अर विशेष समझनेकी अभिलाष नहीं रहै तब विपर्यय होय यद्वा तद्वा कहै तब अन्य जीवनिकै विपर्यय श्रद्धान होय तब आपके अपराधका प्रसंग आवै; तातै शास्त्रकूं समुद्र जानि अल्पज्ञरूप ही अपना भाव राखनां तातै विशेष समझनेंकी अभिलाषा बनी रहै तातैं ज्ञानकी वृद्धि होय है, अर अल्पज्ञानीनिमैं वैठि महन्त बुद्धि राखै तब अपना पाया ज्ञान भी नष्ट होय है, ऐसैं जाननां; अर निश्चयव्यवहाररूप आगमकी कथनी समझि करि ताका श्रद्धान करि यथाशक्ति आचरण करनां इस कालमैं गुरुसंप्रदायविनां महन्त नहीं वणनौ जिन आज्ञा नहीं लोपणीं। कई कहैं हैं—हम तौ परीक्षा करि जिनमतकूं मानैंगे ते वृथा वकैं हैं—स्वल्पबुद्धीका ज्ञान परीक्षा करने लायक नाहीं आज्ञाकूं प्रधान राखि वणैं जेती परीक्षा करनेंमैं दोष नांही, केवल परीक्षाहीकूं प्रधान राखनेंमैं जिनमततैं च्युत होय जाय तौ बड़ा दोष आवै तातैं जिनिकै अपने हित अहित पर दृष्टि है ते तौ ऐसैं जानौं। अर जिनिकूं अल्पज्ञानीनिमैं महंत वणि अपने मान लोभ वड़ाई विषय कषाय पोषनें होय तिनिकी कथा नाहीं, ते तौ जैसे अपने विषय कषाय पोषैंगे तैसें करैंगे तिनिकूं मोक्ष-मार्गका उपदेश लागै नांही, विपर्यस्तकूं काहेका उपदेश? ऐसैं जानना ॥ ६ ॥

आगैं कहै हैं जो सूत्रके अर्थ पदतै भ्रष्ट है ताकूं मिथ्यादृष्टि जाननां;—

सूत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो ।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥ ७ ॥

सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः हि सः ज्ञातव्यः ।
खेलेऽपि न कर्त्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जो सूत्रका अर्थ अर पद है विनष्ट जाकै ऐसा है सो प्रगट मिथ्यादृष्टी है याहीतैं जो सचेल है वस्त्रसहित है ताकूं 'खेडे वि' कहिये हास्य कुतूहलविषै भी पाणिपात्र कहिये हस्तरूपपात्रकरि आहारदान है सो नहीं करना।

भावार्थ—सूत्रविषैं मुनिका रूप नग्न दिगंबर कह्या है अर जो ऐसे सूत्रके अर्थ करि तथा अक्षररूप पद जाकै विनष्ट हैं तथा आप वस्त्र धारि मुनि कहावै है सो जिन आज्ञातैं भ्रष्ट भया प्रगट मिथ्यादृष्टी है यातैं वस्त्रसहितकूं हास्य कुतूहलकरि भी पाणिमात्र कहिये आहारदान नहीं करना। तथा ऐसा भी अर्थ होय है जो ऐसे मिथ्यादृष्टीकूं पाणि-पात्र आहार लेनां योग्य नाही ऐसा भेष हास्य कुतूहलकरि भी धारणां योग्य नांही, जो वस्त्रसहित रहना अर पाणिपात्र भोजन करनां ऐसैं तौ क्रीडामात्र भी नहीं करनां॥ ७॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रतैं भ्रष्ट है सो हरि हरादिकतुल्य है तौऊ मोक्ष नहीं पावै है;—

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो॥८॥

हरिहरतुल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटिः।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः॥ ८॥

अर्थ—जे नर सूत्रका अर्थ पदतैं भ्रष्ट हैं सो हरि कहिये नारायण हर कहिये रुद्र इनि तुल्य भी होय अनेक ऋद्धिकरि युक्त होय तौहू सिद्धि कहिये मोक्ष ताकूं प्राप्त नहीं होय। जो कदाचित् दानपूजादिक करि पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय तौहू तहांतैं चय करि कोट्यां भव लेय ससारहीमैं रहै है, ऐसैं जिनागममैं कह्या है।

---

१ पाणिपात्रे, ऐसा भी पाठ है।

भावार्थ—श्वेतांबरादिक ऐसैं कहैं हैं—जो गृहस्थ आदिक वस्त्रसहित हैं तिनिकै भी मोक्ष होय है ऐसैं सूत्रमैं कह्या है ताका इस गाथामैं निषेधका आशय है—जो हरिहरादिक बडी सामर्थ्यके धारक भी हैं तौऊ वस्त्रसहित तौ मोक्ष नाही पावैं हैं। श्वेतांवरा सूत्र कल्पित वनाये हैं तिनिमैं यह लिखी है सो प्रमाणभूत नांही है, ते श्वेतांबर जिन-सूत्रके अर्थ पदतैं च्युत भये हैं ऐसैं जानना ॥ ८ ॥

आगैं कहैं है—जो जिनसूत्र च्युत भये हैं ते स्वच्छंद भये प्रवर्तैं हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं,—

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुय भारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छंदि होदि मिच्छत्त ॥९॥

उत्कृष्टसिंहचरितः बहुपरिकर्माच गुरुभारश्च।
यः विहरति स्वच्छंदं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम् ॥९॥

अर्थ—जो मुनि होय करि उत्कृष्ट सिंहवत् निर्भय भया आचरण करै बहुरि बहुत परिकर्म कहिये तपश्चरणादिक्रियाविशेषनिकरि युक्त है बहुरि गुरुके भार कहिये बड़ा पदस्थरूप है संघ नायक कहावै है अर जिनसूत्रतैं च्युत भया स्वच्छंद प्रवर्तै है तौ वह पापहीकूं प्राप्त होय है बहुरि मिथ्यात्वकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—जो धर्मकी नायकी लेकरि निर्भय होय तपश्चरणादिक करि बडा कहाय अपनां संप्रदाय चलावै है जिनसूत्रतैं च्युत होय स्वेच्छाचारी प्रवर्त्तै है तौ सो पापी मिथ्यादृष्टी ही है ताका प्रसग भी श्रेष्ठ नांही ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रमैं ऐसा मोक्षमार्ग कह्या है,

णिचेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

निश्चेलपाणिपात्रं उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रैः।
एकोऽपि मोक्षमार्गः शेषाश्च अमार्गाः सर्वे ॥ १० ॥

अर्थ—जो निश्चल कहिये वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप अर पाणिपात्र कहिये हाथ जाके पात्र ऐसा खड़ा रहि आहार करनां ऐसा एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्रनैं उपदेश्या है, इस शिवाय अन्यरीति हैं ते सर्व अमार्ग हैं।

भावार्थ—जे मृगचर्म वृक्षके वक्कल कपास पट्ट दुकूल रोमवस्त्र टाटके तृणके वस्त्र इत्यादिक राखि आपकूं मोक्षमार्गी मानैं हैं तथा इस कालमैं जिनसूत्रतैं च्युत भये हैं तिननैं अपनी इच्छातैं अनेक भेष चलाये हैं केई श्वेत वस्त्र राखैं हैं केई रक्तवस्त्र केई पीलेवस्त्र केई टाटके वस्त्र केई घासके वस्त्र केई रोमके वस्त्र इत्यादिक राखै हैं तिनिकै मोक्षमार्ग नांही जातैं जिनसूत्रमैं तौ एक नग्न दिगम्बर स्वरूप पाणिपात्र भोजन करनां ऐसा मोक्ष मार्ग कह्या है, अन्य सर्व भेष मोक्षमार्ग नहीं अर जे मानैं हैं ते मिथ्यादृष्टी है ॥ १० ॥

आगैं दिगम्बर मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति कहै हैं;

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥ ११ ॥

यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ॥११॥

अर्थ—जो दिगम्बर मुद्राका धारक मुनि इन्द्रिय मनका वश करनां छह कायके जीवनिकी दया करनां ऐसैं संयम करि तौ सहित होय बहुरि आरम्भ कहिये गृहस्थके जेते आरंभ हैं तिनतैं अर बाह्य अभ्यन्तर परि-

ग्रहतैं विरक्त होय तिनिमैं नही प्रवर्तै तथा आदि शब्द करि ब्रह्मचर्य आदि करि युक्त होय सो देव दानव करि सहित मनुष्यलोक विषैं वंदने योग्य है अन्य भेषी परिग्रह आरंभादि करि युक्त पाखडी वंदिवे योग्य नांही है ॥ ११ ॥

आगैं फेरि तिनिकी प्रवृत्तिका विशेष कहै है;—

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंदि[1] वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ॥१२॥

ये द्वाविंशतिपरीषहान् सहंते शक्तिशतैः संयुक्ताः।
ते भवंति वंदनीयाः कर्मक्षयनिर्जरासाधवः ॥१२॥

अर्थ—जे साधु मुनि अपनी शक्तिके सैंकडानिकरि युक्त भये संते क्षुधा तृषादिक बाईस परीषहनिकूं सहैं हैं ते साधु वंदनेयोग्य हैं, कैसे हैं ते—कर्मनिका क्षयरूप तिनिकी निर्जरा ताविषैं प्रवीण हैं ॥

भावार्थ—जे बड़ी शक्तिके धारक साधु हैं ते परीषहनिकूं सहैं हैं परीषह आये अपने पदतैं च्युत नांही होय हैं तिनिकैं कर्मनिकी निर्जरा होय है ते वदने योग्य हैं ॥ १२ ॥

आगै कहै है जो दिगम्बरमुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारे सम्यग्दर्शन ज्ञानकरि युक्त होय ते इच्छाकार करनें योग्य हैं,—

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेणसम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ॥

---

१ 'होंति' षट्पाहुडमें ऐसा है।

अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ता ।
चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छाकारयोग्याः ॥१३॥

अर्थ—दिगंबर मुद्रासिवाय अवशेष जे लिंगी हैं भेषकरि सयुक्त अर सम्यक्त्वसहित दर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं अर वस्त्र करि परिगृहीत हैं वस्त्र धारैं है ते इच्छाकार करने योग्य हैं ॥

भावार्थ—जे सम्यग्दर्शन ज्ञान करि संयुक्त है अर उत्कृष्ट श्रावकका भेष धारैं है एक वस्त्रमात्र परिग्रह राखैं हैं सो इच्छाकार करने योग्य हैं तातैं "इच्छामि" ऐसा कहिये है । ताका अर्थ—जो मैं तुमकूं इच्छूं हू चाहूहूं ऐसा 'इच्छामि' शब्दका अर्थ है। ऐसैं इच्छाकार करना जिनसूत्रमैं कह्या है ॥ १३ ॥

आगैं इच्छाकार योग्य श्रावकका स्वरूप कहैं हैं;—

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिणो जो हु छंडए कम्मं ।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होइ ॥ १४ ॥

इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थितः यः स्फुटं त्यजति कर्म ।
स्थाने स्थितसम्यक्त्वः परलोकसुखंकरः भवति ॥१४॥

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रविषैं तिष्ठता संता इच्छाकार शब्दका महान प्रधान अर्थ है ताहि जानै है बहुरि स्थान जो श्रावकके भेदरूप प्रतिमा तिनिमैं तिष्ठ्या सम्यक्त्वसहित वर्त्तता आरंभ आदि कर्मनिकूं छोड़ै है सो परलोकविषैं सुख करनेवाला होय है ॥

भावार्थ—उत्कृष्ट श्रावककू इच्छाकार करिये है सो इच्छाकारका जो प्रधान अर्थ है ताकूं जानै है अर सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित

आरंभादिक छोडि उत्कृष्ट श्रावक होय सो परलोकविषै स्वर्गका सुख पावै है ॥ १४ ॥

आगैं कहैं हैं जो इच्छाकारका प्रधान अर्थकूं नाहीं जानै है अर अन्यधर्मका आचरण करै है सो सिद्धिकूं नाहीं पावै है,—

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।१५।

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान् ।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ॥१५॥

अर्थ—'अथ पुन' शब्दका ऐसा अर्थ जो—पहली गाथामैं कह्या था जो इच्छाकारका प्रधान अर्थ जानै सो आचरण करि स्वर्गसुख पावै, सो अब फेरि कहै है जो—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आत्माका चाहनां है अपने स्वरूपविषैं रुचि करना है सो याकूं जो नाही इष्ट करै है अर अन्य धर्मके समस्त आचरण करै है तौऊ सिद्धि कहिये मोक्षकूं नही पावै है बहुरि ताकूं संसारविषैं ही तिष्ठनेवाला कह्या है ॥

भावार्थ—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आपका चाहना है सो जाकै अपने स्वरूपकी रुचिरूप सम्यक्त्व नांही ताकै सर्व मुनि श्रावकके—आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्षका कारण नाही ॥ १५ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़करि उपदेश करै है—

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण ।
जेण य लहेइ मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ॥ १६ ॥

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन ।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ १६ ॥

आगैं कहै है अल्पपरिग्रह ग्रहण करै तामैं दोष कहा ? ताकूं दोष दिखावै है.—

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु ।
जइ लेइ अप्पबहुय तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम् ॥१८॥

यथाजातरूपसदृशः तिलतुषमात्रं न गृह्णाति हस्तयोः ।
यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम् ॥१८॥

अर्थ—मुनि है सो यथाजातरूप है जैसैं जन्मता बालक नग्नरूप होय है तैसा नग्नरूप दिगंवर मुद्राका धारक है सो अपने हाथविषैं तिलके तुपमात्र भी किछू ग्रहण नहीं करै है, बहुरि जो किछू अल्प बहुत लेवै ग्रहण करै तौ वो मुनि ग्रहण करनेंतैं निगोदमैं जाय है ।

भावार्थ—मुनि यथाजातरूप दिगंबर निर्ग्रंथकूं कहैं है सो ऐसा होय करि भी किछू परिग्रह राखै तौ जानिये इनिकै जिनसूत्रकी श्रद्धा नाहीं मिथ्यादृष्टी है यातैं मिथ्यात्वका फल निगोदही है, कदाचित् किछू तपश्चरणादिक करै तौ ताकरि शुभकर्म बांधि स्वर्गादिक पावै तौ भी फेरि एकेंद्रिय होय ससार ही मैं भ्रमण करै है ।

इहा प्रश्न—जो, मुनिकै शरीर है आहार करै है कमंडलु पीछी पुस्तक राखै है, इहां तिल तुपमात्र भी राखनां न कह्या, सो कैसैं ?

ताका समाधान-जो, मिथ्यात्वसहित रागभावसूं अपणाय अपना विषय कषाय पोपनेकूं राखै ताकूं परिग्रह कहिये है तिस निमित्त किछू अल्प बहुत राखना निषेध्या है अर केवल संयमके निमित्तका तौ सर्वथा निषेध नाहीं । शरीर है सो तौ आयुपर्यंन्त छोड्या छूटै नांही याका तौ ममत्वही छूटै सो निषेध्या ही है । बहुरि जेतैं शरीर है तेतैं आहार नहीं करै तौ सामर्थ्यही नहीं होय तब संयम नहीं सधै तातैं किछू योग्य

आहार विधिपूर्वक शरीरसूं रागरहित भये संते लेकरि शरीरकूं खड़ा राखि संयम साधै है। बहुरि कमंडलु बाह्य शौचका उपकरण है जो नहीं राखै तौ मलमूत्रकी अशुचिताकरि पंच परमेष्ठीकी भक्ति वंदना कैसैं करै अर लोकनिंद्य होय। बहुरि पीछी दयाका उपकरण है जो नहीं राखै तौ जीवनिसहित भूमि आदिकी प्रति लेखना काहेतैं करै। बहुरि पुस्तक है सो ज्ञानका उपकरण है जो नहीं राखै तौ पठन पाठन कैसैं होय। बहुरि इनि उपकरणनिका राखनां भी ममत्वपूर्वक नांही है तिनितैं रागभाव नाहीं है। बहुरि आहार विहार पठन पाठनकी क्रिया-युक्त जेतैं रहै तेतैं केवलज्ञान भी नांही उपजै है तिनि सर्व क्रियानिकूं छोड़ि शरीर का भी सर्वथा ममत्व छोडि ध्यान अवस्था लेकरि तिष्ठै अपनां स्वरूपमैं लीन होय तब परम निर्ग्रंथ अवस्था होय है तब श्रेणीकूं प्राप्त भये मुनिराजकै केवलज्ञान उपजै है अन्य क्रियासहित होय तेतैं केवलज्ञान नाही उपजै है ऐसा निर्ग्रंथपणां मोक्षमार्ग जिन-सूत्रमैं कह्या है।

श्वेतांबर कहै है जो भवथिति पूरी भये सर्व अवस्थामैं केवल-ज्ञान उपजै है सो यह कहना मिथ्या है, जिनसूत्रका यह वचन नांही तिनि श्वेतांबरनिनैं कल्पित सूत्र बनाये हैं तिनिमैं लिखी होगी। बहुरि इहां श्वेतांबर कहै जो तुमनै कह्या सो तौ उत्सर्गमार्ग है, बहुरि अप-वादमार्गमैं वस्त्रादिक उपकरण राखनां कह्या है जैसैं तुम धर्मोपकरण कहे तैसैंही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं जैसैं क्षुधाकी बाधा आहारतैं मेटि संयम साधिये है तैसैं ही शीत आदिकी बाधा वस्त्र आदितैं मेटि संयम साधिये यामैं विशेष कहा? ताकूं कहिये जो यामैं तौ बडे दोष आवै हैं, तथा कोई कहै कामविकार उपजै तब स्त्रीसेवन करै तौ यामैं कहा विशेष? सो ऐसैं कहनां युक्त नाही। क्षुधाकी बाधा तौ आहारतैं मेटनां युक्त है आहारविना देह अशक्त होय है तथा छूटि जाय तौ अपघातका दोष आवै, अर शीत आदिकी बाधा तौ अल्प है सो यह

तौ ज्ञानाभ्यास आदिके साधनेतैं ही मिटि जाय है। अपवादमार्ग कह्या सो जामैं मुनिपद रहै ऐसी क्रिया करना तो अपवादमार्ग है अर जिस परिग्रहतैं तथा जिस क्रियातैं मुनिपद भ्रष्ट होय गृहस्थवत हो जाय सो तौ अपवादमार्ग है नाही। दिगंबर मुद्रा धारि कमंडलु पीछी सहित आहार विहार उपदेशादिकमैं प्रवर्त्तै सो अपवादमार्ग है अर सर्व प्रवृत्तिकूं छोडि ध्यानस्थ होय शुद्धोपयोगमैं लीन होय सो उत्सर्गमार्ग कह्या है। ऐसा मुनिपद आपतैं सधता न जानि काहेकूं शिथिलाचार पोषणा, मुनिपदकी सामर्थ्य न होय-तौ श्रावकधर्म ही पालनो परंपराकरि याहीतैं सिद्धि होयगी। जिनसूत्रकी यथार्थ श्रद्धा राखे सिद्धि है या विना अन्य क्रिया सर्व ही संसारमार्ग है मोक्षमार्ग नाही, ऐसैं जानना॥ १८॥

आगैं इस ही का समर्थन करै हैं,—

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ निरायारो॥१९॥

यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिंगस्य।
सः गर्ह्यः जिनवचने परिग्रहरहितः निरागारः॥ १९॥

अर्थ—जाके मतमैं लिंग जो भेष ताके परिग्रहका अल्प तथा बहुत ग्रहणपणा कह्या है सो मत तथा तिसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है निंदायोग्य है जातैं जिनवचनविषैं परिग्रह रहित है सो निरागार है निर्दोष मुनि है, ऐसैं कह्या है॥

भावार्थ—श्वेतांबरादिकके कल्पित सूत्रनिमैं भेषमै अल्प बहुत परिग्रहका ग्रहण कह्या है सो सिद्धान्त तथा ताके श्रद्धानी निंद्य हैं। जिनवचनविषै परिग्रह रहितकूं ही निर्दोष मुनि कह्या है॥ १९॥

आगै कहै हैं जिनवचनविषैं ऐसा मुनि वंदने योग्य कह्या है;—

पंचमहव्वयजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स संजदो होइ ।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥२०॥

पंचमहाव्रतयुक्तःतिसृभिः गुप्तिभिः यः स संयतो भवति ।
निर्ग्रंथमोक्षमार्गः स भवति हि वन्दनीयः च ॥२०॥

अर्थ—जो मुनि पंच महाव्रतकरि युक्त होय अर तीन गुप्तिकरि संयुक्त होय सो संयत है संयमवान है बहुरि निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है बहुरि सो ही प्रगटपणैं निश्चयकरि वदने योग्य है ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अर अपरिग्रह इनि पांच महाव्रतनि करि सहित होय बहुरि मन वचन कायरूप तीन गुप्तिनि करि सहित होय सो संयमी है सो निर्ग्रंथ स्वरूप है सो ही वदने योग्य है। जो कछू अल्प बहुत परिग्रह राखै सो महाव्रती संयमी नाही यह मोक्षमार्ग नाही अर गृहस्थवत भी नांही है ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो पूर्वोक्त तो एक भेष मुनिका कह्या, अब दूसरा भेद उत्कृष्ट श्रावकका ऐसा कह्या है:—

दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च ।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण ॥ २१ ॥

द्वितीयं चोक्तं लिंगं उत्कृष्टं अवरश्रावकाणां च ।
भिक्षां भ्रमति पात्रे समितिभाषया मौनेन ॥ २१ ॥

अर्थ—द्वितीय कहिये दूसरा लिंग कहिये भेष उत्कृष्ट श्रावक कहिये जो गृहस्थ नांही ऐसा उत्कृष्ट श्रावक ताका कह्या है सो उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमीं प्रतिमाका धारक है सो भ्रमकरि भिक्षा करि भोजन करै,बहुरि पत्ते कहियें

पात्रमैं भोजन करै तथा हाथमैं करै बहुरि समितिरूप प्रवर्त्तता भाषा-समितिरूप बोलै अथवा मौनकरि प्रवर्त्तै ॥

भावार्थ—एक तौ मुनिका यथाजातरूप कह्या बहुरि दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावकका कह्या सो ग्यारमीं प्रतिमाका धारक उत्कृष्ट श्रावक है सो एक वस्त्र तथा कोपीन मात्र धारे है बहुरि भिक्षा भोजन करै है बहुरि पात्रमैं भी भोजन करै करपात्रमैं भी करै बहुरि समितिरूप वचन भी कहै अथवा मौन भी राखै ऐसा दूसरा भेष है ॥ २१ ॥

आगैं तीसरा लिंग स्त्रीका कहै है,-

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि ।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥ २२ ॥

लिंगं स्त्रीणां भवति भुंक्ते पिंडं स्वेककाले ।
आर्या अपि एकवस्त्रा वस्त्रावरणेन भुंक्ते ॥ २३ ॥

अर्थ—लिंग है सो स्त्रीनिका ऐसा है-एक कालविषैं तौ भोजन करै वारवार भोजन नही करै बहुरि आर्यिका भी होय तौ एकवस्त्र धारै बहुरि भोजन करतैं भी वस्त्रके आवरणसहित करै नग्न नहीं होय।

भावार्थ—स्त्री आर्यिका भी होय अर क्षुल्लका भी होय सो दोऊ ही भोजनतौ दिनमैं एकवारही करै आर्यिका होय सो एक वस्त्र धारैही भोजन करै नग्न नहीं होय। ऐसा तीसरा स्त्रीका लिंग है ॥ २२ ॥

आगैं कहैहै-वस्त्रधारकके मोक्ष नांही; मोक्षमार्ग नग्नपणाही है,-

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

नापि सिध्यति वस्त्रधरः जिनशासने यद्यपि भवति तीर्थङ्करः।
नग्नः विमोक्षमार्गः शेषा उन्मार्गकाः सर्वे ॥ २३ ॥

अर्थ—जिनशासनविषैं ऐसा कह्या है जो वस्त्रका धरनेवाला सीझै नांही मोक्ष नाही पावै है जो तीर्थंकर भी होय तो जेतैं गृहस्थ रहै तेतैं मोक्ष न पावै, दीक्षा लेय दिगंबर रूप धारै तब मोक्ष पावै जातैं नग्नपणा है सो ही मोक्षमार्ग है अन्य शेष कहिये बाकी सर्व लिंग उन्मार्ग हैं ॥२३॥

भावार्थ—श्वेतांबर आदि वस्त्रधारीकैंभी मोक्ष होना कहै हैं सो मिथ्या है यह जिनमत नाही ॥ २३ ॥

आगैं स्त्रीनिकूं दीक्षा नाही ताका कारण कहै है;—

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥

लिंगे च स्त्रीणां स्तनांतरे नाभिकक्षदेशेषु।
भणितः सूक्ष्मः कायः तासां कथं भवति प्रव्रज्या ॥२४॥

अर्थ—स्त्रीनिके लिंग कहिये योनि ता विषै स्तनांतर कहिये दोऊ कुचनिके मध्यप्रदेशविषै तथा कक्ष कहिये दोऊ कांखनिविषै नाभिविषैं सूक्ष्मकाय कहिये दृष्टिके अगोचर जीव कहे हैं सो ऐसी स्त्रीनिकै प्रव्रज्या कहिये दीक्षा कैसे होय ॥

भावार्थ—स्त्रीनिकै योनि स्तन कांख नाभि[1] विषैं पचेंद्रियजीवनिकी उत्पत्ति निरंतर कही है तिनिकै महाव्रतरूप दीक्षा कैसें होय। बहुरि महाव्रत कहे हैं सो उपचार करि कहे हैं परमार्थ नाही, स्त्री आपना साम-

(१) लिखित वचनिका प्रतियोंमें अर्थ और भावार्थ दोनोंही स्थानोंमें 'नाभि' का जिक्र नहीं किया है सो गाथाके अनुसार होना युक्त समझ लिखा है।

र्थकी हदकूं पहुंचि व्रत धरै है तिस अपेक्षा उपचारतैं महाव्रत कहे है ॥ २४ ॥

आगै कहे है जो स्त्री भी दर्शनकरि शुद्ध होय तौ पापरहित है भली है।

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावया भणिया ॥२५॥

यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि संयुक्ता।
घोरं चरित्वा चरित्रं स्त्रीषु न पापका भणिता ॥ २५ ॥

अर्थ—स्त्रीनि विषैं जो स्त्री, दर्शन कहिये यथार्थ जिनमतकी श्रद्धा करि शुद्ध है सो भी मार्गकरि संयुक्त कही है जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादिक आचरणकरि पापतैं रहित होय हैं तातैं पापयुक्त न कहिये ॥

भावार्थ—स्त्रीनि विषैं जो स्त्री सम्यक्त्वकरि सहित होय अर तपश्चरण करै तौ पापरहित होय स्वर्गकूं प्राप्त होय है तातैं प्रशंसायोग्य है अर स्त्रीपर्यायतैं मोक्ष नाहीं ॥ २५ ॥

आगैं कहै है जो स्त्रीनिकै ध्यानकी सिद्धि भी नांही है—

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा ॥२६॥

चित्ताशोधि न तेषां शिथिलः भावः तथा स्वभावेन।
विद्यते मासा तेषां स्त्रीषु न शंकया ध्यानम् ॥ २६ ॥

---

(१) मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस पदकी संस्कृत 'प्रव्रज्या' की है। श्रीयुत सागर सूरिने भी 'प्रव्रज्या' ही लिखी है।

अर्थ—तिनि स्त्रीनिकै चित्तकी शुद्धिता नाहीं है तैसे ही स्वभावही करि तिनि के ढीला भाव है शिथिल परिणाम है बहुरि, तिनि के मासा कहिये मासमासमैं रुधिरका स्राव विद्यमान है ताकी शंका रहै है ताकरि स्त्रीनिविषैं ध्यान नांही है ॥

भावार्थ—ध्यान होय है सो चित्त शुद्ध होय दृढ परिणाम होय काहू तरहकी शंका न होय तब होय है सो स्त्रीनिकै तीनूं ही कारण नाहीं तब ध्यान कैसैं होय अर ध्यान विना केवलज्ञान कैसैं उपजै अर केवलज्ञान विना मोक्ष नाहीं, श्वेताम्बरादिक मोक्ष कहैं हैं सो मिथ्या है ॥ २६ ॥

आगैं सूत्रपाहुडकूं समाप्त करै है सो सामान्यकरि सुखका कारण कहै है;—

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण ।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥२७॥
ग्राह्येण अल्पग्राह्याः समुद्रसलिले स्वचेलार्थेन ।
इच्छा येभ्यः निवृत्ताः तेषां निवृत्तानि सर्वदुःखानि ।

अर्थ—जो मुनि ग्राह्य कहिये ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक तिनिकरि तौ अल्पग्राह्य हैं थोरा ग्रहण करै है जैसैं कोऊ पुरुष बहुत जलतैं भर्‍या जो समुद्र ता विषै अपने वस्त्रके प्रक्षालनेकूं वस्त्रके धोवने मात्र जल ग्रहण करै तैसैं बहुरि जिनि मुनिनिकै इच्छा निवृत्त भई तिनि कै सर्व दुःख निवृत्त भये ॥

भावार्थ—जगतमैं यह प्रसिद्ध है जो जिनकैं संतोष है ते सुखी हैं इस न्यायकरि यह सिद्ध भया जो मुनिनिकै इच्छाकी निवृत्ति भई है तिनिकै संसारके विषयसंबंधी इच्छा किंचित्मात्र भी नांही है देहतैं भी विरक्त हैं तातैं परम संतोषी हैं, अर आहारादि किछूं ग्रहण योग्य है तिनिमैं भी अल्पकूं ग्रहण करै है तातैं ते परमसंतोषी हैं ते परम सुखी

हैं, यह जिनसूत्रके श्रद्धानका फल है अन्यसूत्रमैं यथार्थ निवृत्तिका प्ररूपण नांही तातैं कल्याणके सुखके अर्थनिकूं जिनसूत्रका सेवन निरंतर करनां योग्य है ॥ २७ ॥

ऐसैं सूत्रपाहुड़कूं पूर्ण किया।

❀ छप्पय ❀

जिनवर की ध्वनि मेघध्वानसम मुखतैं गरजै
गणधरके श्रुति भूमि वरषि अक्षर पद सरजै।
सकल तत्व परकास करै जगताप निवारै
हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै ॥
विधि पुण्यपाप अरु लोककी मुनि श्रावक आचरन फुनि।
करि स्वपर भेद निर्णय सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि ॥१॥

❀ दोहा ❀

वर्द्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल।
भव्य पाय शिवमग लहै नमूं तास गुणमाल ॥२॥

इति पं० जयचन्द्रछाबड़ाकृत देशभाषावचनिका सहित श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित सूत्रपाहुड समाप्त ॥ २ ॥

॥ श्री ॥

अथ चारित्रपाहुड

दोहा।

वीतराग सर्वज्ञ जिन वंदूं मन वच काय।
चारित धर्म बखानियो सांचो मोक्षउपाय ॥ १ ॥
कुन्दकुन्दमुनिराजकृत चारितपाहुड ग्रंथ।
प्राकृत गाथाबंधकी करूं वचनिका पंथ ॥ २ ॥

ऐसें मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि अर अथ चारित्रपाहुड प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—तहां श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथम ही मंगलके अर्थि इष्टदेवकूं नमस्कार करि चारित्रपाहुडकी कहनेकी प्रतिज्ञा करै हैं;—

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं ॥ १ ॥
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं
मुक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥२॥ युग्मम्।

सर्वज्ञान् सर्वदर्शिनः निर्मोहान् वीतरागान् परमेष्ठिनः ।
वंदित्वा त्रिजगद्वंदितान् अर्हतः भव्यजीवैः ॥ १ ॥
ज्ञानं दर्शनं सम्यक् चारित्रं शुद्धिकारणं तेषाम् ।
मोक्षाराधनहेतुं चारित्रं प्राभृतं वक्ष्ये ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ–आचार्य कहैहै जो मैं अरहंत परमेष्ठीकूं वंदिकरि चारित्रपाहुड है ताहि कहूंगा, कैसे हैं अरहंत परमेष्ठी–अरहंत ऐसा प्राकृत अक्षर अपेक्षा तौ ऐसा अर्थ–अकार आदि अक्षर करि तौ अरि ऐसा तौ मोहकर्म, बहुरि रकार आदि अक्षर अपेक्षा रज ऐसा ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म बहुरि तिसही रकारकरि रहस्य ऐसा अंतराय कर्म ऐसे च्यार घातिकर्म तिनिकूं हत कहिए हनना घातना जाकै भया ऐसा अरहत है। बहुरि सस्कृत अपेक्षा 'अर्ह' ऐसा पूजा अर्थ विषैं धातु है त का 'अर्हत्' ऐसा निपजै तब पूजायोग्य होय ताकू अर्हत् कहिये सो भव्यजीवनिकरि पूज्य है। बहुरि परमेष्ठी कहनेतै परम कहिये उत्कृष्ट इष्ट कहिये पूज्य होय सो परमेष्ठी कहिये, अथवा परम जो उत्कृष्ट पद ताविषैं तिष्ठै ऐसा होय सो परमेष्ठी। ऐसा इन्द्रादिकरि पूज्य अरहत परमेष्ठी है। बहुरि कैसे हैं सर्वज्ञ हैं सर्वलोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थनिकू प्रत्यक्ष जानैं सो सर्वज्ञ है। बहुरि कैसे हैं–सर्वदर्शी कहिये सर्व पदार्थनिके देखनेवाले हैं। बहुरि कैसे हैं निर्मोह हैं मोहनीयनामा कर्मकी प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है ताकरि रहित हैं। बहुरि कैसे हैं–वीतराग हैं विशेषकरि जाकैं राग दूरभया होय सो वीतराग, सो जिनकै चारित्र मोहकर्मका उदयतैं होय ऐसा रागद्वेषभी नांही है। बहुरि कैसे हैं—त्रिजगद्वंद्य हैं तीन जगतके प्राणी तथा तिनिके स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती तिनिकरि वंदिवे योग्य हैं। ऐसै अरहत पदकूं विशेष्यकरि अन्य पद विशेषण करि अर्थ किया है। बहुरि सर्वज्ञ पदकूं विशेष्यकरि अन्यपद विशेषण करिये ऐसै भी अर्थ होय है तहा अरहंत भव्यजीवनिकरि पूज्य हैं ऐसा विशेषण होय है। बहुरि चारित्र

अर्थ--ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे ते अक्षय अर अनन्त जीवके भाव हैं, इनिके सोधनेंकै अर्थि जिनदेव दोय प्रकार चारित्र कह्या है ॥

भावार्थ--जाननां देखनां आचरण करनां ये तीन भाव जीवके अक्षयानंत हैं, अक्षय कहिये जाका नाश नहीं, अमेय कहिये अनंत जाका पार नांही,सर्व लोकालोककूं जाननेंवाला ज्ञान है ऐसाही दर्शन है ऐसाही चरित्र है तथापि घातिकर्मके निमित्ततैं अशुद्ध हैं ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं तातैं श्री जिनदेव तिनिके शुद्ध करनेंकूं इनिका चारित्र आचरण करना दोय प्रकार कह्या है ॥ ४ ॥

आगैं दोय प्रकार कह्या सो कहैं हैं:—

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ।
विदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि ॥ ५ ॥

जिनज्ञानदृष्टिशुद्धं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ।
द्वितीयं संयमचरणं जिनज्ञानसंदेशितं तदपि ॥ ५ ॥

अर्थ–प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरणस्वरूप चारित्र है सो कैसा है–जिनदेवका ज्ञान दर्शन श्रद्धान ताकरि किया हुवा शुद्ध है, बहुरि दूसरा संयमका आचरणस्वरूप चारित्र है सो भी जिनदेवका ज्ञान करि दिखाया हुवा शुद्ध है ॥

भावार्थः-चारित्र दोय प्रकार कह्या तहां प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरण कह्या सो जो सर्वज्ञका आगममैं तत्वार्थका स्वरूप कह्या ताकूं यथार्थ जानि श्रद्धान करनां अर ताके शंकादि अतीचार मल दोष कहे तिनिका परिहार करि शुद्ध करनां अर ताके निःशंकितादि गुणनिका प्रगट होना सो सम्यक्त्वचरणचारित्र है,बहुरि जो महाव्रत आदि अंगीकार करि सर्वज्ञके आगममैं कह्या तैसा संयमका आचरण करना अर ताके अतीचार

आदि दोषनिका दूरि करना सो समाचरण चारित्र है, ऐसैं संक्षेपकरि स्वरूप कह्या ॥ ५ ॥

आगैं सम्यक्त्वाचरण चारित्रके मल दोषनिका परिहार करि आचरण करना ऐसैं कहै हैं —

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ ।
परिहरि सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण ॥ ६ ॥

एवं चैव ज्ञात्वा च सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन् ।
परिहर सम्यक्त्वमलान् जिनभणितान् त्रिविधयोगेन ॥ ६ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्रकूं जानि अर मिथ्यात्व कर्मके उदयतैं भये जे शंकादिक दोष ते सम्यक्त्वकूं अशुद्ध करनेवाले मल हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं तिनिकूं मन वचन कायकरि भये जे तीन प्रकार योग तिनिकरि छांडनें ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका चरण चरित्र शंकादिदोष सम्यक्त्वके मल हैं तिनिकूं त्यागे शुद्ध होय है यातैं तिनिका त्याग करनेका उपदेश जिनदेवनैं किया है। ते दोष कहा? सो कहिये है:—जो जिनवचन विषैं वस्तुका स्वरूप कह्या ताविषैं संशय करना सो तौ शंका है, याके होतैं सप्तभयके निमित्ततैं स्वरूपतैं चिगि जाय सो भी शंका है। बहुरि भोगनिका अभिलाष सो कांक्षा है याके होतैं भोगनिकै अर्थि स्वरूपतैं भ्रष्ट होय है। बहुरि वस्तुका स्वरूप कहिये धर्मविषैं ग्लानि करना जुगुप्सा है याके होतैं धर्मात्मा पुरुषनिकै पूर्व कर्मके उदयतैं बाह्य मलिनता देखि मततैं चिगि जाना होय है। बहुरि देव गुरु धर्म तथा लौकिक कार्यनिविषैं मूढता कहिये यथार्थ स्वरूप न जानना सो मूढ दृष्टि है याकै होतैं अन्य लौकिक मानें जो सरागीदेव हिंसाधर्म सग्रन्थगुरु तथा लोकनिनैं बिना विचारे मानें जे अनेक

क्रियाविशेष तिनितै विभवादिककी प्राप्तिके अर्थि प्रवृत्ति करनेतै यथार्थ मततै भ्रष्ट होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिविषै कर्मके उदयतैं किछु दोष उपज्या देखि तिनिकी अवज्ञा करनीं सो अनुपगूहन है, याके होतैं धर्मतै छूटि जाना होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकूं कर्मके उदयके वशतैं धर्मतै चिगते देखि तिनिकी थिरता न करनीं सो अस्थितीकरण है याके होतैं जानिये याकै धर्मतैं अनुराग नाहीं अर अनुराग न होनां सो सम्यक्त्वमैं दोष है। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनितैं विशेष प्रीति न करना सो अवात्सल्य है याके होतैं सम्यक्त्वका अभाव प्रगट सूचै है। बहुरि धर्मका माहात्म्य शक्तिसारूं प्रगट न करना सो अप्रभावना है याकै होतैं जानिये याके धर्मका महात्म्यकी श्रद्धा प्रगट न भई। ऐसैं ये आठ दोष सम्यक्त्वके मिथ्यात्वके उदयतैं होय है, जहा ये तीव्र होय तहा तौ मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय जनावै है सम्यक्त्वका अभाव जनावै है, अर जहा किछु मद अतीचार रूप होय तौ सम्यक्त्व प्रकृति नामा मिथ्यात्वकी प्रकृतिके उदयतैं होय ते अतीचार कहिये तहा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका सद्भाव होय है, परमार्थ विचारिये तब अतीचार त्यागनैंही योग्य है। बहुरि इनिके होतैं अन्य भी मल प्रगट होय हैं तहा तीन तौ मूढता, देवमूढता पाखडमूढता, लोकमूढता। तहा देवमूढता तौ ऐसैं जहां किछु वरकी वांछाकरि सरागीदेवनिकी उपासना करना तिनिकी पाषाणादिविषै स्थापनाकरि पूजनां। बहुरि पाखडमूढता ऐसैं—जहा ग्रंथ आरभ हिंसादिक सहित पाखंडीभेषी तिनिका सत्कार पुरस्कारादिक करना। बहुरि लोकमूढता ऐसैं जहां अन्यमतीनिके उपदेशतैं तथा स्वयमेव विना विचारे किछु प्रवृत्ति करने लगि जाय जैसै सूर्यकूं अर्घ देना, ग्रहणविषैं स्नान करना, संक्रांतिविषैं दान करनां, अग्निका सत्कार करनां, देहली घर कूवा पूजना, गऊके पूछकू नमस्कार करनां, गऊका मूत्रकूं पीवनां रत्न घोड़ा आदि वाहन पृथ्वी वृक्ष शस्त्र पर्वत आदिकका सेवन पूजन करनां, नदी समुद्र आदिकूं तीर्थ मानि तिनिमैं स्नान करनां, पर्वततैं पडनां अग्निमै प्रवेश करनां इत्यादि जाननां। बहुरि छह अनायतन है—कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र

अर इनके भक्त ऐसैं छह,, इनिकूं धर्मके ठिकानें जानि इनिकी मन करि प्रशंसा करनां वचनकरि सराहना करना काय करि वंदना करनां, ये धर्मके ठिकाने नाहीं तातैं इनिकूं अनायतन कहे। बहुरि जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका गर्व करना ऐसैं आठ मद हैं, तहां जाति तौ मातापक्ष है, अर लाभ धनादिक कर्मके उदयके आश्रय हैं, कुल पितापक्ष है, रूप कर्मउदयाश्रित है, तप अपना स्वरूप साधनेकूं है बल कर्म उदयाश्रित है, विद्याकर्मके क्षयोपशमाश्रित है ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है, इनिका गर्व कहा। परद्रव्यके निमित्ततैं होय ताका गर्व करना सो सम्यक्त्वका अभाव जनावै है अथवा मलिनता करै है। ऐसैं ये पच्चीस सम्यक्त्वके मल दोष हैं तिनिकूं त्यागे सम्यक्त्व शुद्ध होय है, सो ही सम्यक्त्वाचरणचारित्रका अंग है ॥ ६ ॥

आगैं शंकादि दोष दूरि भये आठ अंग सम्यक्त्वके प्रगट होय है तिनिकूं कहै है,—

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य ।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ ॥७॥

निःशंकितं निःकांक्षितं निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी च ।
उपगूहनं स्थितीकरणं वात्सल्यं प्रभावना च ते अष्टौ ॥ ७ ॥

अर्थ—निःशंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना ऐसैं आठ अंग हैं ॥

भावार्थ—ये आठ अंग पहिलैं कहे जे शंकादि दोष तिनिके अभावतैं प्रगट होय हैं, तिनिके उदाहरण पुराणनिमैं हैं तिनिकी कथातैं जानने। निःशंकितका तौ अंजन चोरका उदाहरण है जानैं जिनवचनविषै शंका

न करी निर्भय होय छींकेकी लड काटि मंत्र सिद्ध किया। बहुरि निःकांक्षितका सीता अनंतमती सुतारा आदिका उदाहरण है जिनिनैं भोगनिकै अर्थि धर्म न छोड्या। बहुरि निर्विचिकित्साका उद्दायनराजाका उदाहरण है जानैं मुनिका शरीर अपवित्र देखि ग्लानि न करी। बहुरि अमूढदृष्टीका रेवतीराणीका उदाहरण है जानैं विद्याधर अनेक महिमा दिखाई तौऊ श्रद्धानतैं शिथिल न भई। बहुरि उपगूहनका जिनेंद्रभक्तसेठका उदाहरण है जानैं चोर ब्रह्मचर्यभेषकरि छत्र चोर्‍या ताकूं ब्रह्मचर्यपदकी निंदा होती जानि ताका दोष छिपाया। बहुरि स्थितीकरणका वारिषेणका उदाहरण है जानैं पुष्पदंत ब्राह्मणकूं मुनिपदतैं शिथिल भया जानि दृढ किया। बहुरि वात्सल्यका विष्णुकुमारका उदाहरण है जानैं अकंपन आदि मुनिनिका उपसर्ग निवारण किया। बहुरि प्रभावना विषैं वज्रकुमार मुनिका उदाहरण है जानैं विद्याधरका सहाय पाय धर्म की प्रभावना करी ऐसैं आठ अंग प्रगट भये सम्यक्त्वचरण चारित्र संभवै है जैसैं शरीरमैं हाथ पग होय तैसैं सम्यक्त्वके अंग है, ये न होय तौ विकलांग होय ॥ ७ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र होय है;—

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥ ८ ॥

तच्चैव गुणविशुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय।
तत् चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ॥८॥

अर्थ—तत् कहिये सो जिनसम्यक्त्व कहिये अरहन्त जिनदेवकी श्रद्धा निःशंकित आदि गुणनिकरि विशुद्ध होय ताहि यथार्थज्ञान करि सहित आचरण करै सो प्रथम सम्यक्त्वचरणचारित्र है सो मोक्षस्थानकै अर्थि होय है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे तत्वार्थकी श्रद्धा निःशंकित गुणनिकरि सहित पचीस मल दोषनिकरि रहित ज्ञानवान आचरण करै ताकूं सम्य-

क्त्वचरण चारित्र कहिये सो यह मोक्षकी प्राप्तिके अर्थि होय है जातैं मोक्ष-मार्गमैं पहलैं सम्यग्दर्शन कह्या है तातैं मोक्षमार्गमैं प्रधान यह ही है ॥८॥

आगैं कहै है जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रकूं अंगीकार करि जो संयमचरण चारित्रकू अंगीकार करै तौ शीघ्रही निर्वाणकू पावै;—

सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा ।
णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं ॥ ९ ॥

सम्यक्त्वचरणशुद्धाः संयमचरणस्य यदि वा सुप्रसिद्धाः ।
ज्ञानिनः अमूढदृष्टयः अचिरं प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥९॥

अर्थ—जे ज्ञानी भये सते अमूढदृष्टी होय करि अर सम्यक्त्व-चरण चारित्रकरि शुद्ध होय हैं अर जो संयमचरण चारित्रकरि सम्यक् प्रकार शुद्ध होय तौ शीघ्रही निर्वाणकू प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—जो पदार्थनिका यथार्थज्ञानकरि मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टी होयकरि सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम आचरै तौ शीघ्रही मोक्षकू पावै संयम अंगीकार भये स्वरूपका साधनरूप एकाग्र धर्मध्यानके बलतैं सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप होय श्रेणी चढि अंतर्मुहूर्त्तमैं केवलज्ञान उपजाय अघातिकर्मका नाशकरि मोक्ष पावै है, सो यह सम्यक्त्वचरणचारित्रकाही माहात्म्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है—जो, सम्यक्त्वके आचरणकरि भ्रष्टहैं ते संयमका आचरण करैं हैं तोऊ मोक्ष नांहीं पावैं हैं,—

सम्मत्तचरणभट्ठा[1] संजमचरणं चरंति जे वि णरा ।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं ॥ १० ॥

१—मुद्रित संस्कृत सटीक प्रति में यह गाथा ही नहीं है, वचनिकाकी तीनो प्रतियोमें है ।

सम्यक्त्वचरणभ्रष्टाः संयमचरणं चरन्ति येऽपि नराः ।
अज्ञानज्ञानमूढाः तथाऽपि न प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥१०॥

अर्थ-जे पुरुष सम्यक्त्वचरण चारित्रकरि भ्रष्ट हैं अर संयम आचरण करैं हैं तौऊ ते अज्ञानकरि मूढदृष्टी भये सते निर्वाणकूं नांहीं पावैं हैं॥

भावार्थ—सम्यक्त्वचरणचारित्रविना संयमचरणचारित्र निर्वाणका कारण नांही है जातैं सम्यग्ज्ञान विना तौ ज्ञान मिथ्या कहावै है सो ऐसैं सम्यक्त्वविना चारित्रकै मिथ्यापणां आवै है ॥ १० ॥

आगैं प्रश्न उपजैहै जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रके चिह्न कहा है तिनिकरि तिसकूं जानिये ताका उत्तररूप गाथामैं सम्यक्त्वके चिह्न कहैं हैं;—

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए ।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहणरक्खणाए य ॥ ११ ॥
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं ।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्त अमोहेण ॥ १२ ॥

वात्सल्यं विनयेन च अनुकंपया सुदानदत्तया ।
मार्गगुणशंसनया उपगूहनं रक्षणेन च ॥ ११ ॥
एतैः लक्षणैः च लक्ष्यते आर्जवैः भावैः ।
जीवः आराधयन् जिनसम्यक्त्वं अमोहेन ॥ १२ ॥

अर्थ-जिनदेवकी श्रद्धा सम्यक्त्व ताकूं मोह कहिये मिथ्यात्त्व ताकरि रहित आराधता जीव है सो एते लक्षण कहिये चिह्न तिनिकरि लखिये है जानिये है—प्रथम तौ धर्मात्मा पुरुषनिकै जाकै वात्सल्यभाव होय

जैसैं तत्कालकी प्रसूतिवान गऊकै वच्छासूं प्रीति होय तैसी धर्मात्मासूं प्रीति होय, एक तौ ये चिह्न है। बहुरि सम्यक्त्वादि गुणनिकरि अधिक होय ताका विनय सत्कारादिक जाकै अधिक होय, ऐसा विनय एक ये चिह्न है। बहुरि दुखी प्राणी देखि करुणा भावस्वरूप अनुकंपा जाकै होय, एक ये चिह्न है, बहुरि अनुकपा कैसी होय भलै प्रकार दानकरि योग्य होय। बहुरि निर्ग्रंथस्वरूप मोक्षमार्गकी प्रशंसाकरि सहित होय, एक ये चिह्न है, जो मार्गकी प्रशंसा न करता होय तौ जानिये याकै मार्गकी दृढ श्रद्धा नाहीं। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकै कर्मके उदय तैं दोप उपजै ताकूं विख्यात न करै ऐसा उपगूहन भाव होय, एक ये चिह्न है। बहुरि धर्मात्माकू मार्गतैं चिगता जानि तिसकी थिरता करै ऐसा रक्षण नाम चिह्न है याकूं स्थितीकरण भी कहिये। बहुरि इनि सर्व चिह्ननिका, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है जातै निष्कपट परिणामतैं ये सर्व चिह्न प्रगट होय हैं सत्यार्थ होय है, एते लक्षणनिकरि सम्यग्दृष्टीकूं जानिये है॥

भावार्थ—सम्यक्त्वभाव मिथ्यात्वकर्मके अभावतैं जीवनिका निजभाव प्रगट होय है सो वह भाव तौ सूक्ष्म है छद्मस्थज्ञान गोचर नाहीं, अर ताके बाह्य चिह्न सम्यग्दृष्टी कै प्रगट होय है तिनिकरि सम्यक्त्व भया जानिये है। ते वासल्य आदि भाव कहे ते आपकै तौ आपकै अनुभव गोचर होय है अर अन्यके ताकी वचन कायकी क्रिया तैं जानिये हैं, तिनिकी परीक्षा जैसैं आपके क्रियाविशेप तैं होय है तैसै अन्यकीभी क्रियाविशेष तै परीक्षा होय है, ऐसा व्यवहार है, जो ऐसा न होय तौ सम्यक्त्व व्यवहार मार्गका लोप होय तातैं व्यवहारी प्राणीकू व्यवहारहीका आश्रय कह्या है परमार्थ सर्वज्ञ जानै है॥ ११—१२॥

आगैं कहै है जो ऐसे कारणनिकरि सहित होय तौ सम्यक्त्व छोडै है,

उच्छाहभावणासं पसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं ॥१३॥

उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवा कुदर्शने श्रद्धा।
अज्ञानमोहमार्गे कुर्वन् जहाति जिनसम्यक्त्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ—कुदर्शन कहिये नैयायिक वैशेपिक सांख्यमत मीमांसकमत वेदान्तमत बौद्धमत चार्वाकमत शून्यवादके मत इनिके भेप तथा तिनिके भाषे पदार्थ बहुरि श्वेताम्बरादिक जैनाभास इनिकै विषैं श्रद्धा तथा उत्साह-भावना तथा प्रशंसा तथा इनिकी उपासना सेवा करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकूं छोडै है. कैसा है कुदर्शन अज्ञान अर मिथ्यात्वका मार्ग है ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं यह जीव ससारमैं भ्रमै है सो कोई भाग्यके उदयतैं जिनमार्गकी श्रद्धा भई होय अर मिथ्या मतके प्रसंगकरि मिथ्यामतके विषैं किछु कारणतैं उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा उपजै तो सम्यक्त्वका अभाव होय जाय जातैं जिनमत सिवाय अन्यमत है तिनिमैं छद्मस्थ अज्ञानीनि करि प्ररूप्या मिथ्या पदार्थ तथा मिथ्याप्रवृत्तिरूप मार्ग है ताकी श्रद्धा आवै तब जिनमतकी श्रद्धा जाती रहै तातैं मिथ्यादृष्टीनिका संसर्गही न करना, ऐसा भावार्थ जानना ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे ते सुदर्शन विषैं होय तो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकू न छोडै है;—

उच्छाहभावणासं पसंससेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण ॥ १४ ॥

उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवाः सुदर्शने श्रद्धा।
न जहाति जिनसम्यक्त्वं कुर्वन् ज्ञानमार्गेण ॥ १४ ॥

अर्थ—सुदर्शन कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक् मार्ग ताविषैं उत्साहभावना कहिये ग्रहण करनेका उत्साह कर बारबार चिंतवनरूप भाव बहुरि प्रशंसा कहिये मन वचन कायकरि भला जानि स्तुति करना सेवा कहिये उपासना पूजनादिक करना बहुरि श्रद्धा करनी ऐसें ज्ञानमार्गकरि यथार्थ जानि करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्व है ताहि न छोडे है ॥

भावार्थ—जिनमतविषै उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा जाकै होय सो सम्यक्त्वतैं च्युत न होय है ॥ १४ ॥

आगैं अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र त्यागका उपदेश करै है;—

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते ।
अह मोहं सारंभ परिहर धम्मे अहिंसाए ॥ १५ ॥

अज्ञानं मिथ्यात्वं वर्ज्जय ज्ञाने विशुद्धसम्यक्त्वे ।
अथ मोहं सारम्भं परिहर धर्म्मे अहिंसायाम् ॥ १५ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो भव्य ! तू ज्ञानके होतैं तौ अज्ञानकूं वर्जि त्यागकरि, बहुरि विशुद्ध सम्यक्त्वके होतैं मिथ्यात्वकूं त्यागकरि, बहुरि अहिंसालक्षण धर्मके होतैं आरंभसहित मोहकूं परिहरि ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति भये फेरि मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रविषैं मति प्रवर्त्तौ, ऐसा उपदेश है ॥ १५ ॥

आगैं फेरि उपदेश करैं हैं;—

पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे ।
होइ सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते ॥ १६ ॥

प्रव्रज्यायां संगत्यागे प्रवर्त्तस्व सुतपसि सुसंयमेभावे ।
भवति सुविशुद्धध्यानं निर्मोहे वीतरागत्वे ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भव्य ! तू संग कहिये परिग्रहका त्याग जामैं होय ऐसी दीक्षा ग्रहण करि बहुरि भले प्रकार संयमस्वरूपभाव होतैं सम्यक् प्रकार तप विषैं प्रवर्त्तन करि जातैं तेरैं मोहरहित वीतरागपणा होतैं निर्मल धर्म शुक्ल ध्यान होय ॥

भावार्थ—निर्ग्रंथ होय दीक्षा ले संयमभावकरि भले प्रकार तपविषैं प्रवर्तैं तब संसारका मोह दूरि होय वीतरागपणा होय तब निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान होय है ऐसैं ध्यानतैं केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है तातैं ऐसा उपदेश है ॥ १६ ॥

आगे कहै है जो ये जीव अज्ञान अर मिथ्यात्वके दोष करि मिथ्यामार्गविषै प्रवर्तैं है,—

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं ।
वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्ताबुद्धिउदएण ॥ १७ ॥

मिथ्यादर्शनमार्गे मलिने अज्ञानमोहदोषैः ।
बध्यन्ते मूढजीवाः मिथ्यात्वा बुद्ध्युदयेन ॥ १७ ॥

अर्थ—मूढ जीवहैं ते अज्ञान अर मोह कहिये मिथ्यात्व इनिके दोषनिकरि मलिन जो मिथ्यादर्शन कहिये कुमतका मार्ग ताविषैं मिथ्यात्व अर अबुद्धि कहिये अज्ञान तिनिके उदयकरि प्रवर्तैं है ॥

भावार्थ–ये मूढजीव मिथ्यात्व अर अज्ञानके उदयकरि मिथ्यामार्गविषैं प्रवर्तैं है जातैं मिथ्यात्व अज्ञानका नाश करना यह उपदेश है॥१७॥

आगैं कहै है जो सम्यग्दर्शन ज्ञान श्रद्धानकरि चारित्रके दोष दूरि होयहैं;—

सम्मद्दंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मेण य सद्दहदि परिहरदि चरित्तजे दोसे ॥१८॥

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वेन च श्रद्धाति च परिहरति चारित्रजान् दोषान् ॥१८॥

अर्थ—यह आत्मा सम्यग्दर्शन करि तो सत्तामात्र वस्तुकूं देखै है बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि द्रव्य अर पर्यायनिकूं जानैं है बहुरि सम्यक्त्वकरि द्रव्य पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तुका श्रद्धान करै है, बहुरि ऐसैं देखनां जाननां श्रद्धान होय तब चारित्र कहिये आचरण ताविषै उपजे जे दोष तिनिकूं छोडै है॥

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप द्रव्य पर्यायात्मक सत्ता स्वरूप है सो जैसा है तैसा देखै जानैं श्रद्धान करै तब आचरण शुद्ध करै सो सर्वज्ञके आगमतैं वस्तुका निश्चयकरि आचरण करनां। तहां वस्तु है सो द्रव्य पर्याय स्वरूप है। तहां द्रव्यका सत्तालक्षण है तथा गुणपर्यायवानकूं द्रव्य कहिये। बहुरि पर्याय है सो दोय प्रकार है; सहवर्त्ती, अर क्रमवर्ती। तहां सहवर्तीकूं गुण कहिये है, क्रमवर्तीकूं पर्याय कहिये है। तहां द्रव्य सामान्यकरि एक है तौऊ विशेषकरि छह हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ऐसैं। तहां जीवकै दर्शनमयी चेतना तो गुण है अर मति आदिक ज्ञान अर क्रोध मान माया लोभ आदि तथा नर नारक आदि विभाव पर्याय हैं,स्वभावपर्याय अगुरुलघु गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन है। बहुरि पुद्गल द्रव्यकै स्पर्श रस गंध वर्णरूप मूर्त्तीकपणा तौ गुण है स्पर्श रस गंध वर्णका भेदरूप परिणमन तथा अणुतैं स्कंधरूप होना तथा शब्दबंध आदिरूप होना इत्यादि पर्याय हैं। बहुरि धर्म अधर्म द्रव्यकै गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्वपणा तौ गुण है अर इस गुणके जीव पुद्गलके गति स्थिति के भेदनितैं भेद होय ते पर्याय हैं, तथा अगुरुलघु

गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन होय सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि आकाशकै अवगाहना गुण है अर जीव पुद्गल आदिके निमित्ततैं प्रदेश भेद कल्पिये ते पर्याय हैं, तथा हानिवृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि काल द्रव्यकै वर्त्तना तौ गुण है अर जीव पुद्गलके निमित्ततै समय आदिकल्पना है सो पर्याय है याकूं व्यवहार कालभी कहिये है, बहुरि हानि वृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। इत्यादि इनिका स्वरूप जिन आगमतैं जानि देखनां जाननां श्रद्धान करना, यातैं चारित्र शुद्ध होय है। विना ज्ञान श्रद्धान आचरण शुद्ध नाहीं होय है, ऐसैं जानना ॥ १८ ॥

आगैं कहै है जो ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते मोहरहित जीवकै होय हैं इनिकूं आचरता शीघ्र मोक्ष पावै है,—

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
नियगुणमाराहंतो अचिरेण वि कम्म परिहरइ ॥ १९ ॥

एते त्रयो पि भावाः भवंति जीवस्य मोहरहितस्य।
निजगुणमाराधयन् अचिरेण अपि कर्म परिहरति॥१९॥

अर्थ—ये पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते निश्चय करि मोह कहिये मिथ्यात्व ताकरि रहित होय तिस जीवकै होय हैं तब यह जीव अपना निजगुण जो शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतना ताकू आराधता संता थोरेही कालमैं कर्मका नाश करै है ॥

भावार्थ—निजगुणका ध्यानतैं शीघ्रही केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावै हैं ॥ १९ ॥

आगैं इस सम्यक्त्वचरणचारित्रके कथनकूं संकोचै है;—

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥ २० ॥

संख्येयामसंख्येयगुणां संसारिमेरुमात्रां णं।
सम्यक्त्वमनुचरंतः कुर्वन्ति दुःखक्षयं धीराः ॥ २० ॥

अर्थ—सम्यक्त्वकूं आचरण करते धीर पुरुष हैं ते सख्यातगुणी तथा असख्यातगुणी कर्मनिकी निर्जरा करैं हैं, बहुरि कर्मनिके उदयतैं भया संसारका दु.ख ताका नाश करै हैं, कैसे हैं कर्म; ससारी जीवनिका मेरु कहिये मर्यादा मात्र है, सिद्ध भये पीछैं कर्म नाही है ॥

भ.वार्थ-इस सम्यक्त्वके आचरण भए प्रथमकालमैं तौ गुणश्रेणी निर्जरा होय है सो तौ असख्यातके गुणकाररूप है बहुरि पीछै जेतैं संयमका आचरण न होय तेतैं गुणश्रेणी निर्जरा न होय-तहा सख्यातका गुणकाररूप होय है तातैं सख्यात गुण अर असंख्यातगुण ऐसैं दोऊ वचन कहे, बहुरि कर्म तौ ससार अवस्था है जेतैं है तिनिमैं दुःखका कारण मोह कर्म है तिसमैं मिथ्यात्व कर्म प्रधान है सो सम्यक्त्व भये मिथ्यात्वका तौ अभावही भया अर चारित्रमोह दुःखका कारणहै सो येहू जेतै है तेतैं ताकी निर्जरा करै है ऐसैं अनुक्रमतै दु.ख क्षय होय है। संयमाचरण भये सर्व दुःखका क्षय होय ही गा, इहां सम्यक्त्वका माहात्म्य ऐसा है सो सम्यक्त्वाचरण भये संयमाचरण भी शीघ्रही होय है, यातैं सम्यक्त्वकूं मोक्षमार्गमैं प्रधान जानि याहीका वर्णन पहलैं किया है ॥२०॥

आगैं सयमाचरण चारित्रकूं कहै है,—

(१) मुद्रित सटीकसस्कृत प्रतिमें 'संसारिमेरुमता' इसके स्थानमें 'सा- सारि मेरुमित्ता ऐसा पाठ है जिसकी सस्कृत 'सर्षपमेरुमात्रां इसप्रकार है।

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं ।
सायारं सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं ॥२१॥

द्विविधं संयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारं ।
सागारं सग्रन्थे परिग्रहाद्रहिते खलु निरागारम् ॥२१॥

अर्थ—संयमचरण चारित्र है सो दोय प्रकार है सागार तथा निरागार ऐसैं, तहां सागारतौ परिग्रहसहित श्रावककैं होय है बहुरि निरागार परिग्रहतैं रहित मुनिकैं होय है यह निश्चय है॥ २१ ॥

आगैं सागार संयमाचरणकूं कहै है,—

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ॥२२॥

दर्शनं व्रतं सामायिकं प्रोषधं सचित्तं रात्रिभुक्तिश्च ।
ब्रह्म आरंभः परिग्रहः अनुमतिः उद्दिष्ट देशविरतश्च ॥

अर्थ—दर्शन, व्रत, सामायिक, अर प्रोषध आदिका नामका एक देश है अर नाम ऐसैं कहना प्रोषधउपवास सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग उद्दिष्टत्याग, ऐसैं ग्यारा प्रकार देशविरत है ॥

भावार्थ—ये सागार संयमाचरणके ग्यारह स्थान हैं इनिकूं प्रतिमा भी कहिये ॥ २२ ॥

आगैं इनि स्थाननिविषैं संयमका आचरण कौन प्रकार है सो कहै है ।

पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥ २३ ॥

पंचैव अणुव्रतानि गुणव्रतानि भवंति तथा त्रीणि ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि संयमचरणं च सागारम् ॥ २३ ॥

अर्थ—अणुव्रत पांच गुणव्रत तीन शिक्षाव्रत च्यार ऐसै बारह प्रकार करि संयमचरण चारित्र है सो सागार है, ग्रंथसहित श्रावककै होय है तातैं सागार कह्या है।

इहां प्रश्न-जो यह वारह प्रकार तो व्रतके कहे अर पहलें गाथा-मैं ग्यारह नाम कहे तिनिमैं प्रथम दर्शन नाम कह्या तामैं ये व्रत कैसें होय है। ताका समाधान ऐसा जो अणुव्रत ऐसा नाम किंचित् व्रतका है सो पंच अणुव्रतमैं किंचित् इहाभी होय है तातैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती ही है, याका नाम दर्शन ही कह्या तहां ऐसा नाम जानना जो याकै केवल सम्यक्त्वही होय है अर अव्रती है अणुव्रत नाहीं याकै अणु-व्रत अतीचारसहित होय है तातैं व्रतीनाम न कह्या दूजी प्रतिमामैं अणु-व्रत अतीचाररहित पालै तातैं व्रतनाम कह्या है, इहां सम्यक्त्वकै अतीचार टालै है सम्यक्त्वही प्रधान है तातैं दर्शनप्रतिमा नाम है। अन्य ग्रंथनिमैं याका स्वरूप ऐसैं कह्या है जो आठ मूलगुण पालै सात व्यसन त्यागै सम्यक्त्व अतीचाररहित शुद्ध जाकै होय सो दर्शन प्रतिमा धारक है तहां पाच उदुम्बरफल अर मद्य मांस सहत इनि आठनिका त्याग करै सो आठ मूलगुण हैं। अथवा कोई ग्रन्थमैं ऐसैं कह्या है जो पाच अणुव्रत पालै अर मद्य मांस मधु इनिका त्याग करै ऐसैं आठ मूलगुण है सो यामैं विरोध नांही है विवक्षाका भेद है। पाच उदंबरफल अर तीन मकारका त्याग कहनेतैं जिनि वस्तुनिमैं साक्षात् त्रस दीखैं ते सर्वही वस्तु भक्षण नहीं करै। देवादिक निमित्त तथा औषधादिकनिमित्त इत्यादि कारणनितैं दीख ता त्रस जीवनिका घात न करै, ऐसा आशय है, सो यामै तौ अहिंसा अणुव्रत आया। अर सात व्यसनके त्यागमैं झूंठका अर चोरीका अर पर-स्त्रीका त्याग आया अर व्यसनहीके त्यागमैं अन्याय परधन' परस्त्रीका ग्रहण नाही, यामैं अतिलोभका त्यागतैं परिग्रहका घटावना आया, ऐसैं

पांच अणुव्रत आवैं हैं। इनिके अतीचार टलै नाही तातैं अणुव्रती नाम न पावै। ऐसैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती है तातैं देशविरत सागारसंयमचरण चारित्रमैं याकूं भी गिण्या है ॥ २३ ॥

आगै पाच अणुव्रतका स्वरूप कहै हैं;—

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परग्गहारंभ परिमाणं ॥ २४॥

स्थूले त्रसकायवधे स्थूलायां मृषायां अदत्तस्थूले च।
परिहारः परमहिलायां परिग्रहारंभपरिमाणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—थूल जो त्रसकायका घात, थूलमृशा कहिये असत्य, थूल अदत्ता कहिये परका न दिया धन, परमहिला कहिये परकी स्त्री इनिका तौ परिहार कहिये त्याग, बहुरि परिग्रह अर आरंभ का परिमाण ऐसैं पाच अणुव्रत हैं।

भावार्थ—इहा थूल कहनेमैं ऐसा अर्थ जानना-जामैं अपना मरण होय परका मरण होय अपना घर विगडै परका घर विगडै राजका दंड-योग्य होय पंचनिकै दंडयोग्य होय ऐसैं मोटे अन्यायरूप पापकार्य जाननैं, ऐसे स्थूल पाप राजादिकके भयतैं न करै सो व्रत नाहीं इनिकूं तीव्रकषायके निमित्ततैं तीव्रकर्मबंधके निमित्त जानि स्वयमेव न करनेंके भावरूप त्याग होय सो व्रत है। तथा याके ग्यारह स्थानक कहे तिनिमैं ऊपरि ऊपरि त्याग वधता जाय है सो याकी उत्कृष्टता तांई ऐसा है जो जिनि कार्यनिमै त्रस जीवनिकूं वाधा होय ऐसे सर्वही कार्य छूटि जाय हैं तातैं सामान्य ऐसा नाम कह्या है जो त्रसहिंसाका त्यागी देशव्रती होय है। याका विशेष कथन अन्य ग्रंथनितैं जानना ॥ २४ ॥

---

(१) मुद्रित सटीकसंस्कृतप्रतिमें 'अदत्तथूले' के स्थानमें 'तितिक्खथूले' ऐसा पाठ है तथा 'परमहिला' इसके स्थानमें 'परमपिम्मे' ऐसा पाठ है।

आगैं तीन गुणव्रतनिकूं कहै है;—

दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥२५॥

दिग्विदिग्मानं प्रथमं अनर्थदंडस्य वर्जनं द्वितीयम् ।
भोगोपभोगपरिमाणं इमान्येव गुणव्रतानि त्रीणि ॥२५॥

अर्थ—दिशा विदिशाविषै गमनका परिमाण सो प्रथम गुणव्रत है बहुरि अनर्थदंडका वर्जना सो द्वितीय गुणव्रत है बहुरि भोग उपभोगका परिमाण सो तीसरा गुणव्रत है ऐसैं ये तीन गुणव्रत हैं ॥

भावार्थ—इहां गुण शब्द तौ उपकारका वाचक है ये अणुव्रतनिकूं उपकार करैं हैं। बहुरि दिशा विदिशा कहिये पूर्वदिशा आदिकहैं तिनि-विषैं गमन करनेकी मर्याद करै। बहुरि अनर्थदंड कहिये जिनि कार्यनिमैं अपना प्रयोजन न सधै ऐसे जे पापकार्य तिनिकूं न करै। इहां कोई पूछै—प्रयोजन विना तौ कोईभी जीव कार्य न करै है सो किछू प्रयोजन विचार ही करै है अनर्थदंड कहा ?। ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी श्रावक होय सो प्रयोजन अपने पद योग्य विचारै है, पद सिवाय सो अनर्थ, अर पापी पुरुषनिकै तौ सर्व ही पाप प्रयोजन हैं तिनिकी कहा कथा। बहुरि भोग कहनेमैं भोजनादिक उपभोग कहनेमैं स्त्री वस्त्र आभूषण वाहनादिकनिका परिमाण करै। ऐसैं जाननां॥ २५॥

आगैं च्यार शिक्षाव्रतनिकूं कहै है; —

सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ २६ ॥

सामाइकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधः भणितः।
तृतीयं च अतिथिपूजा चतुर्थं सल्लेखना अन्ते ॥२६॥

अर्थ—सामायिक तौ पहला शिक्षाव्रत है तैसैं ही दूजा प्रोपध व्रत है तीजा अतिथिका पूजन है चौथा अन्तसमय सल्लेखना व्रत है ॥

भावार्थ—इहा शिक्षा शब्दकरि तौ ऐसा अर्थ सूचै है जो आगामी मुनिव्रत है ताकी शिक्षा इनिमैं है जो मुनि होगा तब ऐसैं रहना होगा। तहा सामायिक कहनेतैं तौ राग द्वेपका त्यागकरि सर्व गृहारंभसंबंधी क्रियातैं निवृत्ति करि एकान्त स्थानक बैठि प्रभात मध्याह्न अपराह्न किछू कालकी मर्यादकरि अपना स्वरूपका चितवन तथा पंचपरमेष्ठीकी भक्तिका पाठ पढ़ना तिनिकी वदना करनीं इत्यादि विधान करना सामायिक जानना। बहुरि तैसैंही प्रोपध कहिये आठैं चौदसि पर्वनिविपैं प्रतिज्ञा लेकरि धर्मकार्यनिमैं प्रवर्तना सो प्रोपध है। बहुरि अतिथि कहिये मुनि तिनिका पूजन करना आहारदान करनां सो अतिथिपूजन है। बहुरि अतसमयविपैं कायका अर कपायका कृश करना समाधिमरण करनां सो अतसल्लेखना है, ऐसैं च्यार शिक्षाव्रत हैं ॥

इहा प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रमैं तौ तीन गुणव्रतमैं देशव्रत कह्या अर भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतमैं कह्या अर सल्लेखना न्यारा कह्या सो कैसैं?

ताका समाधान—जो यह विवक्षाका भेद है इहां देशव्रत दिग्व्रतमैं गर्भित है अर सल्लेखना शिक्षाव्रतमैं कह्या है, किछू विरोध है नाहीं ॥२६॥

आगैं कहै है सयमचरण चारित्रविषै ऐसैं तौ श्रावक धर्म कह्या अब यतिधर्मकूं कहै है—

एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे॥ २७॥

एवं श्रावकधर्मं संयमचरणं उपदेशितं सकलम्।
शुद्धं संयमचरणं यतिधर्मं निष्कलं वक्ष्ये॥ २७॥

अर्थ—एव कहिये या प्रकार श्रावक धर्म स्वरूप संयमचरण तौ कह्या, कैसा है यह—सकल कहिये कलासहित है, एक देशकूं कला

कहिये, अब यतिधर्मका धर्मस्वरूप संयमचरण है ताहि कहूंगा ऐसैं आचार्यनै प्रतिज्ञा करी है, कैसा है यतिधर्म-शुद्ध है निर्दोष है जामैं पापाचरणका लेश नांही है, बहुरि कैसा है, निकल कहिये कलातै निःक्रांत है संपूर्ण है श्रावक धर्मकी ज्यों एकदेश नाहीं है ॥ २७ ॥

आगैं यति धर्मकी सामग्री कहै हैं,—

पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु ।
पंच समिदि तय गुत्ती संयमचरणंणिरायारं ॥ २८ ॥

पंचेंद्रियसंवरणं पंच व्रताः पंचविंशतिक्रियासु ।
पंच समितयः तिस्रः गुप्तयः संयमचरणं निरागारम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पंच इंद्रियनिका संवर, पांच व्रत ते पच्चीस क्रिया के सद्भाव होतैं होय, बहुरि पांच समिति, तीन गुप्ति ऐसैं निरागार संयमचरण चारित्र होय है ॥ २८ ॥

आगैं पांच इंद्रियके संवरणका स्वरूप कहै हैं,—

अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य ।
ण करेइ रायदोसे पचेंदियसंवरो भणिओ ॥ २९ ॥

अमनोज्ञे च मनोज्ञे सजीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये च ।
न करोति रागद्वेषौ पंचेंद्रियसंवरः भणितः ॥ २९ ॥

अर्थ—अमनोज्ञ तथा मनोज्ञ ऐसे जे पदार्थ जिनिकूं लोक अपने मानैं ऐसे सजीवद्रव्य स्त्रीपुत्र आदिक, अर अजीवद्रव्य धन धान्य आदि सर्व पुद्गलद्रव्य आदि, तिनिविषैं राग द्वेष न करै सो पांच इन्द्रियनिका संवर कह्या है ॥

भावार्थ-इन्द्रियगोचर जे जीवअजीवद्रव्य हैं ते इंद्रियनिके ग्रहण-मैं आवै है तिनिमैं यह प्राणी काहूकूं इष्ट मानि राग करै है काहूकूं अनिष्ट

मानि द्वेष करै है ऐसैं राग द्वेष मुनि नाहीं करै है ताकै संयमचरण चारित्र होय है ॥ २९॥

आगैं पांच व्रतनिका स्वरूप कहै हैं—

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य ॥ ३०॥

हिंसाविरतिरहिंसा असत्यविरतिः अदत्तविरतिश्च।
तुर्यं अब्रह्मविरतिः पंचमं संगे विरतिः च ॥ ३०॥

अर्थ—प्रथम तौ हिंसातैं विरति सो अहिंसा है, बहुरि दूजा असत्य विरति है, बहुरि तीजा अदत्तविरति है, बहुरि चौथा अब्रह्मविरति है पाचमां परिग्रहविरति है॥

भावार्थ—इनि पांच पापनिका सर्वथा त्याग जिनमैं होय ते पाच महाव्रत हैं॥ ३०॥

आगैं इनिकूं महाव्रत ऐसा नाम काहेतैं है सो कहै हैं;—

साहंति जं महल्ला आयरिमं जं महल्लपुव्वेहिं।
जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं ॥ ३१॥

साधयंति यन्महांतः आचरितं यत् महत्पूर्वैः।
यच्च महन्ति ततः महाव्रतानि एतस्माद्धेतोः तानि ॥ ३१॥

अर्थ—महल्ला कहिये महत पुरुष जिनिकूं साधैं आचरैं बहुरि पहलैं भी जिनिकूं महंत पुरुषनि आचरे बहुरि ये व्रत आपही महान हैं जातैं जिनिमैं पापका लेश नाहीं ऐसैं ये पांच महाव्रत हैं॥

भावार्थ—जिनिकूं बड़े पुरुष आचरण करैं अर आप निर्दोष होय ते ही बड़े कहावैं, ऐसैं इनि पाच व्रतनिकूं महाव्रत संज्ञा है॥ ३१॥

आगै इनि पांच व्रतनिकी पचीस भावना है तिनिकू कहै हैं तिनिमैं प्रथम ही अहिंसाव्रतकी पाच भावना कहिये है —

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति ॥ ३२ ॥

वचोगुप्तिः मनोगुप्तिः ईर्यासमितिः सुदाननिक्षेपः ।
अवलोक्य भोजनेन अहिंसाया भावना भवंति ॥३२॥

अर्थ—वचनगुप्ति अर मनोगुप्ति ऐसै दोय तौ गुप्ति अर ईर्यासमिति बहुरि भलै प्रकार कमडलु आदिका ग्रहण निक्षेप यह आदाननिक्षेपणा समिति बहुरि नीकैं देखि विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करनां यह एषणा समिति ऐसैं ये पाच अहिसा महाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—भावना नाम वार वार तिसहीका अभ्यास करना ताका है सो इहा प्रवृत्ति निवृत्तिमैं हिंसा लागैं ताका निरतर यत्न राखै तब अहिसाव्रत पलै यातै इहा योगनिकी निवृत्ति करनी तौ भलैप्रकार गुप्तिरूप करनी अर प्रवृत्ति करनी तौ समितिरूप करनी ऐसै निरतर अभ्याससतैं अहिसा महाव्रत दृढ रहै है, ऐसा आशयतैं इनिकू भावना कही है ॥ ३२ ॥

आगै सत्यमहाव्रतकी भावना कहै हैं —

कोहभयहासलोहामोहाविपरीयभावणा चेव ।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति ॥ ३३ ॥

क्रोधभयहास्यलोभमोहविपरीतभावनाः च एव ।
द्वितीयस्य भावना इमा पंचैव च तथा भवंति ॥ ३३ ॥

अर्थ—क्रोध भय हास्य लोभ मोह इनितै विपरीत कहिये उलटा इनिका अभाव ये द्वितीय व्रत जो सत्यमहाव्रत ताकी भावना हैं ॥

भावार्थ—असत्यवचनकी प्रवृत्ति होय है सो क्रोधतैं तथा भयतै तथा हास्यतै तथा लोभतैं तथा परद्रव्यतैं मोहरूप मिथ्यात्वतैं होय है इनिका त्याग भये सत्य महाव्रत दृढ़ रहै है।

बहुरि तत्त्वार्थसूत्रमैं पाचवीं भावना अनुवीचीभापण कही है सो याका अर्थ यह जो-जिनसूत्रके अनुसार वचन बोलै अर इहा मोहका अभाव कह्या सो मिथ्यात्वके निमित्ततैं सूत्रविरुद्ध कहै मिथ्यात्वका अभाव भये सूत्रविरुद्ध न कहै सो ही अनुवीची भापणका भी यह ही अर्थ भया, यामैं अर्थ भेद नांही है॥ ३३॥

आगैं अचौर्य महाव्रतकी भावनाकूं कहै हैं;—

सुण्णायारणिवासो विमोचितावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो ॥ ३४॥

शून्यागारनिवासः विमोचितावासः यत् परोधं च।
एपणाशुद्धिसहितं साधर्मिसमविसंवादः ॥ ३४॥

अर्थ—शून्यागार कहिये गिरि गुफा तरुकोटरादिविषै निवास करनां बहुरि विमोचितावास कहिये जो लोग काहू कारणतैं छोडि दिया ऐसा गृह ग्रामादिक तामैं निवास करना, बहुरि परोपरोध कहिये परका जहा उपरोध न करिये वस्तिकादिककूं अपनाय परकूं वर्जना ऐसैं न करना, बहुरि एपणाशुद्धि कहिये आहार शुद्ध लेना, बहुरि साधर्मीनितै विसंवाद न करना। ये पांच भावना तृतीय महाव्रतकी हैं॥

भावार्थ—मुनिनिकै वस्तिकामै वसना अर आहार लेनां ये दोय प्रवृत्ति अवश्य होय तहा लोकमैं इनिहीके निमित्त अदत्तका आदान होय है, मुनि वसै सो ऐसी जायगा वसै जहा अदत्तका दोष न लागै, बहुरि आहार ऐसा ले जामैं अदत्तका दोप न लागै, तथा दोऊकी प्रवृत्तिमैं साधर्मी आदिकतैं विसवाद न उपजै। ऐसैं ये पाच भावना कही हैं, इनिवे होतैं अचौर्यमहाव्रत दृढ रहै है॥ ३४॥

आगै ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना कहै हैं,—

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकाहाहिं ।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥ ३५ ॥

महिलालोकनपूर्वरतिस्मरणसंसक्तवसतिविकथाभिः ।
पौष्टिकरसैः विरतः भावनाः पंचापि तुर्ये ॥ ३५ ॥

अर्थ—स्त्रीनिका आलोकन कहिये रागभावसहित देखना पूर्वें किये भोगका स्मरण करना, स्त्रीनिकरि ससक्त वस्तिकामै वसना स्त्रीनिकी कथा करना, पुष्टकारी रसका सेवन करना, इनि पाचनितैं विकार उपजै तातैं इनितैं विरक्त रहना, ये पाच ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—कामविकारके निमित्तनितैं ब्रह्मचर्यव्रत भग होय है सो स्त्रीनिका रागभावतैं देखना इत्यादिक निमित्त कहे तिनिमैं विरक्त रहना प्रसग न करना यातैं ब्रह्मचर्यमहाव्रत दृढ रहै है ॥ ३५ ॥

आगै पाच अपरिग्रहमहाव्रतकी भावना कहै हैं,—

अपरिग्गह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु ।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति ॥ ३६ ॥

अपरिग्रहे समनोज्ञेषु शब्दस्पर्शरसरूपगंधेषु ।
रागद्वेषादीनां परिहारो भावनाः भवन्ति । ३६ ॥

अर्थ—शब्द स्पर्श रस रूप गध ये पाच इन्द्रियनिके विषय, ते कैसे समनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि सहित अर असमनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि रहित, ऐसे दोऊनिविषैं रागद्वेष आदिका न करना ते परिग्रहत्यागव्रतकी ये पांच भावना है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—पाच इंद्रियनिके विषय स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये है

तिनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष न करै तब अपरिग्रहव्रत दृढ़ रहै जातैं ये पाच भावना अपरिग्रहमहाव्रतकी कही हैं।

आगैं पाच समितिकूं कहै है;—

इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्ते खंति जिणा पंच समिदीओ ॥ ३७॥

ईर्या भाषा एषणा या सा आदानं चैव निक्षेपः।
संयमशोधिनिमित्तं ख्यान्ति जिनाः पंच समितीः॥ ३७॥

अर्थ—ईर्या भाषा एषणा बहुरि आदाननिक्षेपण प्रतिष्ठापनां ऐसैं ये पांच समिति सयमकी शुद्धिताकै अर्थि कारण हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं।

भावार्थ—मुनि पंचमहाव्रतरूप संयमका साधन करै है तिस सयमकी शुद्धिताकै अर्थि पाच समितिरूप प्रवर्तै है याहीतैं याका नाम सार्थक है—" 'सं' कहिये सम्यक् प्रकार 'इति' कहिये प्रवृत्ति जामै होय सो समिति है "। गमन करै तब जूडा प्रमाण धरती देखता चालै है, बोलै तब हितमितरूप वचन बोलै है, आहार ले सो छियालीस दोष बत्तीस अंतराय टालि चौदा मल दोष रहित शुद्ध आहार ले हैं, धर्मोपकरणनिकूं उठाय ग्रहण करै सो यत्नपूर्वक ले हैं, तैसैं ही किछू क्षेपै तब यत्नपूर्वक क्षेपै है, ऐसैं निष्प्रमाद वर्त्तै तब संयम शुद्ध पलै है तातै पचसमितिरूप प्रवृत्ति कही है। ऐसैं संयमचरण चारित्रकी प्रवृत्ति कही ॥ ३७॥

अब आचार्य निश्चय चारित्रकूं मनमैं धारि ज्ञानका स्वरूप कहै हैं;—

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि ॥ ३८॥

भव्यजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितं।
ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं आत्मानं तं विजानीहि ॥ ३८॥

अर्थ-जिनमार्ग विषैं जिनेश्वर देवनें भव्यजीवनिके संबोधनके अर्थि जैसा ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप कह्या है तिस ज्ञान स्वरूप आत्मा है ताहि हे भव्यजीव! तू जानि ॥ ३८ ॥

भावार्थ—ज्ञानकूं ज्ञानका स्वरूपकूं अन्यमती अनेक प्रकार कहै हैं तैसा ज्ञान अर ऐसा स्वरूप ज्ञानका नाही है, जो सर्वज्ञ वीतराग देव भाषित ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप है सो निर्बाध सत्यार्थ है अर ज्ञान है सो ही आत्मा है तथा आत्माका स्वरूप है तिसकूं जानि अर तिसमैं थिरता भाव करै परद्रव्यनितैं राग द्वेष न करै सो ही निश्चय चारित्र है, सो पूर्वोक्त महाव्रतादिकी प्रवृत्तिकरि इस ज्ञान स्वरूप आत्मा विषैं लीन होना ऐसा उपदेश है ॥ ३८ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसा ज्ञानकरि ऐसैं जानैं सो सम्यग्ज्ञानी है;—

जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी।
रायादिदोसरहिओ जिणसासण मोक्खमग्गुत्ति ॥३९॥

जीवाजीवविभक्तिं यः जानाति स भवेत् सज्ज्ञानः।
रागादिदोषरहितः जिनशासने मोक्षमार्ग इति ॥ ३९ ॥

अर्थ—जो पुरुष जीव अर अजीव इनिका भेद जानैं सो सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि रागादि दोषनिकरि रहित होय ऐसा जिनशासन विषैं मोक्ष मार्ग है ॥

भावार्थ-जो जीव अजीव पदार्थका स्वरूप भेदरूप जानि आप परका भेद जानैं सो सम्यग्ज्ञानी होय अर परद्रव्यनितैं रागद्वेष छोडनेतैं ज्ञानमें थिरता भये निश्चय सम्यक्चारित्र होय सो ही जिनमतमैं मोक्षमार्गका स्वरूप कह्या है, अन्यमतीनिनैं अनेक प्रकार कल्पना करि कह्या है सो मोक्षमार्ग नाही है ॥

आगैं ऐसा मोक्षमार्गकूं जानि श्रद्धासहित यामैं प्रवर्त्तै है सो शीघ्र ही मोक्ष पावै है ऐसैं कहै हैं,—

दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं ॥४०॥

दर्शनज्ञानचरित्रं त्रीण्यपि जानीहि परमश्रद्धया।
यत् ज्ञात्वा योगिनः अचिरेण लभंते निर्वाणम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भव्य ! तू दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननिकूं परमश्रद्धा-करि जानि जिसकूं जानिकरि जोगी मुनि हैं सो थोरे ही कालमें निर्वाणकूं पावैं हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मक मोक्षमार्ग है ताके श्रद्धापूर्वक जाननेंका उपदेश है जातैं याकूं जाने मुनिनिकै मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ ४० ॥

आगैं कहै है जो ऐसें निश्चयचारित्ररूप ज्ञानका स्वरूप कह्या इसकू जो पावै है सो शिवरूप मंदिरके वसनेवाले होय हैं;—

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूड़ामणी सिद्धा ॥ ४१ ॥

प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मलसुविशुद्धभावसंयुक्ताः।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥

अर्थ—जे पुरुप इस जिनभाषित ज्ञानरूप जलकूं पाय करि अप-नां निर्मल भलै प्रकार विशुद्धभावकरि संयुक्त होय है ये पुरुष तीन भुव-नके चूडामणि अर शिव कहिये मुक्ति सोही भया आलय कहिये मंदिर तामैं वसनेवाले ऐसे सिद्ध परमेष्ठी होय हैं ॥

भावार्थ—जैसे जलतैं स्नानकरि शुद्ध होय उत्तम पुरुष महलमैं निवास करैं हैं तैसैं यह ज्ञान है सो जलवत् है अर आत्माकै रागादिक मैल लगनैंतैं मलिनता होय है सो इस ज्ञानरूप जलतैं रागादिक मल

धोय जे अपने आत्माकूं शुद्ध करै हैं ते मुक्तिरूप महलमैं वसि आनंद भोगवै हैं, तिनिकूं तीन भुवनके शिरोमणि सिद्ध कहिये हैं ॥ ४१ ॥

आगैं कहै हैं जे ज्ञानगुणकरि रहित हैं ते इष्ट वस्तु न पावैं तातैं गुण दोपके जाननेंकूं ज्ञानकूं भलेप्रकार जाननां—

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं ।
इय णाऊ गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि ॥ ४२ ॥
ज्ञानगुणैः विहीना न लभंते ते स्विष्टं लाभं ।
इति ज्ञात्वा गुणदोषौ तत् सद्ज्ञानं विजानीहि ॥ ४२ ॥

अर्थ—ज्ञानगुणकरि हीन जे पुरुष है ते अपना इच्छित वस्तुका लाभकूं नांही पावैं हैं ऐसा जानिकरि हे भव्य ! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान है ताहि गुण दोपके जाननेकूं जानि ॥

भावार्थ—ज्ञान विना गुण दोपका ज्ञान नांही होय तब अपनें इष्ट वस्तु तथा अनिष्टकूं नाही जानैं तब इष्ट वस्तुका लाभ न होय तातैं सम्यग्ज्ञानही करि गुण दोप जाण्या जाय हैं यातैं गुण दोप जाननेंकू सम्यग्ज्ञान विना हेय उपादेय वस्तुनिका जाननां न होय अर हेय उपादेय जानें विना सम्यक्चारित्र नांही होय है तातैं ज्ञानहीकूं चारित्रतैं प्रधानकरि कह्या है ॥ ४२ ॥

आगैं कहैं हैं जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र धारै है सो थोरैही कालमैं अनुपम सुखकूं पावै है:—

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी ।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥४३॥
चारित्रसमारूढ आत्मनि[१] परं न ईहते ज्ञानी ।

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'आत्मनि' इसके स्थानमें आत्मन. ऐसा पाठ है टीकामें अर्थ भी आत्मनः का ही किया है । देखो, पृष्ट ५४ ।

प्राप्नोति अचिरेण सुखं अनुपमं जानीहि निश्चयतः ॥४३॥

अर्थ--जो पुरुष ज्ञानी है अर चारित्रकरि सहित है सो अपने आत्मा विषैं परद्रव्यकूं नाही इच्छै है परद्रव्यविषैं राग द्वेष मोह नाही करै है सो ज्ञानी जाकी उपमा नांही ऐसा अविनाशी मुक्तिका सुख पावै है ऐसै हे भव्य ? तू निश्चयतैं जानि। इहां ज्ञानी होय हेय उपादेयकूं जानि सयमी होय परद्रव्यकूं आपमैं न मिलावै सो परम सुख पावै ऐसा जनाया है ॥ ४३ ॥

आगैं इष्ट चारित्रके कथनकू सकोचै हैं

एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण ।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं ॥ ४४ ॥

एवं संक्षेपेण च भणितं ज्ञानेन वीतरागेण ।
सम्यक्त्वसंयमाश्रयद्वयोरपि उद्देशितं चरणम् ॥४४॥

अर्थ—एव कहिये ऐसै पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप करि श्रीवीतराग देवनैं ज्ञानकरि कह्या ऐसा सम्यक्त्व अर संयम इनि दोऊनिकै आश्रय चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप अर संयमचरणस्वरूप दोय प्रकार करि उपदेशरूप किया है, आचार्य चारित्र का कथन संक्षेपरूप कहि सकोच्या है ॥ ४४ ॥

आगैं इस चारित्रपाहुडकू भावनेका उपदेश अर याका फल कहै हैं;—

भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव ।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होइ ॥ ४५ ॥

भावयत भावशुद्धं स्फुटं रचितं चरणप्राभृतं चैव ।
लघु चतुर्गतीः त्यक्त्वा अचिरेण अपुनर्भवाः भवत ॥ ४५ ॥

अर्थ–इहां आचार्य कहै हैं जो हे भव्य जीव हो ! यह चरण कहिये चारित्रका पाहुड हमनैं स्फुट प्रगटकरि रच्या है ताकूं तुम अपना शुद्ध भावकरि भावो अपने भावनिमैं वारवार अभ्यास करो यातैं शीघ्रही च्यार गतिनिकूं छोडि करि बहुरि अपुनर्भव जो मोक्ष सो तुम्हारै होयगा फेरि संसारमैं जन्म न पावोगे ॥

भावार्थ–इस चारित्रपाहुडका वाचना पढना धारना वारंवार भावना अभ्यास करना यह उपदेश है यातैं चारित्रका स्वरूप जानि धारनेकी रुचि होय अंगीकार करै तब च्यार गतिरूप संसारके दुःखतैं रहित होय निर्वाणकूं प्राप्त होय फेरि संसारमैं जन्म न धारै जातैं जे कल्याणके अर्थी हैं ते ऐसैं करौ ॥

छप्पय ।

चारित दोय प्रकार देव जिनवरनैं भाख्या ।
समकित संयम चरण ज्ञानपूरव तिस राख्या ॥
जे नर सरधावान याहि धारैं विधिसेती ।
निश्चय अर व्यवहार रीति आगममैं जेती ॥
जब जगधंधा सब मेटिकैं निजस्वरूपमैं थिर रहै ।
तब अष्टकर्मकूं नाशिकै अविनाशी शिवकूं लहै ॥ १ ॥

ऐसैं सम्यक्त्वचरणचारित्र अर संयमचरण-
चारित्र ऐसैं दोय प्रकार चारित्रका
स्वरूप इस प्राभृतविषैं कह्या ।

दोहा।

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराय।
तिनिके चरण नमूं सदा पाऊं तिनि गुणसाज॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि विरचित
चारित्रप्राभृतकी—
पं० जयचन्द्रछाबड़ाकृत देशभाषामय-
वचनिका समाप्त ॥ ३ ॥

॥ श्री ॥

अथ बोधपाहुड

—(ः-ः) ४ (ः-ः)—

॥ दोहा ॥

देव जिनेश्वर सर्वगुरु वंदूं मनवच काय।
जा प्रसाद भवि बोध ले पालैं जीवनिकाय ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलाचरण करि श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंध बोधपाहुडकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है, तहां प्रथमही आचार्य ग्रंथ करनेंकी मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करै हैं;—

बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे ॥ १ ॥
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
वुच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं सुणह ॥ २ ॥

बहुशास्त्रार्थज्ञापकान् संयमसम्यक्त्वशुद्धतपश्चरणान्।
वन्दित्वा आचार्यान् कपायमलवर्जितान् शुद्धान् ॥१॥
सकलजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम्।
वक्ष्यामि समासेन षट्कायसुखंकरं शृणु ॥ २ ॥ युग्मम्।

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं आचार्यनिकूं वंदिकरि अर छह कायके जीवनिकूं सुखका करनेवाला जिनमार्गविषैं जिनदेवनैं जैसैं कह्या तैसैं

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'छक्कायहियंकर' ऐसा पाठ है।

समस्त लोकनिका हितका है प्रयोजन जामैं ऐसा ग्रंथ संक्षेपकरि कहूंगा ताकूं हे भव्यजीव ! तुम सुनो, जिन आचार्यनिकूं वंदे ते आचार्य कैसे हैं—बहुत शास्त्रनिका अर्थके जाननेवाले हैं बहुरि कैसे हैं—संयम अर सम्यक्त्व इनि करि शुद्ध है तपश्चरण जिनिकै बहुरि कैसे हैं—कषायरूप मलकरि वर्जित हैं याहीतैं शुद्ध हैं ॥

भावार्थ—इहां आचार्यनिकूं वंदना करी तिनिके विशेषणनितैं जानिये है कि गणधरादिकतैं लगाय अपनें गुरुपर्यंत तिनिकी वंदना है, बहुरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करी ताके विशेषणनितैं जानिये है जो बोधपाहुड ग्रंथ करियेगा सो लोकनिकूं धर्ममार्गविषै सावधानकरि कुमार्ग छुडाय अहिंसाधर्मका उपदेश करियेगा ॥ २ ॥

आगैं इस बोधपाहुडमैं ग्यारह स्थल बांधेहैं तिनिके नाम कहै हैं,

आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणविंबं ।
भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं ॥ ३ ॥
अरहंतेण सुदिट्ठं जं देव तित्थमिह य अरहंतं ।
पावज्ज गुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो ॥ ४ ॥

आयतनं चैत्यगृहं जिनप्रतिमा दर्शनं च जिनबिंबम् ।
भणितं सुवीतरागं जिनमुद्रा ज्ञानमात्मार्थम्[1] ॥ ३ ॥
अर्हता सुदृष्टं यः देवः तीर्थमिह च अर्हन् ।
प्रव्रज्या गुणविशुद्धा इति ज्ञातव्याः यथाक्रमशः ॥ ४ ॥

अर्थ—आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिंब कैसा है जिनबिंब भलेप्रकार वीतराग है रागसहित नाहीं जिनमुद्रा, ज्ञान सो कैसा आत्माही है अर्थ कहिये प्रयोजन जामैं, ऐसै सात, तौ ये निश्चय, वीत-

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आत्मस्थ' ऐसा पाठ है ।

राग देवनै कहे तैसैं यथा अनुक्रमतैं जाननैं, बहुरि देव तीर्थंकर, अरहंत अर गुणकरि विशुद्ध प्रव्रज्या ये च्यार जो अरहंत भगवान कहे तेमैं इस ग्रंथविषैं जानना, ऐसैं ये ग्यारह स्थल भये ॥ ३—४ ॥

भावार्थ—इहां ऐसा आशय जानना जो धर्म मार्गमैं कालदोपतैं अनेक मत भये है तथा जैनमतमैं भी भेद भये हैं तिनिमैं आयतन आदिविषैं विपर्यय भया है तिनिका परमार्थ भूत साचा स्वरूप तौ लोक जानै नाही अर धर्मके लोभी भये जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखैं तिसहीमैं प्रवर्त्तने लगि जांय, तिनिकूं संबोधनेंके अर्थि यहु बोधपाहुड रच्या है तामैं आयतन आदि ग्यारह स्थानकनिका परमार्थभूत साचा स्वरूप जैसा सर्वज्ञ देवनैं कह्या है तैसा कहियेगा, अनुक्रमतैं जैसैं नाम कहे तैसैं ही अनुक्रमकरि इनिका व्याख्यान करियेगा सो जानने योग्य है ॥ ३-४ ॥

आगैं प्रथमही आयतन कह्या ताका निरूपण कहै हैं;—

मणवयणकायदव्वा आयत्ता¹ जस्स इंदिया विसया ।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं ॥ ५ ॥

मनोवचनकायद्रव्याणि आयत्ताः यस्य ऐंद्रियाः विषयाः ।
आयतनं जिनमार्गे निर्दिष्टं संयतं रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिनमार्ग विषैं संयमसहित मुनिरूप है सो आयतन कह्या है। कैसा है मुनिरूप—जाकै मन वचन काय द्रव्यरूप हैं ते तथा पांच इन्द्रियनिके स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये विषय हैं ते 'आयत्ता' कहिये आधीन हैं वशीभूत हैं, इनिकै संयमी मुनि आधीन नाही है ते मुनिकै वशीभूत हैं, ऐसा संयमी है सो आयतन है ॥ ५ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

मय राय दोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता ।
पंचमहव्वयधारा आयदणं महरिसी भणियं ॥ ६ ॥

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आसत्ता' ऐसा पाठ है जिस की संस्कृत 'आसक्ता.' है

मदः रागः द्वेषः मोहः क्रोधः लोभः च यस्य आयत्ताः ।
पंचमहाव्रतधराः आयतनं महर्षयो भणिताः ॥ ६ ॥

अर्थ—जा मुनिकै मद राग द्वेष मोह क्रोध अर चकारतैं माया आदिक ये सर्व 'आयत्ता' कहिये निग्रहकूं प्राप्त भये बहुरि पांच महाव्रत जे अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अर परिग्रहका त्याग इनिका धारी होय ऐसा महामुनि ऋषीश्वर आयतन कह्या है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ बाह्यका स्वरूप कह्या था इहां बाह्य आभ्यंतर दोऊ प्रकार संयमी होय सो आयतन है ऐसा जानना ॥ ६ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स ।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं ॥ ७ ॥

सिद्धं यस्य सदर्थं विशुद्धध्यानस्य ज्ञानयुक्तस्य ।
सिद्धायतनं सिद्धं मुनिवरवृषभस्य मुनितार्थम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जा मुनिकै सदर्थ कहिये समीचीन अर्थ जो शुद्ध आत्मा सो सिद्ध भया होय सिद्धायतन है, कैसा है मुनि—विशुद्ध है ध्यान जाकै धर्मध्यानकूं साधि शुक्लध्यानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है-ज्ञानकरि सहित है केवलज्ञानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है—घातिकर्मरूप मलतैं रहित है याहीतैं मुनिनिमैं वृषभ कहिये प्रधान है, बहुरि कैसा है—जानै है समस्त पर्याय जानैं ऐसे मुनिप्रधानकूं सिद्धायतन कहिये ॥

भावार्थ—ऐसैं तीन गाथामै आयतनका स्वरूप कह्या, तहां पहली-गाथामैं तौ संयमी सामान्यका बाह्यरूप प्रधानकरि कह्या, दूजीमै अंतरंग बाह्य दोऊकी शुद्धतारूप ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कह्या, बहुरि इस तीसरी गाथामै केवलज्ञानी है सो मुनिनिमैं प्रधान है ताकूं सिद्धायतन कह्या है । इहां ऐसा जानना जो आयतन नाम जामैं बसिये निवास

करिये ताका है सो धर्मपद्धतिमैं जो धर्मात्मा पुरुषके आश्रय करनेयोग्य होय सो धर्मायतन है सो ऐसे मुनिही धर्मके आयतन हैं, अन्य केई भेषधारी पाखंडी विषय कषायनिमैं आसक्त परिग्रहधारी धर्मके आयतन नाही हैं तथा जैनमतमैं भी जे सूत्रविरुद्ध प्रवर्त्तें हैं ते भी आयतन नांही हैं, ते सर्व अनायतन हैं, तथा बौद्धमतमैं पांच इन्द्रिय, पांच तिनिके विषय, एक मन, एक धर्मायतन शरीर, ऐसैं बारह आयतन कहे हैं ते भी कल्पित हैं. यातैं जैसा आयतन कह्या तैसा ही जानना, धर्मात्माकूं तिस-हीका आश्रय करना अन्यकी स्तुति प्रशंसा विनयादिक न करना,यह बोधपाहुड ग्रंथ करनेका आशय है। बहुरि जामैं ऐसे मुनि बसैं ऐसा क्षेत्रकूं भी आयतन कहिये है सो यह व्यवहार है ॥ ७ ॥

आगैं चैत्यगृहका निरूपण करैं हैं--

बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च ।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं ॥ ८ ॥

बुद्धं यत् बोधयन् आत्मानं चैत्यानि अन्यत् च ।
पंचमहाव्रतशुद्धं ज्ञानमयं जानीहि चैत्यगृहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो मुनि बुद्ध कहिये ज्ञानमयी ऐसा आत्मा ताहि जानता होय बहुरि अन्य जीवनकूं चैत्य कहिये चेतना स्वरूप जानता होय बहुरि आप ज्ञानमयी होय बहुरि पांच महाव्रतनिकरि शुद्ध होय निर्मल होय ता मुनिकूं हे भव्य ! तू चैत्यगृह जानि ॥

भावार्थ—जामैं आपा परका जाननेवाला ज्ञानी निःपाप निर्मल ऐसा चैत्य कहिये चेतनास्वरूप आत्मा बसै सो चैत्यगृह है सो ऐसा चैत्यगृह संयमी मुनि है, अन्य पाषाण आदिका मंदिरकूं चैत्यगृह कहनां व्यवहार है ॥ ८ ॥

आगैं फेरि कहै हैं:—

चेइय बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स ।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं ॥ ९ ॥

चैत्यं बंधं मोक्षं दुःखं सुखं च आत्मकं तस्य ।
चैत्यगृहं जिनमार्गे षट्कायहितंकरं भणितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जाकै बंध अर मोक्ष बहुरि सुख अर दुःख ये आत्माकै होंय जाकै स्वरूपमैं होंय सो चैत्य कहिये जातैं चेतना स्वरूप होय ताहीकै बंध मोक्ष सुख दुःख सम्भवै ऐसा जो चैत्यका गृह होय सो चैत्यगृह है सो जिनमार्गविषैं ऐसा चैत्यगृह छह कायका हित करनेवाला होय सो ऐसा मुनि है सो पांच थावर अर त्रसमैं विकलत्रय अर असैनी पंचेंद्रियतांई केवल रक्षाही करने योग्य है तातैं तिनिकी रक्षा करनेका उपदेश करै है, तथा आप तिनिका घात न करै है तिनिका यही हित है, बहुरि सैनी पंचेंद्रिय जीव हैं तिनिकी रक्षा भी करै है रक्षाका उपदेश भी करै है तथा तिनिकूं संसारतैं निवृत्तिरूप मोक्ष होनेंका उपदेश करै है ऐसे मुनिराजकूं चैत्यगृह कहिये ॥

भावार्थ—लौकिक जन चैत्यगृहका स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानैं हैं तिनिकूं सावधान किये हैं-जो जिनसूत्रमैं छह कायका हित करनेंवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है सो चैत्यगृह है, अन्यकूं चैत्यगृह कहना मानना व्यवहार है । ऐसैं चैत्यगृहका स्वरूप कह्या ॥ ९ ॥

आगैं जिनप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाण ।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० ॥

स्वपरा जंगमदेहा दर्शनज्ञानेन शुद्धचरणानाम् ।
निर्ग्रन्थवीतरागा जिनमार्गे ईदृशी प्रतिमा ॥१०॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान करि शुद्ध निर्मल है चारित्र जिनकै तिनिकी स्वपरा कहिये अपनी अर परकी चालती देह है सो जिनमार्ग विषैं जंगम प्रतिमा है, अथवा स्वपरा कहिये आत्मातैं पर कहिये भिन्न है ऐसी देह है, सो कैसी है-निर्ग्रंथ स्वरूप है जाकै किछू परिग्रहका लेश नाहीं ऐसी दिगंबरमुद्रा, बहुरि कैसी है-वीतराग स्वरूप है जाकै काहू वस्तुसौं राग द्वेष मोह नाहीं, जिनमार्ग विषैं ऐसी प्रतिमा कही है। दर्शन ज्ञान करि निर्मल चारित्र जिनकै पाइये ऐसे मुनिनिकी गुरु शिष्य अपेक्षा अपनी तथा परकी चालती देह निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है सो जिनमार्गविषैं प्रतिमा है अन्य कल्पित है अर धातु पाषाण आदिकरि दिगंबरमुद्रा स्वरूप प्रतिमा कहिये सो व्यवहार है सो भी बाह्य प्रकृति ऐसी ही होय सो व्यवहारमैं मान्य है ॥ १० ॥

आगैं फेरि कहै है,—

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं ।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा ॥ ११ ॥

यः चरति शुद्धचरणं जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम् ।
सा भवति वंदनीया निर्ग्रन्था सांयता प्रतिमा ॥ ११ ॥

अर्थ—जो शुद्ध आचरणकूं आचरै बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि यथार्थ वस्तुकूं जानै है बहुरि सम्यग्दर्शनकरि अपनें स्वरूपकूं देखै है ऐसैं शुद्ध सम्यक् जाकै पाइये है ऐसी निर्ग्रंथ संयम स्वरूप प्रतिमा है सो वंदिबे योग्य है ॥

भावार्थ— जाननेवाला देखनेवाला शुद्ध सम्यक्त्व शुद्ध चारित्र स्वरूप निर्ग्रंथ संयमसहित ऐसा मुनिका स्वरूप है सो ही प्रतिमा है सो ही वंदिवेयोग्य अन्य कल्पित वंदिवेयोग्य नाही है बहुरि तैसेही रूपसदृश धातुपाषाणकी प्रतिमा होय सो व्यवहारकरि वंदिवेयोग्य है ॥ ११ ॥

आगे फेरि कहै हैं,—

दंसण अणंत णाणं अणंतवीरिय अणंउसुक्खा य।
सास्सयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं ॥ १२ ॥
निरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥१३॥

दर्शनं अनंतं ज्ञानं अनन्तवीर्याः अनंतसुखाः च।
शाश्वतसुखा अदेहा मुक्ताः कर्माष्टकबंधैः ॥ १२ ॥
निरुपमा अचला अक्षोभाः निर्मापिता जंगमेन रूपेण।
सिद्धस्थाने स्थिताः व्युत्सर्गप्रतिमा ध्रुवाः सिद्धाः ॥१३॥

अर्थ—जो अनतदर्शन अनतज्ञान अनतवीर्य अनंतसुख इनिकरि सहित है, बहुरि शाश्वता अविनाशीसुखस्वरूप है, बहुरि अदेह है कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनिकै नाही है, बहुरि अष्टकर्मके बंधनकरि रहित है, बहुरि उपमाकरि रहित है जाकी उपमा दीजिये ऐसा लोकमैं वस्तु नाही है बहुरि अचल है प्रदेशनिका चलना जिनकै नाही है बहुरि अक्षोभ है जिनिकै उपयोगमैं किछू क्षोभ नाही है निश्चल है, बहुरि जंगमरूप करि निर्मित है कर्मतैं निर्मुक्त हुये पीछैं एक समय मात्र गमन रूप होय हैं, तातैं जंगमरूपकरि निर्मापित है, बहुरि सिद्धस्थान जो लोकका अग्रभाग ता विषैं स्थित है याहीतैं व्युत्सर्ग कहिये कायरहित है जैसा पूर्वं देहमैं आकार था तैसाही प्रदेशनिका आकार किछू घाटि ध्रुव है, संसारतैं मुक्त होय एक समय गमनकरि लोककै अग्रभाग विषैं जाय तिष्ठैं पीछै चलाचल नाही है ऐसी प्रतिमा सिद्ध है॥

भावार्थ—पहलै दोय गाथामैं तौ जंगम प्रतिमा संयमी मुनिनिकी देहसहित कही, बहुरि इनि दोय गाथानिमैं थिर प्रतिमा सिद्धनिकी कही

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'निर्मापिता अजंगमेन रूपेण' ऐसी छाया है।

ऐसैं जगम थावर प्रतिमाका स्वरूप कह्या अन्य केई अन्यथा बहुत प्रकार कल्पै हैं सो प्रतिमा वदिवे योग्य नाही है ।।

इहा प्रश्न—जो यह तौ परमार्थ स्वरूप कह्या अर बाह्य व्यवहारमै प्रतिमा पाषाणादिककी वदिये है सो कैसैं ! ताका समाधान—जो बाह्य व्यवहारमैं मतातरके भेदतै अनेक रीति प्रतिमाकी प्रवृत्ति है सो इहा परमार्थकूं प्रधानकरि कह्या है, बहुरि व्यवहार है सो जैसा प्रतिमाका परमार्थरूप होय ताहीकूं सूचता होय सो निर्बाध होय है जैसा परमार्थरूप आकार कह्या तैसाही आकाररूप व्यहार होय सो व्यवहार भी प्रशस्त है, व्यवहारी जीवनिकै ये भी वंदिवेयोग्य है। स्याद्वाद न्यायकरि साचे परमार्थ व्यवहारमैं विरोध नाही है ।। १२-१३ ।।

ऐसैं जिनप्रतिमाका स्वरूप कह्या।

आगै दर्शनका स्वरूप कहै हैं,—

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संयमं सुधम्मं च ।
णिग्गंथं णाणमय जिणमग्गे दंसणं भणियं ।। १४ ।।

दर्शयति मोक्षमार्गं सम्यक्त्वं संयमं सुधर्मं च ।
निर्ग्रंथं ज्ञानमयं जिनमार्गे दर्शनं भणितम् ।। १४ ।।

अर्थ—जो मोक्षमार्गकूं दिखावै सो दर्शन है, कैसा है मोक्ष-मार्ग—सम्यक्त्व कहिये तत्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है, बहुरि कैसा है—सयम कहिये चारित्र पच महाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति ऐसैं तेरह प्रकार चारित्ररूप है, बहुरि कैसा है—सुधर्म कहिये उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, बहुरि कैसा है—निर्ग्रंथरूप है बाह्य अभ्यतर परि-ग्रह रहित है, बहुरि कैसा है—ज्ञानमयी है जीव अजीवादि पदार्थनिकूं जाननेवाला है, इहा निर्ग्रंथ अर ज्ञानमयी ये दोय विशेषण दर्शनके भी

होय है जातैं दर्शन है सो बाह्य तौ याकी मूर्ति निर्ग्रंथ है बहुरि अंतरंग ज्ञानमयी है। ऐसा मुनिके रूपकौं जिनमार्गमैं दर्शन कह्या है तथा ऐसे रूपका श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्वरूपकूं दर्शन कहिये है।

भावार्थ—परमार्थरूप अतरग दर्शन तौ सम्यक्त्व है अर बाह्य याकी मूर्त्ति ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रंथरूप ऐसा मुनिका रूप है सो दर्शन है जातैं मतकी मूर्त्तिकूं दर्शन कहना लोकमैं प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं,—

जह फुल्लं गंधमयं भवदि हु खीरं स घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं ॥ १५ ॥

यथा पुष्पं गंधमयं भवति स्फुटं क्षीरं तत् घृतमयं चापि।
तथा दर्शनं हि सम्यग्ज्ञानमयं भवति रूपस्थम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसैं फूल है सो गधमयी है बहुरि दूध है सो घृतमयी है तैसैं दर्शन कहिये मत विषैं सम्यक्त्व है कैसा है दर्शन अतरंग तौ ज्ञानमयी है बहुरि बाह्य रूपस्थ है मुनिका रूप है तथा उत्कृष्ट श्रावक अर्जिकाका रूप है ॥

भावार्थ—दर्शन नाम मतका प्रसिद्ध है सो इहां जिनदर्शनविषैं मुनि-श्रावक आर्यिकाका जैसा बाह्य भेष कह्या सो दर्शन जानना अर याकी श्रद्धा सो अन्तरङ्ग दर्शन जानना सो ये दोऊही ज्ञानमयी हैं यथार्थ तत्वार्थका जाननेंरूप सम्यक्त्व जामैं पाइये है याहीतैं फूलमैं गंधका अर दूधमें घृतका दृष्टांत युक्त है ऐसैं दर्शनका रूप कह्या। अन्यमतमैं तथा कालदोषकरि जिनमतमैं जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहै हैं सो कल्याणरूप नाहीं ससारका कारण है ॥ १५ ॥

आगैं जिनबिंबका निरूपण करै हैं;—

जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देइ दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ॥१६॥

जिनबिंबं ज्ञानमयं संयमशुद्धं सुवीतरागं च ।
यत् ददाति दीक्षाशिक्षे कर्मक्षयकारणे शुद्धे ॥ १६ ॥

अर्थ—जिनबिंब कैसा है–ज्ञानमयी है अर संयमकरि शुद्ध है बहुरि अतिशयकरि वीतराग है बहुरि जो कर्मका क्षयका कारण अर शुद्ध है ऐसी दीक्षा अर शिक्षा दे है।

भावार्थ—जो जिन कहिये अरहन्त सर्वज्ञका प्रतिबिंब कहिये ताकी जायगा तिसकी ज्यौं मानने योग्य होय, ऐसे आचार्य हैं सो दीक्षा कहिये व्रतका ग्रहण अर शिक्षा कहिये व्रतका विधान बतावना ये दोऊ कार्य भव्यजीवनिकूं दे है, यातैं प्रथम तौ सो आचार्य ज्ञानमयी होय जिनसूत्रका जिनकू ज्ञान होय ज्ञान विना यथार्थ दीक्षा शिक्षा कैसे होय अर आप संयमकरि शुद्ध होय ऐसा न होय तौ अन्यकूं भी संयम शुद्ध न करावै बहुरि अतिशयकरि वीतराग न होय तौ कषायसहित होय तब दीक्षा शिक्षा यथार्थ न दे, यातैं ऐसे आचार्यकूं जिनके प्रतिबिंब जाननें ॥ १६ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं ।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो ॥ १७ ॥
तस्य च कुरुत प्रणामं सर्वां पूजां च विनयं वात्सल्यम् ।
यस्य च दर्शनं ज्ञानं अस्ति ध्रुवं चेतनाभावः ॥ १७ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त जिनबिंबकू प्रणाम करो बहुरि सर्व प्रकार पूजा करो विनय करो वात्सल्य करो, काहेतैं—जाकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं दर्शन ज्ञान पाइये है बहुरि चेतनाभाव है ॥

भावार्थ—दर्शन ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिंब आचार्य है तिनिकू प्रणामादिक करना। इहां परमार्थ प्रधान कह्या है तहां जड़ प्रतिबिंबकी गौणता है ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेहि सुद्धसम्मत्तं।
अरहंतमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य॥१८॥

तपोव्रतगुणैः शुद्धः जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम्।
अर्हन्मुद्रा एषा दात्री दीक्षाशिक्षाणां च॥१८॥

अर्थ—जो तप अर व्रत अर गुण कहिये उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध होय बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि पदार्थनिकू यथार्थ जानै बहुरि सम्यग्दर्शनकरि पदार्थनिकू देखै याहीतैं शुद्ध सम्यक्त्व जाकै ऐसा जिनबिंब आचार्य है सो येही दीक्षा शिक्षाकी देनेवाली अरहंत की मुद्रा है॥

भावार्थ—ऐसा जिनबिंब है सो जिनमुद्राही है ऐसैं जिनबिंबका स्वरूप कह्या है॥१८॥

आगैं जिनमुद्राका स्वरूप कहैं हैं;—

दढसंजममुद्दाए इंदियमुद्दा कसायदढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया॥१९॥

दृढसंयममुद्रया इन्द्रियमुद्रा कषायदृढमुद्रा।
मुद्रा इह ज्ञानेन जिनमुद्रा ईदृशी भणिता॥१९॥

अर्थ—दृढ कहिये वज्रवत् चलाया न चलै ऐसा संयम—इन्द्रिय मनका वश करना, षट्जीवनिकायकी रक्षा करना, ऐसे संयमरूप मुद्राकरि तौ पांच इन्द्रियनिकूं विषयनिमैं न प्रवर्त्तावना तिनिका संकोच करना यह तौ इंद्रियमुद्रा है, बहुरि ऐसा संयम करिही कषायनिकी प्रवृत्ति जामैं नहीं ऐसी कषायदृढमुद्रा है, बहुरि ज्ञानका स्वरूपविषैं लगावनां ऐसे ज्ञानकरि सर्व बाह्य मुद्रा शुद्ध होय हैं, ऐसैं जिनशासनविषैं ऐसी जिनमुद्रा होय है॥

भावार्थ—संयमरहित होय इन्द्रिय जाकै वशीभूत होय अर कषायनिकी प्रवृत्ति नाहीं होती होय अर ज्ञानस्वरूपमैं लगावता होय ऐसा मुनि होय सो ही जिनमुद्रा है॥१९॥

भावार्थ—धनुषधारी धनुषका अभ्यास रहित अर वेधक जो बाण ताकरि रहित होय तौ निशानाकूं न पावै तैसैं ज्ञानकरि रहित अज्ञानी मोक्षमार्गका निशाना परमात्मा स्वरूप है ताकूं न पहचानैं तब मोक्षमार्गकी सिद्धि न होय तातैं ज्ञानकूं जानना, परमात्मारूप निशाना ज्ञानरूप बाणकरि वेधना योग्य है ॥ २१ ॥

आगैं कहै है ऐसा ज्ञान विनय सयुक्त पुरुष होय सो मोक्ष पावै है,-

णाणं पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ॥ २२ ॥

ज्ञानं पुरुषस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विनयसंयुक्तः ।
ज्ञानेन लभते लक्ष्यं लक्षयन् मोक्षमार्गस्य ॥ २२ ॥

अर्थ—ज्ञान होय है सो पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनय संयुक्त होय सो ज्ञानकूं पावै है, बहुरि ज्ञान पावै तब तिस ज्ञानहीकरि मोक्षमार्गका लक्ष्य जो परमात्माका स्वरूप ताकूं लक्षता ध्यावता सता तिस लक्षकू पावै है ॥

भावार्थ—ज्ञान पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनयवान होय सो ज्ञानकूं पावै है तिस ज्ञानहीकरि शुद्धआत्माका स्वरूप जानिये है यातैं विशेष ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानकी प्राप्ति करनीं जातैं निज शुद्ध स्वरूपकूं जानि मोक्ष पाइये है, इहा जे विनयकरि रहित होय यथार्थ सूत्र पदतैं चिगे होय भ्रष्ट भये होय तिनिका निषेध जानना ॥ २२ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करै हैं;—

मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं ।
परमत्थबद्धलक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स ॥२३॥

मतिधनुर्यस्य स्थिरं श्रुतं गुणः बाणाः सुसंति रत्नत्रयं ।
परमार्थबद्धलक्ष्यः नापि स्खलति मोक्षमार्गस्य ॥२३॥

अर्थ—जो मुनिकै मतिज्ञानरूप धनुष थिर होय, बहुरि श्रुतज्ञानरूप जाकै गुण कहिये प्रत्यचा होय, बहुरि रत्नत्रय रूप जाकै भला बाण होय, बहुरि परमार्थ स्वरूप निज शुद्धात्मस्वरूपका संबधरूप किया है लक्ष्य जानैं ऐसा मुनि है सो मोक्षमार्गकूं नांहीं चूकै है ॥

भावार्थ—धनुषकी सर्व सामग्री यथावत मिलै तब निसानां नाहीं चूकै है तैसैं मुनिके मोक्षमार्गकी यथावत सामग्री मिलै तब मोक्षमार्गतैं भ्रष्ट नाही होय है ताका साधनकरि मोक्ष पावै है यह ज्ञानका माहात्म्य है तातैं जिनागम अनुसार सत्यार्थ ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानका साधन करना ॥ २३ ॥

ऐसैं ज्ञानका निरूपण किया।

आगैं देवका स्वरूप कहै हैं,—

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च ।
सो देइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥२४॥

सः देवः यः अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च ।
सः ददाति यस्य अस्तु तु अर्थः कर्म च प्रव्रज्या ॥२४॥

अर्थ—देव ताकूं कहिये जो अर्थ कहिये धन अर धर्म अर काम कहिये इच्छाका विषय ऐसा भोग बहुरि मोक्षका कारण ज्ञान इनि च्यारि-निकूं देवै। तहा यह न्याय है जो बाकै वस्तु होय सो देवै अर जाकै जो वस्तु न होय सो कैसैं दे, इस न्यायकरि अर्थ धर्म स्वर्गादिके भोग अर मोक्षका सुखका कारण जो प्रव्रज्या कहिये दीक्षा जाकै होय सो देव जानना ॥ २४ ॥

आगैं धर्मादिका स्वरूप कहै हैं जिनिके जानैं देवादिका स्वरूप जान्या जाय;—

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता ।
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं ॥ २५ ॥

धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता ।
देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम् ॥ २५ ॥

अर्थ---धर्म है सो तौ दयाकरि विशुद्ध है, बहुरि प्रव्रज्या है सो सर्व परिग्रहतै रहित है, बहुरि देव है सो नष्ट भया है मोह जाका ऐसा है सो भव्य जीवनिकै उदयका करनेवाला है ॥

भावार्थ—लोकमैं यह प्रसिद्ध है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष ये च्यार पुरुषके प्रयोजन हैं इनिके अर्थि पुरुष काहू वदै पूजै है, बहुरि यह न्याय है जो जाकै जो वस्तु होय सो अन्यकूं दे अणछती कहांतैं ल्यावै तातैं ये च्यार पुरुषार्थ जिनदेवकै पाइये है, धर्म तौ जिनकै दयारूप पाइये है ताकूं साधि तीर्थंकर भये तब धनकी अर संसारके भोगकी प्राप्ति भई लोक पूज्य भए, बहुरि तीर्थंकर परम पदवीमैं दीक्षा ले सर्व मोहतैं रहित होय परमार्थस्वरूप आत्मीक धर्मकू साधि मोक्षसुखकूं पाया सो ऐसैं तीर्थंकर जिन हैं, सोही देव है लोक अज्ञानी जिनिकू देव मानैं हैं तिनिकै धर्म अर्थ काम मोक्ष नांही जातैं केई हिंसक हैं केई विषय सक्त है मोही हैं तिनिकै धर्म काहेका ? बहुरि अर्थ कामकी जिनकै वांछा पाइये तिनिकै अर्थ काम काहेका ? बहुरि जन्म मरणतैं सहित हैं तिनिकै मोक्ष कैसैं ? ऐसैं देव साचा जिनदेवही है येही भव्य जीवनिकै मनोरथ पूर्ण करै हैं, अन्य सर्व कल्पित देवहैं ॥ २५ ॥

ऐसैं देवका स्वरूप कह्या ।

आगैं तीर्थका स्वरूप कहै हैं,—

वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे ।
ण्हाएउ मुणी तित्थे दिक्खासिक्खासुण्हाणेण ॥ २६ ॥

व्रतसम्यक्त्वविशुद्धे पंचेंद्रियसंयते निरपेक्षे ।
स्नातु मुनिः तीर्थे दीक्षाशिक्षासुस्नानेन ॥ २६ ॥

अर्थ—व्रत सम्यक्त्वकरि विशुद्ध अर पाच इंद्रियनिकरि सयत कहिये संवरसहित बहुरि निरपेक्ष कहिये ख्याति लाभ पूजादिक इस लोकका फलकी तथा परलोकविषैं स्वर्गादिकनिके भोगनिकी अपेक्षातैं रहित ऐसा आत्म स्वरूप तीर्थ विषै दीक्षा शिक्षारूप स्नानकरि पवित्र होहू ॥

भावार्थ—तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण सहित पंच महाव्रतकरि शुद्ध अर पंच इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त इस लोक परलोक विषैं विषय भोगनिकी वाछातैं रहित ऐसैं निर्मल आत्माका स्वभावरूप तीर्थविषैं स्नान किये पवित्र होय हैं ऐसी प्रेरणा करै है ॥ २६ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्त संजमं तवं णाणं ।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि संतिभावेण ॥२७॥

यत् निर्मलं सुधर्मं सम्यक्त्वं संयमं तपः ज्ञानम् ।
तत् तीर्थं जिनमार्गे भवति यदि शान्तभावेन ॥ २७ ॥

अर्थ-जिनमार्गविषैं सो तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित सम्यक्त्व तथा निर्मल इन्द्रिय मनका वशकरना षट्कायके जीवनिकी रक्षा करना ऐसा निर्मल सयम तथा अनशन अवमौदर्य व्रतपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसा बाह्य तौ छह प्रकार बहुरि प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्त्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार अंतरग ऐसै बारह प्रकार निर्मल तप, बहुरि जीव अजीव आदिक पदार्थनिका यथार्थ ज्ञान ये तीर्थ हैं ये भी जो शांतभावसहित होय कषायभाव न होय तब निर्मल तीर्थ हैं जातैं ये क्रोधादिभावसहित होय तौ मलिनता होय निर्मलता न रहै ॥

भावार्थ—जिनमार्गविषैं ऐसा तीर्थ कह्या है लोक सागर नदीनिकूं तीर्थ मानि स्नान करि पवित्र भया चाहै हैं सो शरीरका बाह्यमल इनितैं

किंचित् उतरै है अर शरीरमैं धातु उपधातुरूप अन्तर्मल इनितैं उतरै नांही अर ज्ञानावरण आदि कर्मरूप मल अर अज्ञान राग द्वेष मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्माके अन्तर्मल हैं सो तौ इनितैं किंचित्मात्र भी उतरै नांही उलटा हिंसादिकतैं पापकर्मरूप मल लागै है यातैं सागर नदी आदिकूं तीर्थ माननां भ्रम है। जाकरि तिरिये सो तीर्थ है ऐसा जिनमार्गमैं कह्या है सो ही संसारसमुद्रतैं तारनेवाला जानना ॥ २७ ॥

ऐसैं तीर्थका स्वरूप कह्या।

आगैं अरहंतका स्वरूप कहै हैं;—

णामे ठवणे हि य संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे[1] भावा भावंति अरहंतं ॥ २८ ॥

नाम्नि संस्थापनायां हि च संद्रव्ये भावे च सगुणपर्यायाः[2]।
च्यवनमागतिः संपत् इमे भावा भावयंति अर्हन्तम् ॥ २८ ॥

अर्थ.—नाम स्थापना द्रव्य भाव ये च्यार भाव कहिये पदार्थ हैं ते अरहंतकूं जनावैं हैं बहुरि सगुणपर्याया. कहिये अरहंतके गुण पर्यायनिसहित बहुरि चउणा कहिये च्यवन अर आगति बहुरि संपदा ऐसे ये भाव अरहंतकूं जनावै है ॥

भावार्थ—अरहंत शब्दकरि यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी होय ते सर्वही अरहंत हैं तथापि इहां तीर्थंकरपदकूं प्रधानकरि कथन करिये है तातैं नामादिककरि जनावना कह्या है। तहां लोकव्यवहारमैं नाम आदिकी प्रवृत्ति ऐसैं है जो जा वस्तुका नाम होय तैसा गुण न होय ताकूं नामनिक्षेप कहिये। बहुरि जिस वस्तुका जैसा आकार होय

१—संस्कृत सटीक प्रति में 'सपदिमं' ऐसा पाठ है।

२—'सगुणपज्जाया' इस पद की 'स्वगुणपर्याया' ऐसी संस्कृत मुद्रित सटीक प्रतिमें है।

तिस आकार ताकी काष्ठ पाषाणादिककी मूर्त्ति बनाय ताका संकल्प करिये ताकूं स्थापना कहिये। बहुरि जिस वस्तुकी पहली अवस्था होय तिसहीकूं आगली अवस्था प्रधान करि कहै ताकूं द्रव्य कहिये। बहुरि वर्त्तमानमैं जो अवस्था होय ताकूं भाव कहिये। ऐसैं च्यार निक्षेपकी प्रवृत्ति है ताका कथन शास्त्रमैं भी लोककूं समझावनेकूं कियाहै, जो निक्षेपविधान करि नाम स्थापना द्रव्यकू भाव न समझनां, नामकूं नाम समझना, स्थापनाकूं स्थापना समझनी, द्रव्यकूं द्रव्य समझनां, भावकूं भाव समझनो, अन्यकू अन्य समझै व्यभिचारनामा दोष आवै है ताकै मेटनेंकूं लोककूं यथार्थ समझानेकूं शास्त्रविषैं कथन है सो इहां तैसा निक्षेपका कथन न समझना, इहां तौ निश्चयनयकूं प्रधानकरि कथन है सो जैसा अरहंतका नाम है तैसाही गुणसहित नाम जानना, बहुरि स्थापना जैसी जाकी देह सहित मूर्त्ति है सो ही स्थापना जाननीं, बहुरि जैसा जाका द्रव्य है तैसा द्रव्य जाननां, बहुरि जैसा जाका भाव है तैसाही जाननां ॥ २८ ॥

ऐसैंही कथन आगैं करिये है तहां प्रथमही नामकूं प्रधान करि कहै हैं;—

दंसण अणंत णाणं मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवम गुणमारूढो अरहंतो एरिसो होई ॥२९॥

दर्शनं[1] अनंतं ज्ञानं मोक्षः नष्टाष्टकर्मबंधेन।
निरुपमगुणमारूढः अर्हन् ईदृशो भवति ॥२९॥

अर्थ—जाकै दर्शन अर ज्ञान ये ती अनंत हैं घातिकर्मके नाशतैं सर्व ज्ञेय पदार्थनिकूं देखना जाननां जाकै है, बहुरि नष्ट भया जो अष्ट कर्मनिका बंध ताकरि जाकै मोक्ष है, इहां सत्त्वकी अर उदयकी विवक्षा लेनीं केवलीकै आठौंही कर्मका बंध नाहीं यद्यपि साता वेदनीयका बंध

१—सटीक संस्कृत प्रतिमें 'दर्शने अनत ज्ञाने' ऐसा असम्यक् पाठ है।

सिद्धांतमैं कह्या है तथापि स्थिति अनुभागरूप नाही तातैं अबंधतुल्यही है ऐसा आठूंही कर्म बंधके अभावकी अपेक्षा भावमोक्ष कहिये, बहुरि उपमारहित गुणनिकरि आरूढ है सहित है ऐसे गुण छद्मस्थमैं कहूंही नांही तातैं उपमारहित गुण जामैं है ऐसा अरहंत होय ॥

भावार्थ—केवल नाममात्रही अरहंत होय ताकूं अरहंत न कहिए ऐसे गुणनिकरि सहित होय ताकूं नाम अरहंत कहिये ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्ण पावं च ।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो ॥३०॥

जराव्याधिजन्ममरणं चतुर्गतिगमनं पुण्यं पापं च ।
हत्वा दोषकर्माणि भूतः ज्ञानमयश्चार्हन् ॥३०॥

अर्थ—जरा कहिये बुढापा अर व्याधि कहिये रोग अर जन्म मरण च्यार गतिनिविषैं गमन पुण्य बहुरि पाप बहुरि दोषनिका उपजावनैंवाला कर्म तिनिका नाशकरि अर केवल ज्ञानमयी अरहंत हूवा होय सो अरहंत है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ गुणनिका सद्भावकरि अरहंत नाम कह्या बहुरि इस गाथामैं दोषनिका अभावकरि अरहंत नाम कह्या । तहां राग द्वेष मद मोह अरति चिंता भय निद्रा विषाद खेद विस्मय ये ग्यारह दोष तौ घातिकर्मके उदयतैं होय हैं, बहुरि क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग खेद ये अघातिकर्मके उदयतैं होय है; तहां इस गाथामैं जरा रोग जन्म मरण च्यार गतिनिमैं गमनका अभाव कहनेंतैं तौ अघातिकर्मतैं भये दोषनिका अभाव जाननां जातैं अघातिकर्ममैं इनि दोषनिकी उपजावन-हारी पापप्रकृतिनिका उदयका अरहंतकै अभाव है, बहुरि रागद्वेषादिक दोषनिका घातिकर्मके अभावतैं अभाव है। इहां कोई पूछै—मरणका अर पुण्यका अभाव कह्या सो मोक्षगमन होना यह मरण अरहंतकै है

अर पुण्यप्रकृतिनिका उदय पाइये है, तिनिका अभाव कैसैं ? ताका समाधान—इहां मरण होय करि फेरि संसारमैं जन्म होय ऐसा मरणकी अपेक्षा है ऐसा मरण अरहंतकै नाहीं तैसैंही जो पुण्यप्रकृतिका उदय पापप्रकृति सापेक्ष करै ऐसे पुण्यके उदयका अभाव जानना अथवा बंध अपेक्षा पुण्यकाभी बंध नाही है सातावेदनीय बंधे सो स्थिति अनुभाग-विना अबंधतुल्यही है। बहुरि कोई पूछै—केवलीकै असाता वेदनीयका उदयभी सिद्धांतमैं कह्या है ताकी प्रवृत्ति कैसैं है ? ताका समाधान—ऐसा जो असाताका निपट मंद अनुभाग उदय है अर साताका अति-तीव्र अनुभाग उदय है ताके वशतैं असाता कछू बाह्य कार्य करनें समर्थ नाहीं सूक्ष्म उदय देय खिरि जाय है तथा संक्रमणरूप होय सातारूप होय जाय है ऐसैं जानना। ऐसैं अनंत चतुष्टयकरि सहित सर्व दोषरहित सर्वज्ञ वीतराग होय सो नामकरि अरहंत कहिये ॥ ३० ॥

आगैं स्थापनाकरि अरहंतका वर्णन करैं हैं,—

गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं ।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स ॥३१॥

गुणस्थानमार्गणाभिः च पर्याप्तिप्राणजीवस्थानैः ।
स्थापना पंचविधैः प्रणेतव्या अर्हत्पुरुषस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ-गुणस्थान मार्गणास्थान पर्याप्ति प्राण बहुरि जीवस्थान इनि पांच प्रकार करि अरहंत पुरुषकी स्थापना प्राप्त करनी अथवा ताकूं प्रणाम करना ॥

भावार्थ—स्थापनानिक्षेपमैं काष्ठपाषाणादिकमैं संकल्प करना कह्या है सो इहां प्रधान नाहीं इहां निश्चय प्रधान करि कथन है तहां गुण-स्थानादिककरि अरहंतका स्थापन कह्या है ॥ ३१ ॥

आगैं विशेष कहै हैं;—

तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा ॥३२॥

त्रयोदशे गुणस्थाने सयोगकेवलिकः भवति अर्हन्।
चतुस्त्रिंशत् अतिशयगुणा भवंति स्फुटं तस्याष्ट प्रातिहार्या ॥३२॥

अर्थ—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिनिमैं सयोगकेवली नाम तेरहमा गुणस्थान है तिसविषै योगनिकी प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानकरि सहित सयोगकेवली अरहत होय है, बहुरि चौंतीस अतिशय ते हैं गुण जाकैं बहुरि ताकैं आठ प्रातिहार्य होय हैं ऐसा तौ गुणस्थानकरि स्थापना अरहंत कहिये ॥

भावार्थ—इहा चौंतीस अतिशय अर आठ प्रातिहार्य कहनें तैं तौ समवसरणमैं विराजमान तथा विहार करता अरहत है, बहुरि सयोग कहनेतैं विहारकी प्रवृत्ति अर वचनकी प्रवृत्ति सिद्ध होय है बहुरि केवली कहनेतै केवलज्ञानकरि सर्व तत्त्वका जानना सिद्ध होय है। तहा चौंतीस अतिशय तौ ऐसैं-जन्मतै प्रगट होंय दश—मलमूत्रका अभाव १ पसेवका अभाव २ धवल रुधिर होय ३ समचतुरस्रसंस्थान ४ वज्रवृषभनाराच संहनन ५ सुंदररूप ६ सुगंधशरीर ७ भले लक्षण होय ८ अनंतबल ९ मधुरवचन १० ऐसैं दश। बहुरि केवलज्ञान उपजे दश होय—उपसर्गका अभाव। १ अदयाका अभाव २ शरीरकी छाया पड़ै नहीं ३ चतुर्मुख दीखै ४ सर्व विद्याका स्वामीपणा ५ नेत्र टिमकारैं नहीं ६ शतयोजनसुभिक्षता ७ आकाशगमन ८ कवलाहार नाही ९ नख केश वढै नाही १० ऐसैं दश। बहुरि चौदह देवकृत—सकलार्द्धमागधी भाषा १ सकलजीवनिमैं मैत्रीभाव २ सर्व ऋतुके फल फूल फलैं ३ दर्पणसमान भूमि ४ कंटकरहित भूमि ५ मंद सुगंधपवन ६ सर्वकै आनंद ७ गंधोदकवृष्टि ८ पाद तलै कमलरचैं ९ सर्वधान्यनिष्पत्ति १० दशो दिशा निर्मल ११ देवनिको आह्वानन शब्द १२ धर्मचक्र आगै चलै १३ अष्ट

मंगलद्रव्य आगै चालै १४। अष्ट मंगलद्रव्य के नाम छत्र १ ध्वजा २ दर्पण ३ कलश ४ चामर ५ भृंगार ६ ताल ७ सुप्रतिष्ठक ८ ऐसें आठ। ऐसें चौंतीसके नाम कहे। बहुरि अष्ट प्रातिहार्य होय हैं तिनिके नाम अशोकवृक्ष १ पुष्पवृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर ४ सिंहासन ५ भामंडल ६ दुंदुभिवादित्र ७ छत्र ८ ऐसें आठ ऐसें तौ गुणस्थानकरि अरहंतका स्थापन कह्या ॥ ३१ ॥

अब मार्गणाकरि कहै हैं—

गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३२॥

गतौ इन्द्रिये च काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने च।
संयमे दर्शने लेश्यायां भव्यत्वे सम्यक्त्वे संज्ञिनि आहारे ॥३२॥

अर्थ—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार ऐसें चौदह। तहां अरहंत सयोगकेवलीकैं तेरह गुणस्थान है तहां मार्गणा लगाइये तब गति च्यारिमें मनुष्यगति है, इन्द्रियजाति पांचमें पंचेन्द्रिय जाति है, काय छहमें त्रसकाय है—योग पंद्रहमें योग मनोयोग सत्य अनुभय ऐसे दोय बहुरि ऐसें ही वचनयोग दोय बहुरि काययोग औदारिक ऐसें पांच हैं अर समुद्घात करै ताकै औदारिकमिश्र कार्माण ये दोय मिलि सात हैं बहुरि वेद तीनूं हीका अभाव है, बहुरि कषाय पचीस सबहीका अभाव है, बहुरि ज्ञान आठमें केवलज्ञान है, संयम सातमें एक यथाख्यात है, दर्शन च्यारमें एक केवलदर्शन है लेश्या छहमें एक शुक्ललेश्या योगनिमित्त है बहुरि भव्य दोयमें एक भव्य है, सम्यक्त्व छहमें क्षायिक सम्यक्त्व है संज्ञी दोयमें संज्ञी है सो द्रव्यकरि है भावकरि क्षयोपशमरूप भाव मनका अभाव है आहारक अनाहारक दोयमें आहारक है सो नोकर्मवर्गणा अपेक्षा है कवलाहार

नांही है अर समुद्धात करै तो अनाहारक भी है ऐसैं दोऊ है। ऐसैं मार्गणा अपेक्षा अरहंतका स्थापन जाननां ॥ ३३ ॥

आगै पर्याप्तिकरि कहै हैं;—

आहारो य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो ॥ ३४ ॥

आहारः च शरीरं इन्द्रियमनआनप्राणभाषाः च।
पर्याप्तिगुणसमृद्धः उत्तमदेवः भवति अर्हन् ॥ ३४ ॥

अर्थ—आहार बहुरि शरीर इंद्रिय मन आनप्राण कहिये श्वासोच्छ्वास भाषा ऐसैं छह पर्याप्ति हैं, इस पर्याप्तिगुण करि समृद्ध कहिये युक्त उत्तमदेव अरहंत हैं ॥

भावार्थ—पर्याप्तिका स्वरूप ऐसा जो अन्य पर्यायतैं च्यवनकरि अन्य पर्यायमैं प्राप्त होय तब तीन समय उत्कृष्ट अंतरालमैं रहै पीछैं सैनी पंचेंद्रिय उपजै सो जहां तीन जातिकी वर्गणाका ग्रहण करै, आहारवर्गणा भाषावर्गणा मनोवर्गणा, ऐसैं ग्रहण करि आहारजातिकी वर्गणातैं तौ आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास ऐसैं च्यार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्त कालमैं पूरण करै पीछैं भाषाजाति मनोजातिकी वर्गणातैं अन्तर्मुहूर्त्तहीमैं भाषा मन पर्याप्ति पूर्ण करै ऐसैं छहू पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्तमैं पूर्ण करै है पीछैं आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहावै अर नोकर्मवर्गणाका ग्रहण करवोही करै, इहां आहार नाम कवलाहारका न जाननां। ऐसैं तेरहैं गुणस्थान भी अरहंतकै पर्याप्ति पूर्णही है ऐसैं पर्याप्तिकरि अरहंतका स्थापना है ॥ ३४ ॥

आगैं प्राणकरि कहै हैं;—

पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥३५॥

पंचापि इंद्रियप्राणाः मनोवचनकायैः त्रयो बलप्राणाः।
आनप्राणप्राणाः आयुष्कप्राणेन भवंति दशप्राणाः ॥३५॥

अर्थ–पाच तौ इद्रिय प्राण बहुरि मन वचन कायकरि तीन बलप्राण एक श्वासोच्छ्वास प्राण एक आयुप्राणकरि सहित दश प्राण हैं ॥

भावार्थ– ऐसैं दश प्राण कहे तिनिमैं तेरहैं गुणस्थान भावइद्रिय अर भावमनका क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नाहीं तिस अपेक्षा तौ कायबल वचनबल श्वासोच्छ्वास आयु ये च्यार प्राण कहिये अर द्रव्य अपेक्षा दशौंही कहिये, ऐसैं प्राणकरि अरहतका स्थापन है ॥ ३५ ॥

आगैं जीवस्थानकरि कहै हैं;—

मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो ॥ ३६ ॥

मनुजभवे पंचेंद्रियः जीवस्थानेषु भवति चतुर्दशे।
एतद्गुणगण युक्तः गुणमारूढो भवति अर्हन् ॥ ३६ ॥

अर्थ–मनुष्यभवविषै पंचेंद्रिय नामा चौदमां जीवस्थान कहिये जीवसमास ताविषैं इतने गुणनिके समूहकरि युक्त तेरमैं गुणस्थानकूं प्राप्त अरहत होय है ॥

भावार्थ–जीवसमास चौदह कहे हैं एकेंद्रिय सूक्ष्मबादर २ वेइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय ऐसैं विकलत्रय ३ पचेंद्रिय असैनी सैनी २ ऐसैं सात भये ते पर्याप्त अपर्याप्त करि चौदह भये तिनिमैं चौदहमा सैनी पंचेंद्रिय जीवस्थान अरहतकैहैं। गाथामैं सैनीका नाम न लिया अर मनुष्यभवका नाम लिया सो मनुष्य सैनीही होयहै असैनी न होय तातैं मनुष्य कहनेतैं सैनीही जानना ॥ ३६ ॥

ऐसैं गुणनिकरि सहित स्थापना अरहतका वर्णन किया।

आगैं द्रव्यकू प्रधानकरि अरहंतका निरूपण करै है,—

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं ।
सिंहाण खेल सेओ णत्थि दुगुंछा य दोसो य ॥ ३७ ॥

दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया ।
गोखीरसंखधवलं मंसं रुहिरं च सव्वंगे ॥ ३८ ॥

एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंत सुपरिमलामोयं ।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स ॥ ३९ ॥

जराव्याधिदुःखरहितः आहारनीहारवर्जितः विमलः ।
सिंहाणः खेलः स्वेदः नास्ति दुर्गन्धः च दोषः च ॥३७॥

दश प्राणाः पर्याप्तयः अष्टसहस्राणि च लक्षणानि भणितानि ।
गोक्षीरशंखधवलं मांसं रुधिरं च सर्वाङ्गे ॥ ३८ ॥

ईदृशगुणैः सर्वः अतिशयवान् सुपरिमलामोदः ।
औदारिकश्च कायः अर्हत्पुरुषस्य ज्ञातव्यः ॥ ३९ ॥

अर्थ—अरहंत पुरुषकै औदारिक काय ऐसा जानना—जरा बहुरि व्याधि रोग इनिसंबधी दु ख जामैं नाहीं है बहुरि आहारनीहारकरि वर्जित है बहुरि विमल कहिये मलमूत्रकरि रहित है बहुरि सिंहाण श्लेष्म खेल कहिये थूक पसेव बहुरि दुर्गंधी कहिये जुगुप्सा ग्लानिता दुर्गंधादि दोप जामैं नाहीं है ॥ ३७ ॥

दश तौ जामैं प्राण हैं ते द्रव्य प्राण जाननां बहुरि पूर्ण पर्याप्ति है बहुरि एक हजार आठ लक्षण जाकै कहे हैं बहुरि गोक्षीर कहिये कपूर अथवा चंदन तथा शख सारिखा जामैं सर्वांग धवल रुधिर मांस है ॥ ३८ ॥

ऐसे गुणनिकरि संयुक्त सर्वही देह अतिशयनिकरि सहित निर्मल है आमोद कहिये सुगंध जामें ऐसा औदारिक देह अरहंत पुरुषका जानना ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इहां द्रव्य निक्षेप नांही समझनां आत्मातैं जुदा ही देहकूं प्रधान करि द्रव्य अरहंतका वर्णन है ॥ ३७-३८-३९ ॥

ऐसैं द्रव्य अरहंतका वर्णन किया।

आगैं भावकूं प्रधानकरि वर्णन करै है;—

मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो ॥ ४० ॥

मदरागदोषरहितः कषायमलवर्जितः च सुविशुद्धः।
चित्तपरिणामरहितः केवलभावे ज्ञातव्यः ॥ ४० ॥

अर्थ—केवलभाव कहिये केवलज्ञानरूपही एक भाव होतें सतैं अरहंत ऐसा जानना—मद कहिये मान कषायतैं भया गर्व बहुरि राग द्वेष कहिये कषायनिके तीव्र उदयतैं होय ऐसी प्रीति अर अप्रीतिरूप परिणाम इनितैं रहित है, बहुरि पचीस कषायरूप मल ताका द्रव्य कर्म तथा तिनिके उदयतैं भया भावमल ताकरि वर्जित है याहीतैं अतिशयकरि विशुद्ध है निर्मल है, बहुरि चित्तपरिणाम कहिये मनका परिणमनरूप विकल्प ताकरि रहित है ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमरूप मनका विकल्प नाहीं है, ऐसा केवल एक ज्ञानरूप वीतरागस्वरूप भाव अरहंत जानना ॥ ४० ॥

आगैं भावहीका विशेष कहै है;—

सम्मद्दंसणि पस्सइ जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मत्तगुणविसुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो ॥४१॥

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धः भावः अर्हतः ज्ञातव्यः ॥ ४१ ॥

अर्थ—भावअरहंत—सम्यग्दर्शनकरि तौ आपकूं तथा सर्वकूं सत्तामात्रकरि देखै है ऐसा केवल दर्शन जाकै है बहुरि ज्ञानकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं जानै है ऐसा जाके केवल ज्ञान है बहुरि सम्यक्त्व गुणकरि विशुद्ध है क्षायिक सम्यक्त्व जाकै पाइये है ऐसा अरहंतका भाव जानना॥

भावार्थ—अरहंत होय है सो घातियाकर्मके नाशतैं होय है सो यह मोहकर्मके नाशतैं तौ मिथ्यात्व कषायके अभावतैं परमवीतरागपणा सर्वप्रकार निर्मलता होय है, बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके नाशतैं अनंतदर्शन अनंतज्ञान प्रगट होय है तिनकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं एकै काल प्रत्यक्ष देखैं जानैं है। तहां द्रव्य छह हैं-तिनिमैं जीवद्रव्य तौ संख्याकरि अनंतानंत है, बहुरि पुद्गल द्रव्य तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं, बहुरि आकाश द्रव्य एक है सो अनंतानंत प्रदेशी है ताकै मध्य सर्व जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेशमैं तिष्ठें हैं, बहुरि एक धर्मद्रव्य एक अधर्म द्रव्य ये दोऊ असंख्यात प्रदेशी हैं इनितैं आकाशके लोक अलोकका विभाग है तिस लोकहीमैं कालद्रव्यके असंख्यात कालाणु तिष्ठै हैं। इनि सर्व द्रव्यके परिणामरूप पर्याय हैं ते एक एक द्रव्यकै अनंतानंत हैं तिनिकूं कालद्रव्यका परिणाम निमित्त है ताके निमित्ततैं क्रमरूप होता समयादिक व्यवहारकाल कहावै है तिसकी गणनातैं अतीत अनागत वर्त्तमान द्रव्यनिके पर्याय अनंतानंत हैं तिनि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं अरहंतका दर्शन ज्ञान एकैं काल देखै जानैं है याही तैं अरहंतकूं सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहिये है॥

भावार्थ—ऐसैं अरहंतका निरूपण चौदह गाथानिमै किया तहां प्रथम गाथामैं नाम स्थापना द्रव्य भाव गुण पर्याय सहित च्यवन आगति सपत्ति ये भाव अरहंतकू जानावैं हैं ताका व्याख्यान नामादि कथनमैं सर्वही आयगया ताका संक्षेप भावार्थ लिखिये है—तहां प्रथम तौ गर्भकल्याणक होय है सो गर्भमैं आवतैं छह महीने पहली इन्द्रका प्रेर्या धनद जिस राजाकी राणीके गर्भमैं आवसी

शोभा सहित मणिसुवर्णमयी कोट खाई वेदी च्यारू दिशा च्यार दरवाजा मानस्तंभ नाट्यशाला वन आदि अनेक रचना करै, ताके मध्य सभामंडपमैं बारह सभा, तिनिमैं मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका देव देवी तिर्यंच तिष्ठैं, प्रभुके अनेक अतिशय प्रगट होय, सभा मंडपके वीचि तीन पीठ परि गंधकुटीकै वीचि सिंहासनपरि व कमलासन अंतरीक्ष प्रभु विराजै अर अष्ट प्रातिहार्ययुक्त होय वाणी खिरै ताकूं सुनि गणधर द्वादशांग शास्त्र रचैं ऐसैं केवलकल्याणकका उत्सव इन्द्र करै है पीछैं प्रभु विहार करै ताका बडा उत्सव देव करैं, पाछै केतेक कालपीछैं आयुके दिन थोरे रहैं तव योगनिरोध करि अघातिकर्मका नाशकरि मुक्ति पधारैं, तब पीछै शरीरका संस्कार इन्द्र उत्सवसहित निर्वाण कल्याण करै। ऐसैं तीर्थंकर पंच कल्याणककी पूजा पाय अरहंत कहाय निर्वाण प्राप्त होय है ऐसैं जाननां॥

आगै प्रव्रज्याका निरूपण करै है ताकूं दीक्षा कहिये ताकूं प्रथमही दीक्षाके योग्य स्थानकविशेषकूं तथा दीक्षासहित मुनि जहां तिष्ठै ताका स्वरूप कहै है,—

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा॥४२॥
सवसासत्तं तित्थं वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह वेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति॥ ४३ ॥
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छन्ति॥ ४४ ॥

१—संस्कृत प्रतिमें 'सवसा' 'सत' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत स्ववशा 'सत्त्वं' इस प्रकार लिखी हैं।

२—वचचइदालत्तय इसके भी दो ही पद किये हैं 'वच.' 'चैत्यालय' इस प्रकार।

शून्यगृहे तरुमूले उद्याने तथा श्मशानवासे वा।
गिरिगुहायां गिरिशिखरे वा भीमवने अथवा वसतौ वा ॥
स्ववशासक्तं तीर्थं वचश्चैत्यालयत्रिकं च उक्तैः।
जिनभवनं अथ वेध्यं जिनमार्गे जिनवरा विदन्ति ॥ ४३ ॥
पंचमहाव्रतयुक्ताः पंचेन्द्रियसंयताः निरपेक्षाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ताः मुनिवरवृषभाः नीच्छन्ति ॥ ४४ ॥

अर्थ—सूना घर वृक्षका मूल कोटर, उद्यान वन, मसाण भूमि, गिरिकी गुफा, गिरिका शिखर, भयानकवन, अथवा वस्तिका, इनविषैं दीक्षासहित मुनि तिष्टैं ये दीक्षायोग्य स्थान हैं ॥

बहुरि स्ववशासक्त कहिये स्वाधीन मुनिनिकरि आसक्त जे क्षेत्र तिनिमैं मुनिवसैं, बहुरि जहातैं मुक्ति पधारे ऐसे तो तीर्थस्थान बहुरि वच चैत्य आलय ऐसा त्रिक जे, पूर्वं उक्त कहिये आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी मुनि अरहंत सिद्ध स्वरूप तिनिका नामके अक्षररूप मंत्र तथा तिनिकी आज्ञारूपवाणी सो तो वच, अर तिनिकै आकार धातु पाषाणकी प्रतिमा स्थापन सो चैत्य, अर सो प्रतिमा तथा अक्षर मंत्र वाणी जामैं स्थापिये ऐसा आलय मंदिर यंत्र पुस्तक ऐसा वच चैत्य आलयकात्रिक, बहुरि अथवा जिनभवन कहिये अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर ऐसा आयतनादिक तिनिकै समानही तिनिका व्यवहार, ताहि जिनमार्गविषैं जिनवर देव वेध्य कहिये दीक्षासहित मुनिनिकै ध्यावनेंयोग्य चिंतवन करनेयोग्य कहे है ॥

बहुरि जे मुनिवृषभ कहिये मुनिनिमैं प्रधान हैं ते कहे ते शून्यगृहादिक तथा तीर्थ, नाम मंत्र, स्थापनरूप मूर्ति, अर तिनिका आलय मंदिर, पुस्तक, अर अकृत्रिम जिनमंदिर, तिनिकूं णिइच्छंति कहिये निश्चयकरि इष्ट करैं हैं तिनिमैं सूना घर आदिकमैं वसैं है अर तीर्थ आदिका ध्यान चिंतवन करैं हैं अर अन्यकूं तहां दीक्षा दे हैं। इहां 'णिइच्छंति' का

पाठांतर 'णइच्छंति' ऐसा भी है ताका काकोक्तिकरि तौ ऐसा अर्थ होय है "जो कहा न इष्ट करै है करैही है।" अर एक टिप्पणीमैं ऐसा अर्थ किया है जो ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक तिनकूं स्ववशासक्त कहिये स्वेच्छाचारी भ्रष्ट आचारी तिनिकरि आसक्त होय युक्त होय तौ ते मुनिप्रधान इष्ट न करै तहां न वसैं। कैसे हैं ते मुनिप्रधान—पांच महाव्रतनिकरि सयुक्त हैं, बहुरि कैसे हैं—पाच इन्द्रियनिका है भले प्रकार जीतनां जिनिकैं, बहुरि कैसे हैं—निरपेक्ष हैं काहू प्रकारकी वांछाकरि मुनिन भये है, बहुरि कैसे हैं—स्वाध्याय अर ध्यानकरि युक्त हैं कई तौ शास्त्र पढैं पढावैं हैं कई धर्म शुक्लध्यान करैं है।

भावार्थ—इहां दीक्षायोग्य स्थानक तथा दीक्षासहित दीक्षा देनेवाला मुनिका तथा तिनिके चिंतवन योग्य व्यवहारका स्वरूप कह्या है ॥ ४२-४३-४४ ॥

आगैं प्रव्रज्याका स्वरूप कहै हैं,—

गिहगंथमोहमुक्का वावीसपरीषहा जियकषाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४५ ॥

गृहग्रंथमोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीषहा जितकषाया।
पापारंभविमुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४५ ॥

अर्थ—गृह कहिये घर अर ग्रंथ कहिये परिग्रह इनि दोऊनितैं तथा तिनिका मोह ममत्व इष्ट अनिष्टबुद्धि तातैं रहित हैं, बहुरि बावीस परीषहनिका सहना जामैं होय है, बहुरि जीते है कषाय जामैं, बहुरि पापरूप जो आरभ ताकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या जिनेश्वर देव कही है ॥

भावार्थ—जैन दीक्षामैं कछुभी परिग्रह नाहीं, सर्व संसारका मोह नांही, बाईस परिषहनिका जामैं सहनां, कषायनिका जीतना पापारंभका जामैं अभाव। ऐसी दीक्षा अन्य मतमैं नांही ॥ ४५ ॥

आगैं फेरि कहै हैं—

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं।
कुदाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४६॥

धनधान्यवस्त्रदानं हिरण्यशयनासनादि छत्रादि।
कुदानविरहरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४६ ॥

अर्थ—धन धान्य वस्त्र इनिका दान बहुरि हिरण्य कहिये रूपा सोना आदिक बहुरि शय्या आसन आदि शब्दतैं छत्र चामरादिक बहुरि क्षेत्र आदिक ये कुदान ताका देना ताकरि रहित ऐसी प्रव्रज्या कही है॥

भावार्थ—अन्यमती केई ऐसी प्रव्रज्या कहैं हैं—जो गऊ धन धान्य वस्त्र सोना रूपा शयन आसन छत्र चामर भूमि आदिका दान करना सो प्रव्रज्या है ताका या गाथामैं निषेध किया है—जो प्रव्रज्या तौ निर्ग्रंथस्वरूप है जो धन धान्य आदि राखि दान करै ताकै काहे की प्रव्रज्या? ये तौ गृहस्थका कर्म है. बहुरि गृहस्थकै भी इनि वस्तुनिके दानतैं विशेष पुण्यतौ नाही उपजै है जातै पाप बहुत है सो पुण्य अल्प है सो बहुत पाप कार्य तौ गृहस्थकूं करनेंमैं लाभ नाही जामैं बहुत लाभ होय सो ही करनां योग्य है, दीक्षा तौ इनि वस्तुनिकरि रहित ही जाननां॥४६

आगैं फेरि कहै हैं,—

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदाअलद्धिलद्धिसमा।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥

शत्रौ मित्रे च समा प्रशंसानिन्दाऽलब्धिलब्धिसमा।
तृणे कनके समभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता॥ ४७॥

अर्थ—बहुरि जामैं शत्रु मित्रविषै समभाव है, बहुरि प्रशंसा निंदा विषैं लाभ अलाभविषैं समभाव है बहुरि तृणकंचन विषैं समभाव है ऐसी प्रव्रज्या कही है॥

भावार्थ–जैनदीक्षाविषैं रागद्वेषका अभाव है जातैं वैरी मित्र निंदा प्रशंसा लाभ अलाभ तृण कंचनविषै तुल्य भाव है जैनके मुनिनिकैं ऐसी दीक्षा है ॥ ४७ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं,—

उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा ।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

उत्तममध्यमगेहे दरिद्रे ईश्वरे निरपेक्षा ।
सर्वत्र गृहीतपिंडा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—उत्तम गेह कहिये शोभासहित ऐसा राजमंदिरादिक अर मध्यम गेह कहिये शोभारहित सामान्य जनका घर इनि विषैं तथा दरिद्री, धनवान इनिविषैं निरपेक्ष कहिये जामैं अपेक्षा नाहीं ऐसी सर्व जायगां ग्रह्या है पिंड कहिये आहार जानैं ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—मुनि दीक्षासहित होय है अर आहार लेनेकूं जाय तब ऐसी न विचारै जो बडे घर जानां अथवा छोटे घर जाना तथा दरिद्रीके जाना धनवानकै जाना ऐसी वांछा रहित निर्दोष आहारकी योग्यता होय तहां सर्वत्र ही जायगां योग्य आहार ले, ऐसी दीक्षा है ॥ ४८ ॥

आगै फेरि कहै हैं;—

णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा ।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४९॥

निर्ग्रंथा निःसंगा निर्मानाशा अरागा निर्द्वेषा ।
निर्ममा निरहंकारा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४९ ॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या-निर्ग्रंथस्वरूप है परिग्रहतैं रहित है, बहुरि कैसी है–निःसंग कहिये स्त्री आदि परद्रव्यका संग मिलाप जामैं नाहीं है, बहुरि निर्माना कहिये मान कषाय जामै नांहीं है मदरहित है

बहुरि कैसी है निराशा है जामें आशा नांहीं है संसारभोगकी आशारहित है, बहुरि कैसी है—अराग कहिये रागका जामैंअभाव है संसार देह भोगसूं जामैं प्रीति नांही है, बहुरि कैसी है निर्दोष कहिये काहूसूं द्वेष जामैं नांहीं है, बहुरि कैसी है निर्ममा कहिये जामैं काहूंसूं ममत्व भाव नांही है, बहुरि कैसी है निरहंकारा कहिये अहंकाररहित है जो कछू कर्मका उदय है सो होय है ऐसैं जाननें तैं परद्रव्यमैं कर्त्तापणांका अहंकार नाहीं है अपना स्वरूपका ही जामैं साधन है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती भेष पहरि तिलमात्र दीक्षा मानैं हैं सो दीक्षा नाहीं है, जैनदीक्षा ऐसी कही है ॥ ४९ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५०॥

निःस्नेहा निर्लोभा निर्मोहा निर्विकारा निष्कलुषा ।
निर्भया निराशभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५०॥

अर्थ—बहुरि प्रव्रज्या ऐसी कही है—निःस्नेही कहिये जामैं काहूँसूं स्नेह नाहीं परद्रव्यसूं रागादिरूप सचिक्कणभाव जामैं नाही है बहुरि कैसी है निर्लोभा कहिये जामैं कछु परद्रव्यके लेनेकी वाछा नाहीं है, बहुरि कैसी है निर्मोहा कहिये जामैं काहू परद्रव्यसूं मोह नाहीं है भूलिकरि भी परद्रव्यमैं आत्मबुद्धि नाही उपजै है, बहुरि कैसी है निर्विकार है बाह्य अभ्यंतर विकारसूं रहित है बाह्य शरीरकी चेष्टा तथा वस्त्रभूषणादिकका तथा अंग उपागका विकार जामैं नाहीं है, अतरंग काम क्रोधादिकका विकार जामैं नांही है, बहुरि कैसी है नि.कलुषा कहिये मलिनभावरहित है आत्माकू कषाय मलिन करै है सो कषाय जामैं नाहीं है बहुरि कैसी है निर्भया कहिये काहू प्रकारका भय जामै नाही है,

आपका स्वरूपकूं अविनाशी जानै ताके काहेका भय होय, बहुरि कैसी है निराशभाव कहिये जामैं काहू प्रकार परद्रव्यकी आशाका भाव नाहीं है आशा तौ किछू वस्तुकी प्राप्ति न होय ताकी लगी रहै है अर जहां परद्रव्यकूं अपनां जान्यां नांही अर अपने स्वरूपकी प्राप्ति भई तब किछू पावना न रह्या तब काहेकी आशा होय। प्रव्रज्या ऐसी कही है॥

भावार्थ—जैनदीक्षा ऐसी है, अन्यमतमें स्वरूप द्रव्यका भेदज्ञान नांही है तिनिकै ऐसी दीक्षा काहेतैं होय॥ ५०॥

आगैं दीक्षाका बाह्य स्वरूप कहै हैं;—

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया॥५१॥

यथाजातरूपसदृशी अवलंबितभुजा निरायुधा शांता।
परकृतनिलयनिवासा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता॥ ५१॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—यथाजातरूपसदृशी कहिये जैसा जन्म्या बालकका नग्न रूप होय तैसा नग्न रूप जामैं है, बहुरि कैसी है अवलंबितभुजा कहिये लंबायमान किये हैं भुजा जामैं बाहुल्य अपेक्षा कायोत्सर्ग खड़ा रहना जामैं होय है, बहुरि कैसी है निरायुधा कहिये आयुधनिकरि रहित है, बहुरि शांता कहिये अंग उपांगके विकार रहित शांत मुद्रा जामैं होय है, बहुरि कैसी है परकृतनिलयनिवासा कहिये परका किया निलय जो वसतिका आदिक तामैं है निवास जामैं आपकूं कृत कारित अनुमोदना मन वचन काय करि जामैं दोष न लाग्या होय ऐसी परका करी वसतिका आदिकमैं वसना होय है ऐसी प्रव्रज्या कही है॥

भावार्थ—अन्यमती केई बाह्य वस्त्रादिक राखैं हैं केई आयुध राखैं हैं कई सुखनिमित्त आसन चलाचल राखैं हैं केई उपाश्रय आदि वसनेंका निवास बनाय तामैं वसैं हैं अर आपकूं दीक्षा सहित मानैं हैं तिनिकै भेषमात्र है, जैनदीक्षातौ जैसी कही तैसीही है॥ ५१॥

आगै फेरि कहै हैं—

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंक्कारवज्जिया रुक्खा ।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५२॥

उपशमक्षमदमयुक्ता शरीरसंस्कारवर्जिता रूक्षा ।
मदरागदोषरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५२॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या उपशमक्षमादमयुक्ता कहिये उपशमतौ मोहकर्मका उदयका अभाव रूप शांतपरिणाम अर क्षमा क्रोधका अभाव रूप उत्तमक्षमा अर दम कहिये इंद्रियनिकूं विषयनिमैं न प्रवर्त्तावना इनि भावनिकरि युक्त है बहुरि कैसी है शरीरसंस्कारवर्जिता कहिये स्नानादिक करि शरीरका सवारना, ताकरि रहित है, बहुरि रूक्ष कहिये तेलादिकका मर्दन शरीरकै जामैं नाही है, बहुरि कैसी है मद राग द्वेष इनिकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमतके भेषी क्रोधादिकरूप परिणमै है शरीरकूं सवारि सुंदर राखैं हैं इन्द्रियनिके विषय सेवैं है अर आपकूं दीक्षासहित मानै हैं सो वै तो गृहस्थतुल्य है अतीत कहाय उलटा मिथ्यात्व दृढ करैं है, जैनदीक्षा ऐसी है सो सत्यार्थ है याकूं अंगीकार करैं ते साचे अतीत हैं ॥ ५२ ॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता ।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५३ ॥

विपरीतमूढभावा प्रणष्टकर्माष्टा नष्टमिथ्यात्वा ।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५३ ॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या-विपरीत भया है दूरि भया है मूढभाव कहिये अज्ञानभाव जाकै, अन्यमती आत्माका स्वरूप सर्वथा एका-

तर्करि अनेक प्रकार न्यारे न्यारे कहि वाद करें हैं तिनिकै आत्माका स्वरूपविषैं मूढभाव है जैनी मुनिनिकै अनेकांततैं साध्या हुवा यथार्थ-ज्ञान है तातैं मूढभाव नाहीं है, बहुरि कैसी है, प्रणष्ट भया है मिथ्यात्व-जामैं जैनदीक्षामैं अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप मिथ्यात्वका अभाव है याहीतैं सम्यक्त्वनामा गुणकरि विशुद्ध है निर्मल है सम्यक्त्वसहित दीक्षामैं दोष नाही रहै है; ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥ ५३ ॥

आगैं फेरि कहै है,—

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा ।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया ॥५४॥

जिनमार्गे प्रव्रज्या षट्संहननेषु भणिता निर्ग्रंथा ।
भावयंति भव्यपुरुषाः कर्मक्षयकारणे भणिता ॥५४॥

अर्थ—प्रव्रज्या है सो जिनमार्गविषैं छह संहननवाले जीवकै होनी कह्या है निर्ग्रंथस्वरूप है सर्वपरिग्रहतैं रहित यथाजातस्वरूप है याकूं भव्यपुरुष हैं ते भावैं हैं ऐसी प्रव्रज्या कर्मका क्षयका कारण कही है ॥

भावार्थ—वज्र ऋषभनाराच आदि छह शरीरके संहनन कहे हैं तिनिमैं सर्वहीमैं दीक्षा होना कह्या है सो जे भव्यपुरुष हैं ते कर्मक्षयका कारण जानि याकूं अंगीकार करौ। ऐसा नाहीं है—जो दृढ संहनन वज्रऋषभ आदिक हैं तिनिहीमैं होय अर स्फाटिक संहननमैं न होय है, ऐसी निर्ग्रंथरूप दीक्षा स्फाटिक संहननविषैं भी होय है ॥ ५४ ॥

आगैं फेरि कहै है;—

तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरगंथसंगहो णत्थि ।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं ॥५५॥

तिलतुषमात्रनिमित्तसमः बाह्यग्रंथसंग्रहः नास्ति ।
प्रव्रज्या भवति एषा यथा भणिता सर्वदर्शिभिः ॥५५॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याविषैं तिलके तुपमात्रका संग्रहका कारण ऐसा भावरूप इच्छानामा अंतरंग परिग्रह बहुरि तिस तिलके तुस मात्र बाह्य परिग्रहका संग्रह नाही ऐसी प्रव्रज्या जैसैं सर्वज्ञदेव कही है सो ही है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नाहीं है ऐसा नियम जाननां। श्वेतांवर आदि कहैं हैं जो अपवादमार्गमैं वस्त्रादिकका संग्रह साधुकै कह्या है सो सर्वज्ञके सूत्रमैं तौ कह्या है नांही तिननैं कल्पित सूत्र बनाये है तिनिमै कह्या है सो कालदोष है ॥

आगै फेरि कहै हैं;—

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसेहि णिच अत्थेइ।
सिल कट्टे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ ॥ ५६ ॥

उपसर्गपरीषहसहा निर्जनदेशे हि नित्यं तिष्ठति।
शिलायां काष्ठे भूमितले सर्वाणि आरोहति सर्वत्र ॥५६॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—उपसर्ग कहिये देव मनुष्य तिर्यंच अचेतनकृत उपद्रव अर परीषह कहिये दैवकर्मसंयोगतैं आये जे बाईस परीषह तिनिकूं समभावनितैं सहना जामै ऐसी प्रव्रज्यासहित मुनि हैं ते जहां अन्य जन नाही ऐसा निर्जन वनादिक प्रदेश तहां सदा तिष्टै हैं, तहां भी शिलातल काष्ठ भूमितलविषैं तिष्टैं इनि सर्वही प्रदेशनिकूं आरोहणकरि बैठें सोवै, सर्वत्र कहनेतैं वनमैं रहैं अर किंचित्काल नगरमै रहैं तौ ऐसेही ठिकानैं रहैं ॥

भावार्थ—जैनदीक्षावाले मुनि उपसर्गपरीषहमै समभाव रहैं अर जहां सोवै बैठे तहां निर्जन प्रदेशमै शिला काष्ठ भूमि ही विषै बैठे सोवै, ऐसा नाही जो अन्यमतके भेषीकी ज्यों स्वच्छन्द प्रमादी रहैं, ऐसैं जानना ॥ ५६ ॥

आगैं अन्य विशेष कहै हैं;—

पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५७ ॥

पशुमहिलापंढसंगं कुशीलसंगं न करोति विकथाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५७ ॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याविषै पशु तिर्यंच महिला (स्त्री) पंढ (नपुंसक) इनिका संग तथा कुशील (व्यभिचारी) पुरुषका संग न करै है बहुरि स्त्री राजा भोजन चोर इत्यादिककी कथा ते विकथा तिनिकूं न करै, तौ कहा करै ? स्वाध्याय कहिये शास्त्र जिनवचननिका पठन पाठन अर ध्यान कहिये धर्म शुक्ल ध्यान इनिकरि युक्त रहै, प्रव्रज्या ऐसी जिनदेव कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा लेकरि कुसंगति करै विकथादिक करै प्रमादी रहै तौ दीक्षाका अभाव होजाय यातैं कुसंगति निषिद्ध है अन्य भेषकी ज्यों यह भेष नाहीं है ये मोक्षमार्ग है अन्य संसारमार्ग हैं ॥ ५७ ॥

आगैं फेरि विशेष कहै हैं,—

तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५८ ॥

तपोव्रतगुणैः शुद्धा संयमसम्यक्त्वगुणविशुद्धा च।
शुद्धा गुणैः शुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिताः ॥ ५८ ॥

अर्थ—प्रव्रज्या जिनदेव ऐसी कही है—कैसी है-तप कहिये बाह्य अभ्यंतर बारह प्रकार अर व्रत कहिये पांच महाव्रत अर गुण कहिये इनिके भेदरूप उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध है, बहुरि कैसी है-संयम कहिये इन्द्रिय मनका निरोध षट्कायका जीवनिकी रक्षा सम्यक्त्व कहिये तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन बहुरि इनिका

गुण कहिये मूलगुण तिनिकरि शुद्ध अतीचार रहित निर्मल है, बहुरि जे प्रव्रज्याके गुण कहे तिनि करि शुद्ध है, भेषमात्र ही नाहीं; ऐसी शुद्ध प्रव्रज्या कही है इनि गुणनि विना प्रव्रज्या शुद्ध नांही है ॥

भावार्थ—तप व्रत सम्यक्त्व इनकरि सहित अर इनिके मूलगुण अर अतीचारनिका सोधना जामैं होय ऐसी दीक्षा शुद्ध है, अन्य वादी तथा श्वेतांबरादि जैसैं तैसैं कहैं हैं सो दीक्षा शुद्ध नाहीं ॥ २५ ॥

आगैं प्रव्रज्याका कथनकूं संकोचै है,—

एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविसुद्धसम्मत्ते ।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं ॥ ५९ ॥

एवं [1]आयतनगुणपर्याप्ता बहुविशुद्धसम्यक्त्वे ।
निर्ग्रंथे जिनमार्गे संक्षेपेण यथाख्यातम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार आयतन जो दीक्षाका ठिकानां निर्ग्रंथ मुनि ताके गुण जे ते हैं तिनकरि पज्जत्ता कहिये परिपूर्ण, बहुरि अन्य भी जे बहुत दीक्षामैं चाहिये ते गुण जामैं होय ऐसी प्रव्रज्या जिनमार्गमें जैसैं ख्यात कहिये प्रसिद्ध है तैसैं संक्षेपकरि कही कैसा है जिनमार्ग-विशुद्ध है सम्यक्त्व जामैं अतीचार रहित सम्यक्त्व जामैं पाइये है बहुरि कैसा है जिनमार्ग—निर्ग्रंथरूप है जामैं बाह्य अंतर परिग्रह नाहीं है ॥

भावार्थ—ऐसी पूर्वोक्त प्रव्रज्या निर्मल सम्यक्त्वसहित निर्ग्रंथरूप जिनमार्गविषै कही है, अन्य नैयायिक वैशेषिक सांख्य वेदान्त मीमांसक पातंजलि बौद्ध आदिक मतमैं नाही है, बहुरि कालदोषतैं जैनमततैं च्युत भये अर जैनी कहावैं ऐसे श्वेतांबर आदिक तिनिमैं भी नाही है ॥ ५९॥

ऐसैं प्रव्रज्याका स्वरूपका वर्णन किया ।

आगैं बोधपाहुडकूं संकोचता संता आचार्य कहै है;—

---

(१) संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आयतन' इसकी संस्कृत 'आत्मत्व' इस प्रकार है ।

रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं ॥ ६० ॥

रूपस्थं शुद्धयर्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम् ।
भव्यजनबोधनार्थं षट्कायहितंकरं उक्तम् ॥ ६० ॥

अर्थ—शुद्ध है अतरंग भावरूप अर्थ जामैं ऐसा रूपस्थ कहिये बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्गविषैं जिनदेव कह्या है तैसा छह कायके जीवनिका हित करनेंवाला मार्ग भव्यजीवनिके सबोधनकै अर्थि कह्या है ऐसा आचार्यनैं अपना अभिप्राय प्रकट किया है ॥

भावार्थ—इस बोधपाहुडविषैं आयतन आदि प्रव्रज्यापर्यन्त ग्यारह स्थल कहे तिनिका बाह्य अतरंग स्वरूप जैसैं जिनदेवनै जिनमार्गमैं [illegible]ा तैसैं कह्या है। कैसा है यह रूप—छह कायके जीवनिका हित [illegible]नेंवाला है एकेंद्रिय आदि असैंनी पर्यन्त जीवनकी रक्षाका जामैं अधिकार है बहुरि सैंनी पंचेंद्रिय जीवनकी रक्षाभी करावै है अर मोक्ष-मार्गका उपदेश करि ससारका दुःख मेटि मोक्षकूं प्राप्त करै है ऐसा मार्ग भव्यजीवनिके संबोधनेंके अर्थि कह्या है, जगतके प्राणी अनादितैं लगाय मिथ्यामार्गमैं प्रवर्त्ति ससारमैं भ्रमैं हैं सो दु ख मेटनेकूं आयतन आदि ग्यारह स्थानक धर्मके ठिकानेंका आश्रय लेहैं ते ठिकाने अन्यथा स्वरूप स्थापि तिनितैं सुख लिया चाहैं है सो यथार्थविना सुख कहा तातैं आचार्य दयालु होय जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसैं आयतन आदिकका स्वरूप सक्षेप करि यथार्थ कह्या है ताकू वाचो पढ़ो धारण करो याकी श्रद्धा करो इनि स्वरूप प्रवर्त्तो यातैं वर्तमानमैं सुखी रहो अर आगामी संसार दु खतै छूटि परमानन्दस्वरूप मोक्षकूं प्राप्त होहू ऐसा आचार्यका कह-नेंका अभिप्राय है।

इहां कोई पूछै जो—इस बोधपाहुडमैं धर्मव्यवहारकी प्रवृत्तिके ग्यारह-स्थानक कहे तिनिका विशेषण किया जो छह कायके जीवनिके हितकें

करनेवाले ये हैं सो अन्यमती इनिकूं अन्यथा स्थापि प्रवृत्ति करैं हैं ते हिंसारूप हैं अर जीवनिके हित करनेंवाले नाही तहां ये ग्यारह ही स्थानक संयमी मुनि अर अरहंत सिद्धहीकूं कहे तहां ये तौ छह कायके जीवनिके हित करनेवाले ही हैं तातैं पूज्य हैं यह तौ सत्य है, अर जहां वसैं ऐसै आकाशके प्रदेशरूप क्षेत्र तथा पर्वतकी गुफा वनादिक तथा अकृत्रिम चैत्यालय ये स्वयमेव वणि रहे है तिनिकू भी प्रयोजन अर निमित्त विचार उपचारमात्र करि छह कायके जीवनिके हित करनेवाले कहिये तौ विरोध नाही जाते ये प्रदेश जड है ते बुद्धिपूर्वक काहू का बुरा भला करैं नाही तथा जडकू सुख दुख आदि फलका अनुभव नाही तातैं ये भी व्यवहार करि पूज्य है जातैंअरहंतादिक जहां तिष्ठैं वै क्षेत्र निवास आदिक प्रशस्त है तातै तिनि अरहंतादिकै आश्रयतैं ये क्षेत्रादिकभी पूज्य हैं बहुरि गृहस्थ जिनमंदिर बनावै वसतिका प्रतिमा बनावे प्रतिष्ठा पूजा करै तामैं तो छह कायके जीवनिकी विराधना होय है सो ये उपदेश अर प्रवृत्तिकी बाहुल्यता कैसैं हैं ।-

ताका समाधान ऐसा जो—गृहस्थ अरहंत सिद्ध मुनिनिका उपासक है सो ये जहां साक्षात् होय तहां तौ तिनिकी वंदना पूजना करैही है, अर ये साक्षात् नाहीं तहां परोक्ष संकल्पमैं लेय वंदना पूजना करै तथा तिनिका वसनेका क्षेत्र तथा ये मुक्तिप्राप्त भये तिस क्षेत्रमैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयमैं तिनिका संकल्प करि वंदै पूजै यामै अनुराग विशेष सूचै है, बहुरि तिनिकी मुद्रा प्रतिमा तदाकार बनावै अर तिसकू मंदिर बनाय प्रतिष्ठा करि स्थापैं तथा नित्य पूजन करै यामैं अत्यंत अनुराग सूचै है तिस अनुरागतैं विशिष्ट पुण्यबंध होय है अर तिस मंदिरमैं छह कायके जीवनिका हितकी रक्षाका उपदेश होय है तथा निरंतर सुननेंवाला धारनेंवालाकै अहिंसा धर्मकी श्रद्धा दृढ होय है तथा तिनिकी तदाकार प्रतिमा देखनेवालाकै शांत भाव होय है ध्यानकी मुद्राका स्वरूप जान्या जाय है वीतराग धर्मतैं अनुराग विशेष होनें तै पुण्यबंध होय है तातैं इनिकूं भी छह कायके जीवनिके हितके करनेवाले उपचार करि कहिये,

अर जिनमंदिर वस्तिका प्रतिमा बनावै तामैं तथा पूजा प्रतिष्ठा करनेमैं आरंभ होय है तामैं किछू हिंसा भी होय है सो ऐसा आरंभ तो गृहस्थका कार्य है यामैं गृहस्थकू अल्प पाप कह्या है पुण्य बहुत कह्या है जातैं गृहस्थकी पदवीमैं न्यायकार्य करि न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना रहनेकूं जायगा बनावना विवाहादिक करना यत्नपूर्वक आरंभ करि आहारादिक आप करि अर खाना इत्यादिक कार्यनिमैं यद्यपि हिंसा होयहै तौऊ गृहस्थकू इनिका महापाप न कहिये, गृहस्थकै तौ महापाप मिथ्यात्वका सेवना अन्याय चोरी आदिकरि धन उपार्जना त्रस जीवनिकूं मारि माम आदि अभक्ष्य खाना परस्त्री सेवा करना ये महापाप है, अर गृहस्थाचार छोड़ि मुनि होय तब गृहस्थ के न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं, अर मुनिकै भी आहार आदिकी प्रवृत्तिमैं किछू हिंसा होय है ताकरि मुनिकूं हिंसक न कहियें तैसैं ही गृहस्थकै न्यायपूर्वक पदवीयोग्य आरंभके कार्यनिमैं अल्प पापही कहिये, तातैं जिनमंदिर वस्तिका पूजा प्रतिष्ठाके कार्यनिमैं आरंभका अल्प पापहै, अर मोक्षमार्गमैं प्रवर्तनेंवालेनितैं अति अनुराग होयहै अर तिनिकी प्रभावना करैहै तिनिकू आहारदानादिक दे हैं तिनिका वैयावृत्त्यादि करे है सो ये सम्यक्त्वका अंग हैं अर महान पुण्यका कारण है तातैं गृहस्थकू सदा करना उचित है, अर गृहस्थ होय ये कार्य न करै तौ जानिये याकै धर्मानुराग विशेष नाहीं।

इहां फेरि कोई कहै जो गृहस्थकूं सरै नांही ते तौ करैही करै अर धर्मपद्धतिमैं आरंभका कार्यकरि पाप क्यों मिलावै सामायिक प्रतिक्रमण प्रोषध आदिकरि पुण्य उपजावै। ताकूं कहिये—जो तुम ऐसैं कहो जहां तुम्हारे परिणामकी तौ ऐसी जाति नाही, केवल बाह्य क्रिया मात्रमैं ही पुण्य समझौ हौ बाह्य बहु आरंभी परिग्रहीका मन सामायिक प्रतिक्रमण आदि निरारंभ कार्यनिमैं विशेष लागै नाही है यह अनुभव गोचर है, सो तेरै अपने भावनिका अनुभव नाही केवल बाह्य सामायिकादि निरारंभ कार्यका भेषधारि बैठैतौ किछू विशिष्ट पुण्य है नाही शरीरादिक बाह्य वस्तु तौ जड हैं केवल जडकी क्रिया फल तौ आत्माकूं लागै

नाही अर अपनें भाव जेता असा बाह्य क्रियामैं लागै तेता अंसा शुभाशुभ फल आपकूं लागै है, ऐसै विशिष्ट पुण्य तौ भावनिकै अनुसार है, बहुरि आरंभी परिग्रहीका भाव तौ पूजाप्रतिष्ठादिक बड़े आरभमैं ही विशेष अनुराग सहित लागै है, अर जो गृहस्थाचारके बड़े आरभतैं विरक्त होगा सो त्याग करि अपनी पदवी बधावैगा तब गृहस्थाचारके बड़े आरंभ छोडैगा तब ताही रीति बडे आरंभ धर्म प्रवृत्तिकेभी पदवीकी रीति घटावैगा मुनि होगा तब सर्वही आरंभ काहेकूं करैगा, तातैं मिथ्यादृष्टि बाह्य बुद्धि जे बाह्य कार्यमात्रही पुण्य पाप मोक्षमार्ग समझै है तिनिका उपदेश सुनि आपकू अज्ञानी न होना, पुण्य पापका बंधमैं शुभाशुभ भावही प्रधान हैं अर पुण्य पाप रहित मोक्षमार्ग है तामैं सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्म परिणाम प्रधान हैं अर धर्मानुराग है सो मोक्षमार्गका सहकारी है अर धर्मानुरागके तीव्र मंदके भेद बहुत हैं तातैं अपनें भावनिकूं यथार्थ पहिचानि अपनी पदवी सामर्थ्य पहचानि समझिकरि श्रद्धानज्ञान प्रवृत्ति करनी अपना भला बुरा अपने भावनिकै आधीन है बाह्य परद्रव्य तौ निमित्त मात्र है, उपादान कारण होय तौ निमित्तभी सहकारी होय अर उपादान न होय तौ निमित्त कछूभी न करै है, ऐसैं इस बोधपाहुडका आशय जाननां। याकू नीकैं समझि आयतनादिक जैसैं कहे तैसैं अर इनिका व्यवहारभी बाह्य तैसाही अर चैत्यगृह प्रतिमा जिनबिंब जिनमुद्रा आदि धातु पाषाणादिककाभी व्यवहार तैसाही जानि श्रद्धान करना अर प्रवृत्ति करनीं। अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाडि प्रवृत्ति करैं हैं तिनिकू बुद्धिकल्पित जानि उपासना न करनीं। इस द्रव्य व्यवहारका प्ररूपण प्रव्रज्याके स्थलमै आदितैं दूसरी गाथामैं बिंब[1]चैत्यालयत्रिक अर जिनभवन ये भी मुनिनिके ध्यावनें योग्य हैं ऐसै कह्या है सो जे गृहस्थ इनिकी प्रवृत्ति करै हैं तब ते मुनिनिकै ध्यावनें योग्य होय हैं तातैं जिनमन्दिर प्रतिमा पूजा प्रतिष्ठा आदिकके सर्वथा निषेध करनेवाले सर्वथा एकान्तीकी ज्यौं मिथ्यादृष्टि हैं, तिनिकी संगति न करनीं ॥

१ गाथारमैं त्रिबकी जगह 'वच' ऐसा पाठ है ॥

आगैं आचार्य इस बोधपाहुडका कहना अपनी बुद्धिकल्पित नाहीं है पूर्वाचार्यनिके अनुसार कह्या है ऐसैं कहै हैं।

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥६१॥

शब्दविकारो भूतः भाषासूत्रेषु यज्जिनेन कथितम्।
तत् तथा कथितं ज्ञातं शिष्येण च भद्रबाहोः ॥६१॥

अर्थ—शब्दका विकारतैं उपज्या ऐसा अक्षररूप परिणया भाषासूत्रनिविषै जिनदेवनैं कह्या सोही श्रवणमैं अक्षररूप आया बहुरि जैसा जिनदेव कह्या तैसा परंपराकरि भद्रबाहुनाम पंचम श्रुतकेवलीनैं जान्या अपने शिष्य विशाखाचार्य आदिकूं कह्या सो तिनिनैं जान्या सोही अर्थरूप विशाखाचार्यकी परंपरायतैं चल्या आया सोही अर्थ आचार्य कहै हैं हमनैं कह्या है सो हमारी बुद्धिकरि कल्पित न कह्या है, ऐसा अभिप्राय है ॥ ६१ ॥

आगैं भद्रबाहु स्वामीकी स्तुतिरूप वचन कहै हैं—

बारस अंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयओ ॥६२॥

द्वादशांगविज्ञानः चतुर्दशपूर्वांगविपुलविस्तरणः।
श्रुतज्ञानिभद्रबाहुः गमकगुरुः भगवान् जयतु ॥६२॥

अर्थ—भद्रबाहु नाम आचार्य है सो जयवंत होहु कैसे है बारह अंगनिका है विज्ञान जिनिकूं, बहुरि कैसे है चौदह पूर्वनिका है विपुल विस्तार जिनिकै याहीतैं कैसे है श्रुतज्ञानी है पूर्ण भावज्ञानसहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान जिनिकै पाइये है, बहुरि कैसे है 'गमक गुरु' हैं जे सूत्रके अर्थकूं पाय जैसाका तैसा वाक्यार्थ करै तिनिकूं गमक कहिये तिनिके गुरु हैं तिनिमैं प्रधान हैं; बहुरि कैसे हैं भगवान हैं सुरासुरनिकरि पूज्य

है, ऐसे हैं सो जयवंत होऊ। ऐसैं कहनेमैं स्तुतिरूप तिनिकूं नमस्कार सूचै है 'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थमैं है सो सर्वोत्कृष्ट कहनेतैं नमस्कारही आवै ॥

भावार्थ— भद्रबाहुस्वामी पांचवा श्रुतकेवली भये तिनिकी परंपरायतैं शास्त्रका अर्थ जांनि यह बोधपाहुड ग्रंथ रच्या है तातैं तिनिकूं अंतमंगल अर्थि आचार्य स्तुतिरूप नमस्कार किया है। ऐसैं बोधपाहुड समाप्त किया है ॥ ६२ ॥

छप्पय।

प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा।
दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा ॥
ज्ञान सातमूं देव आठमूं नवमूं तीरथ।
दसमूं है अरहंत ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ ॥
इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेप सब निंद्य हैं।
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है ॥१॥

दोहा।

भयो वीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि।
बरतायो पंचमगुरू, नमूं तिनहिं मद छारि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुडकी
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रछाबड़ा कृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥४॥

❀ श्री ❀

अथ भावपाहुड

—(:-:) ५ (:-:)—

आगै भावपाहुडकी वचनिका लिखिये है,—

❀ दोहा ❀

परमातमकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार ।
करूं भावपाहुडतणीं देशवचनिका सार ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृतभावपाहुड गाथाबंध ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां प्रथम आचार्य इष्टके नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञाका सूत्र कहै है,—

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा॥ १॥

नमस्कृत्य जिनवरेन्द्रान् नरसुरभवनेन्द्रवंदितान् सिद्धान्।
वक्ष्यामि भावप्राभृतमवशेषान् संयतान् शिरसा ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो मैं भावपाहुड नाम ग्रथ है ताहि कहूंगा पूर्वैं कहाकरि—जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकर परमदेव वहुरि सिद्ध कहिये अष्टकर्मका नाशकरि सिद्धपदकूं प्राप्त भये वहुरि अवशेष सयत कहिये आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु ऐसैं पच परमेष्ठी तिनहिं मस्तककरि वदना करिके कहूंगा, कैसें हैं पंच परमेष्ठी—नर कहिये मनुष्य सुर कहिये स्वर्गवासी देव भवन कहिये पातालवासी देव इनिके इन्द्र तिनिकरि वंदने योग्य हैं॥

भावार्थ-आचार्य भावपाहुड ग्रंथ रचैं हैं सो भाव प्रधान पंचपरमेष्ठी हैं तिनिकू आदिमैं नमस्कार युक्त है जातैं जिनवरेंद्र तौ ऐसैं हैं—जिन कहिये गुणश्रेणी निर्जराकरि युक्त ऐसे अविरतसम्यग्दृष्टी आदिक तिनिमैं वर कहिये श्रेष्ठ गणधरादिक तिनिमैं इन्द्र तीर्थंकर परमदेव है सो गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभावहीतैं होय है सो तीर्थंकरभावके फलकू पहुंचे-घातिकर्मका नाशकरि केवलज्ञान पाया, बहुरि तैसैंही सर्वकर्मका नाशकरि परम शुद्ध भावकू पाय सिद्ध भये, बहुरि आचार्य उपाध्याय शुद्ध भावके एकदेशकूं पाय पूर्णताकूं आप साधैं हैं अन्यकूं शुद्ध भावकी दीक्षा शिक्षा दें हैं, बहुरि साधु हैं ते भी तैसैंही शुद्ध भावकूं आप साधै हैं बहुरि शुद्ध भावहीके माहात्म्यकरि तीनलोकके प्राणीनिकरि पूजनेयोग्य वंदने योग्य कहे हैं, तातैं भावप्राभृतकी आदिविषैं इनिकूं नमस्कार युक्त है बहुरि मस्तककरि नमस्कार करनेमैं सर्व अंग आय गये जातैं मस्तक अंगनिमैं उत्तम है, बहुरि आप नमस्कार किया तब अपना भावपूर्वक भयाही तब 'मन वचन काय' तीनूंही आय गये ऐसैं जाननां ॥१॥

आगैं कहै है जो लिंग द्रव्यभाव करि दोय प्रकार है तिनिमैं भावलिंग परमार्थ है,—

भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा विन्ति ॥२॥

भावः हि प्रथमलिंगं न द्रव्यलिंगं च जानीहि परमार्थम्।
भावो कारणभूतः गुणदोषाणां जिना विदन्ति ॥ २ ॥

अर्थ—भाव है सो प्रथमलिंग है याहीतैं हे भव्य ! तू द्रव्यलिंग है ताहि परमार्थरूप मति जाणैं जातैं गुण अर दोष इनिका कारणभूत भावही है ऐसैं जिन भगवान कहैं हैं ॥

भावार्थ–जातैं गुण जे स्वर्गमोक्षका होनां अर दोष जे नरकादिक संसारका होना इनिका कारण भगवान भावहीकू कह्या है यातैं कारण

होय सो कार्यके पहलैं प्रवर्त्तें सो इहां मुनि श्रावकके द्रव्य लिंगकै पहलैं भावलिंग होय तौ सांचा मुनि श्रावक होय है तातैं भावलिंगही प्रधान है प्रधान होय सोही परमार्थ है, तातैं द्रव्यलिंगकूं परमार्थ न जाननां ऐसैं उपदेश किया है।

इहां कोई पूछै—भावस्वरूप कहा है ? ताका समाधान-जो भावका स्वरूप तौ आचार्य आगैं कहसी तथापि इहाभी किछू कहिये है—या लोकमैं षट् द्रव्य हैं तिनिमैं जीव पुद्गलका वर्त्तन प्रकट देखनेंमैं आवै है—तहां जीव तौ चेतनास्वरूप है अर पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण स्वरूप जड है इनिकी अवस्थातैं अवस्थारतरूप होना ऐसा परिणामकूं भाव कहिये है तहां जीवका स्वभाव परिणामरूप भाव तौ दर्शन ज्ञान है अर पुद्गल कर्मके निमित्ततैं ज्ञानमैं मोह राग द्वेष होनां सो विभाव भाव है बहुरि पुद्गलके स्पर्शतैं स्पर्शान्तर रसतैं रसान्तर इत्यादि गुणतैं गुणान्तर होना सो तौ स्वभावभाव है अर परमाणुतैं स्कंध होना तथा स्कंधतैं अन्यस्कंध होना तथा जीवके भावके निमित्ततैं कर्मरूप होना ये विभाव भाव है, ऐसैं इनिकै परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव प्रवर्तें हैं। तहां पुद्गल तौ जड है ताके नैमित्तिकभावतैं किछू सुख दुःख आदि नांही अर जीव चेतन है याके निमित्ततैं भाव होय तिनितैं सुख दुख आदि प्रवर्त्तें है तातैं जीवकूं स्वभाव भावरूप रहनेंका अर नैमित्तिक-भावरूप न प्रवर्त्तनेका उपदेश है। अर जीवकै पुद्गल कर्मके संयोगतैं देहादिक द्रव्यका संबंध है सो इस बाह्यरूपकूं द्रव्य कहिये सो भावतैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय हैं ऐसैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय है। ऐसैं द्रव्य भावका स्वरूप जाणि स्वभावमैं प्रवर्त्तें विभावमैं न प्रवर्त्तें ताकै परमानंद सुख होय है, विभाव रागद्वेष मोहरूप प्रवर्त्तें ताकै संसारसंबंधी दुःख होय हैं, अर द्रव्यरूप है सो पुद्गलका विभाव है या संबंधी जीवकै दुःख सुख होय है तातैं भावही प्रधान है, ऐसैं न होतैं केवली भगवानकै भी सांसारिक सुख दुःखकी प्राप्ति आवै, सो है नाहीं। ऐसैं जीवके ज्ञानदर्शन अर रागद्वेष मोह ये तौ स्वभाव विभाव हैं अर पुद्गलके स्पर्शादिक अर

स्कंधादिक स्वभाव विभाव हैं तिनिमैं जीवको हित अहित भाव प्रधान है पुद्गलद्रव्यसंबंधी प्रधान नाहीं, बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है, उपादान विना निमित्त किछू करै नाहीं: ये तौ सामान्यपणैं स्वभावका स्वरूप है बहुरि याहीका विशेष सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तौ जीवका स्वभाव भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है याविना सर्व बाह्य क्रिया मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो विभाव हैं सो संसारका कारण है, ऐसें जानना ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो बाह्य द्रव्य निमित्त मात्र है सो याका अभाव जीव के भावकी विशुद्धताका निमित्त जाणि बाह्यद्रव्यका त्याग कीजिये है;—

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स ॥ ३ ॥

भावविशुद्धिनिमित्तं बाह्यग्रंथस्य क्रियते त्यागः ।
बाह्यत्यागः विफलः अभ्यन्तरग्रंथयुक्तस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—बाह्य परिग्रहका त्याग कीजिये है सो भावकी विशुद्धि ताकै अर्थि कीजिए है बहुरि अभ्यंतर परिग्रह जो रागादिक तिनिकरि युक्त है ताकै बाह्य परिग्रहका त्याग निष्फल है ॥

भावार्थ—अंतरंगभावविना बाह्य त्यागादिककी प्रवृत्ति निष्फल है यह प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

आगैं कहै हैं—जो कोट्या भव विषैं तप करै तौऊ भाव विना सिद्धि नाहीं;—

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो ॥ ४ ॥

भावरहितः न सिद्ध्यति यद्यपि तपश्चरति कोटिकोटी ।
जन्मान्तराणि बहुशः लंबितहस्तः गलितवस्त्रः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो बहुत जन्मांतरतांई कोडाकोडि संख्या काल तांई हस्त लवायमानकरि वस्त्रादिक त्यागकरि तपश्चरण करै तौऊ भावरहितकै सिद्धि नांही होय है ॥

भावार्थ—भावमैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप विभाव रहित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप स्वभावके विषैं प्रवृत्ति न होय तौ कोडा कोडि भव तांई कायोत्सर्गकरि नग्न मुद्रा धारि तपश्चरण करै तौऊ मुक्तिकी प्राप्ति न होय, ऐसैं भावमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भाव प्रधान है तिनिमैंभी सम्यग्दर्शन प्रधान है जातैं या विना ज्ञान चारित्र मिथ्या कहे हैं, ऐसैं जानना ॥ ४ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृढ करै हैं.—

परिणामम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ ॥ ५ ॥

परिणामे अशुद्धे गंथान् मुंचति बाह्यान् च यदि।
बाह्यग्रंथत्यागः भावविहीनस्य किं करोति ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मुनि होय परिणाम अशुद्ध होतैं बाह्य ग्रथकूं छोडै तौ बाह्य परिग्रहका त्याग है सो भावरहित मुनिकै कहा करै? कछू भी न करै ॥

भावार्थ—जो बाह्य परिग्रहकूं छोडि मुनि होय अर परिग्रहपरिणामरूप अशुद्ध होय अभ्यंतर परिग्रह न छोडै तौ बाह्य त्याग किछू कल्याणरूप फल न करिसकै है, सम्यग्दर्शनादिभाव विना कर्मनिर्जरारूप कार्य न होय है ॥ ५ ॥

पहली गाथातैं यामैं यह विशेष है जो मुनिपदभी ले अर परिणाम उज्ज्वल न रहै आत्मज्ञानकी भावना न रहै तौ कर्म कटै नाही ॥

आगैं उपदेश करै है जो भावकूं परमार्थ जाणि याहीकूं अंगीकार करौ—

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण ।
पंथिय ! सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण ॥ ६ ॥

जानीहि भावं प्रथमं किं ते लिंगेन भावरहितेन ।
पथिक शिवपुरीपंथाः जिनोपदिष्टः प्रयत्नेन ॥ ६ ॥

अर्थ—हे मुने ! मोक्षपुरीका मार्ग जिनदेव प्रयत्नकरि उपदेश्या भावही है तातैं हे शिवपुरीका पथिक ! कहिये मार्ग चलनेवाला तू भावहीकूं प्रथम जाणि परमार्थभूत जाणि, भावरहित द्रव्यमात्र लिंगकरि तेरै कहा साध्य है किछू भी नाही ॥

भावार्थ—मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आत्मभावस्वरूप परमार्थकरि कह्या है तातैं याहीकूं परमार्थ जानि अंगीकार करना केवल द्रव्यमात्र लिंगकरि कहा साध्य है ऐसैं उपदेश है ।

आगैं कहै हैं जो द्रव्यलिंग आदि तैं बहुत धारे तिनितैं किछू सिद्धि न भई;—

भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे ।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं ॥ ७ ॥

भावरहितेन सत्पुरुष ! अनादिकालं अनंतसंसारे ।
गृहीतोज्झितानि बहुशः बाह्यनिर्ग्रंथरूपाणि ॥ ७ ॥

अर्थ—हे सत्पुरुष ! अनादिकालतैं लगाय इस अनंत संसारविषै तैं भावरहित निर्ग्रंथरूप बहुत वार ग्रहण किया अर छोड्या ॥

भावार्थ—भाव जो निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तिस विना बाह्य निर्ग्रंथरूप द्रव्यलिंग संसारविषै अनंतकालतैं लगाय बहुतवार धारे अर छोड़े तथापि किछू सिद्धि न भई चतुर्गतिविषैं भ्रमता ही रह्या ॥ ७ ॥

सो ही कहै हैं;—

भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव! ॥
भीषणनरकगतौ तिर्यग्गतौ कुदेवमनुष्यगत्योः।
प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं भावय जिनभावनां जीव! ॥८॥

अर्थ—हे जीव! तैं भीषण भयकारी नरकगति तथा तिर्यंचगति बहुरि कुदेव कुमनुष्यगतिविषैं तीव्र दुःख पाये तातैं अब तू जिनभावना कहिये शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना भाय यातैं तेरैं संसारका भ्रमण मिटै॥

भावार्थ—आत्माकी भावना विना च्यार गतिके दुःख अनादि कालतैं संसारविषैं पाये यातैं अब हे जीव! तू जिनेश्वरदेवका शरण ले अर शुद्धस्वरूपका बारबार भावनारूप अभ्यास करि यातैं संसारका भ्रमणतैं रहित मोक्षकूं प्राप्त होय, यह उपदेश है॥ ८॥

आगैं च्यारि गतिके दुःखनिकूं विशेषकरि कहै है, तहां प्रथम ही नरकगतिके दुःखनिकूं कहै हैं;—

सत्तसु णरयावासे दारुणभीसाइं असहणीयाइं।
भुत्ताइं सुइरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं सहिय॥ ९॥
सप्तसु[1] नरकावासेषु दारुणभीषणानि असहनीयानि।
भुक्तानि सुचिरकालं दुःखानि निरंतरं सोढानि[2] ॥९॥

अर्थ—हे जीव! तैं सात नरकभूमिनिविषै नरक आवास जे बिलै तिनिविषैं दारुण कहिये तीव्र अर भयानक अर असहनीय कहिये सह्या न जाय ऐसे घणे कालपर्यन्त दुःखनिकू निरंतर ही भोग्या अर सह्या॥

भावार्थ—नरककी पृथ्वी सात हैं तिनिमैं बिल बहुत हैं तिनिविषै

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सप्तमु नरकावासे' ऐसा पाठ।
२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'स्वहित' ऐसा पाठ है, 'सहिय' इसकी छाया है।

एक सागरतैं लगाय तेतीस सागरपर्यन्त तहां आयु है जहां आयुपर्यन्त अतितीव्र दुःख यह जीव अनतकालतैं सहता आया है ॥ ९ ॥

आगैं तिर्यंचगतिके दुःखनिकूं कहै हैं;—

खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च ।
पत्तोसि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं ॥१०॥
खननोत्तापनज्वालनवेदनविच्छेदनानिरोधं च ।
प्राप्तोऽसि भावरहितः तिर्यग्गतौ चिरं कालं ॥ १० ॥

अर्थ—हे जीव ! तैं तिर्यंचगतिविषैं खनन उत्तापन ज्वलन वेदन व्युच्छेदन निरोधन इत्यादि दुःख बहुतकालपर्यंत पाये, कैसा भया संता—भावरहितकरि सम्यग्दर्शन आदि भावरहित भया संता ॥

भावार्थ-या जीवनें सम्यग्दर्शनादि भाव विना तिर्यंचगतिविषैं चिरकाल दुःख पाये-पृथ्वीकायमैं तौ कुदाल आदि खोदनेंकरि दुःख पाये, अपकायविषैं अग्नितैं तपना ढोलना इत्यादिकरि दुःख पाये, तेजकायविषैं ज्वालना बुझावनां आदिकरि दुःख पाये, पवनकायविषैं भारेतैं हलका चलना फटना आदिकरि दुःख पाये, वनस्पतिकायविषैं फाडना छेदनां रांधना आदिकरि दुःख पाये, विकलत्रयविषैं अन्यतैं रुकना अल्प आयुतैं मरनां इत्यादिकरि दुःख पाये, पंचेंद्रिय पशु पक्षी जलचर आदिविषैं परस्पर घात तथा मनुष्यादिककरि वेदना भूख तृषा रोकना बंधन देना इत्यादिकरि दुःख पाये, ऐसैं तिर्यंचगतिविषैं असंख्यात अनंतकालपर्यन्त दुःख पाये ॥ १० ॥

आगैं मनुष्यगतिके दुःखनिकूं कहै हैं;—

आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि ।
दुक्खाइं मणुयम्मे पत्तोसि अणंतयं कालं ॥ ११ ॥

---

१ मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'वेयण' इसकी संस्कृत 'व्यजन' इस प्रकार है ।

आगंतुकं मानसिकं सहजं शारीरिकं च चत्वारि ।
दुःखानि मनुजजन्मनि प्राप्तोऽसि अनंतकं कालं ॥११॥

अर्थ—हे जीव ! तैं मनुष्यगतिविषैं अनतकालपर्यन्त आगंतुक कहिये अकस्मात् वज्रपातादिक आया रड़ै ऐसा बहुरि मानसिक कहिये मनही विषैं भया ऐसा विषयनिकी वाछा होय अर मिलै नाही ऐसा बहुरि सहज कहियें माता पितादिककरि सहजही उपज्या तथा राग द्वेषादिकतै वस्तुकूं इष्ट अनिष्ट दुःख होना बहुरि शारीरिक कहिये व्याधि रोगादिक तथा परकृत छेदना भेदन आदिकतैं भये दुःख ये च्यार प्रकार अर चकारतें इनिकूं आदि लें अनेक प्रकार दुःख पाये ॥११॥

आगैं देवगतिविषैं दुःखनिकूं कहै हैं;—

सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं ।
संपत्तोसि महाजस दुःखं सुहभावणारहिओ ॥ १२ ॥

सुरनिलयेषु सुराप्सरावियोगकाले च मानसं तीव्रम् ।
संप्राप्तोऽसि महायशः ! दुःखं शुभभावनारहितः ॥१२॥

अर्थ—हे महाजस ! तैं सुरनिलयेषु कहिये देवलोकविषैं सुराप्सरा कहिये प्यारा देव तथा प्यारी अप्सराका वियोग कालविषै तिसके वियोग सबधी दुःख तथा इंद्रादिक बडे ऋद्धिधारीनिकूं देखि आपकूं हीन मानना ऐसा मानसिक दुःख ऐसै तीव्र दुःख शुभ भावनाकरि रहित भये सते पाया ॥

भावार्थ—इहां महाजस ऐसा सबोधन किया ताका आशय यह है जो मुनि निर्ग्रंथ लिंग धारै अर द्रव्यलिंग मुनिकी समस्त क्रिया करै परन्तु आत्माका स्वरूप शुद्धोपयोगकै सन्मुख न होय ताकूं प्रधानपणै उपदेश है--जो मुनि भया सो तौ बडा कार्य किया तेरा जस लोकमैं प्रसिद्ध भया परन्तु भलीभावना जो शुद्धात्मतत्त्वका अभ्यास ताविना

तपश्चरणादिककरि स्वर्गविषै देवभी भया तो वहां भी विषयनिका लोभी भया संता मानसिक दुःखहीतैं तप्तायमान भया ॥ १२ ॥

आगे शुभभावनातैं रहित अशुभ भावना का निरूपण करै हैं,–

कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य ।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ ॥ १३ ॥

कांदर्पीत्यादीः पंचापि अशुभादिभावनाः च ।
भावयित्वा द्रव्यलिंगी प्रहीणदेवः दिवि जातः ॥१३॥

अर्थ–हे जीव ! तू द्रव्यलिंगी मुनि होय करि कान्दर्पीकूं आदि लेकरि पांच अशुभ शब्द हैं आदि जिनके ऐसी अशुभ भावना भायकरि प्रहिणदेव कहिये नीचदेव स्वर्गविषैं उपज्या ॥

भावार्थ–कान्दर्पी, किल्विषिकी, संमोही, दानवी, आभियोगिकी, ये पांच अशुभ भावना है तहां निर्ग्रंथ मुनि होय करि सम्यक्त्व भावना विना इनि अशुभ भावनांकूं भावै तब किल्विष आदि नीच देव होय मानसिक दुःखकूं प्राप्त होय है ॥ १३ ॥

आगें द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होय है तिनिकूं कहै हैं;—

पासत्थभावणाओ अणाइकालं अणेयवाराओ ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणा भावबीएहिं ॥ १४ ॥

पार्श्वस्थभावनाः अनादिकालं अनेकवारान् ।
भावयित्वा दुःखं प्राप्तः कुभावनाभावबीजैः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू पार्श्वस्थ भावनातैं अनादिकालतैं लेकरि अनंतवार भाय करि दुःखकूं प्राप्त भया, काहे करि दुःख पाया—कुभावना कहिये खोटी भावना ताका भाव ते ही भये दुःखके बीज तिनिकरि दुःख पाया ॥

भावार्थ—जो मुनि कहावै अर वस्तिका वांधि आजीविका करै सो पार्श्वस्थ भेषधारी कहिये, वहुरि जो कषायी होय व्रतादिकतैं भ्रष्ट रहै सघका अविनय करै ऐसा भेषधारीकूं कुशील कहिये, वहुरि जो वैद्यक ज्योतिष विद्यामंत्रकी आजीविका करै राजादिकका सेवक होय ऐसा भेषधारीकूं ससक्त कहिये, वहुरि जो जिनसूत्रतैं प्रतिकूल चारित्रतैं भ्रष्ट आलसी ऐसा भेषधारीकूं अवसन्न कहिये, वहुरि गुरुका आश्रय छोडि एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्तै जिन आज्ञा लोपै ऐसा भेषधारीकूं मृगचारी कहिये, इनिकी भावना भावै सो दुःखहीकूं प्राप्त होय है ॥ १४ ॥

ऐसैं देव होय करि मानसिक दुःख पाये ऐसैं कहै हैं;—

देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प वहुविहं दट्ठुं ।
होऊण हीणदेवो पत्तो वहुमाणसं दुक्खं ॥ १५ ॥

देवानां गुणान् विभूतीः ऋद्धीः माहात्म्यं वहुविधं दृष्ट्वा ।
भूत्वा हीनदेवः प्राप्तः वहु मानसं दुःखम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू हीनदेव होयकरि अन्य महर्द्धिक देवनिकी गुण विभूति ऋद्धिका माहात्म्य वहुत प्रकार देखिकरि वहुत मानसिक दुःखकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—स्वर्गमैं हीन देव होय करि वडे ऋद्धिधारी देवकै अणिमादि गुणकी विभूति देखै तथा देवांगना आदिका वहुत परिवार देखै तथा आज्ञा ऐश्वर्य आदिका माहात्म्य देखै तब मनमैं ऐसैं विचारै जो मैं पुण्यरहित हूं ये वडे पुण्यवान है जिनिकै ऐसी विभूति माहात्म्य ऋद्धि है ऐसे विचार तै मानसिक दुःख होय है ॥ १५ ॥

आगैं कहै हैं जो अशुभ भावनातैं नीच देव होय ऐसे दुःख पावै हैं ऐसैं कहि इस कथनकूं संकोचै हैं;—

चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो ।
होऊण कुदेवत्तं पत्तोसि अणेयवाराओ ॥ १६ ॥

चतुर्विधविकथासक्तः मदमत्तः अशुभभावप्रकटार्थः ।
भूत्वा कुदेवत्वं प्राप्तः असि अनेकवारान् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू च्यार प्रकारकी विकथाविषैं आसक्त भया संता मदकरि माता अशुभ भावनांहीका है प्रकट प्रयोजन जाकै ऐसा होय करि अनेकवार कुदेव पणाकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा राजकथा ऐसी च्यार विकथा तिनिविषैं परिणाम आसक्त होय लगाया तथा जाति आदि अष्ट मदनिकरि उन्मत्त भया ऐसें अशुभ भावनाहीका प्रयोजन धारि अर अनेकवार नीचदेवपणाकूं प्राप्त भया तहां मानसिक दुःख पाया। इहां यह विशेष जानना जो विकथादिक करि तौ नीच देवभी न होय परन्तु इहां मुनिकूं उपदेश है जो मुनिपद धारि कछु तपश्चरणादिक भी करै अर भेषमैं विकथादिकमैं रक्त होय नीच देव होय है, ऐसें जानना ॥ १६ ॥

आगें कहै है जो ऐसैं कुदेवयोनि पाय तहांतैं चय जो मनुष्य तिर्यंच होय तहां गर्भमैं आवै ताकी ऐसी व्यवस्था है।

असुईवीहत्थेहि य कलिमलवहुलाहि गब्भवसहीहि ।
वसिओसि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर ॥१७॥

अशुचिवीभत्सासु य कलिमलबहुलासु गर्भवसतिषु ।
उषितोऽसि चिरं कालं अनेकजननीनां मुनिप्रवर ! ॥१७॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर ! तू कुदेवयोनितैं चयकरि अनेक माताकी गर्भकी वसतीविषैं बहुत काल वस्या, कैसी है—अशुचि कहिये अपवित्र है, बहुरि बीभत्स है घिणावणी है, बहुरि कैसी है कलिमल बहुत है जामैं पापरूप मलिन मलकी बहुलता है ॥

भावार्थ–इहां मुनिप्रवर ऐसा संबोधन है सो प्रधानपणैं मुनिनिकूं उपदेश है,जो मुनिपद ले मुनिनिमैं प्रधान कहावै अर शुद्धात्मरूप निश्चय

चारित्रके सन्मुख न होय ताकूं कहै है जो बाह्य द्रव्यलिंग तौ बहुतवार धारि च्यार गतिमैंही भ्रमण किया देवभी हुवा तौ तहांतैं चयकरि ऐसे मलिन गर्भवास विषैं आया तहांभी बहुतवार वस्या ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहैं—जो ऐसे गर्भवासतैं नीसरि जन्म ले अनेक मातानिका दूध पिया;—

पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं ।
अण्णाण्णाण महाजस ! सायरसलिलाहु अहिययरं॥१८॥

पीतोऽसि स्तनक्षीरं अनंतजन्मांतराणि जननीनाम् ।
अन्यासामन्यासां महायशः ! सागरसलिलात् अधिकतरम्॥१८॥

अर्थ—हे महाजस ! तिस पूर्वोक्त गर्भवासविषैं अन्य अन्य जन्म विषैं अन्य अन्य माताका स्तनका दूधतैं समुद्रके जलतैं भी अतिशयकरि अधिक पिया ॥

भावार्थ—जन्म जन्म विषै अन्य अन्य माताके स्तनका दूध एता पीया ताकूं एकत्र कीजिये तौ समुद्रके जलतैंभी अतिशयकरि अधिक होय, इहां अतिशयका अर्थ अनंतगुणां जाननां जातैं अनंतकालका एकत्रित किया अनंतगुणा होय ॥ १८ ॥

आगैं फेरि कहै हैं जो जन्म लेकरि मरण किया तब माताका रुदनका अश्रुपातका जलभी एता भया,—

तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं ।
रुण्णाण णयणणीरं सायरसलिलाहु अहियय रं ॥ १९ ॥

तव मरणे दुःखेन अन्यासामन्यासां अनेकजननीनाम् ।
रुदितानां नयननीरं सागरसलिलात् अधिकतरम् ॥१९॥

अर्थ—हे मुने ! तैं माताका गर्भमें वसि जन्म लेकरि मरण किया सो तेरे मरण करि अन्य अन्य जन्मविषैं अन्य अन्य माताका रुदनतें नयननिका नीर एकत्र कीजिये तब समुद्रके जलतैंभी अतिशय करि अधिकगुणा होय अनंतगुणा होय ॥

आगें फेरि कहै हैं जो संसारमैं जन्म लीए तिनिमै केश नख नाल कटे तिनिका पुंज कीजिये तौ मेरुतैं अधिकराशि होयः—

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी ।
पुंजइ जइको वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी ॥

भवसागरे अनंते छिन्नोज्झितानि केशनखरनालास्थीनि ।
पुंजयति यदि कोऽपि देवः भवति च गिरिसमधिकः राशिः ॥

अर्थ—हे मुने ! या अनंत संसार सागरमैं तैं जन्म लिये तिनिमै केश नख नाल अस्थि कटे टूटे तिनिका जो कोई देव पुंज करै तौ मेरु गिरितैं भी अधिक राशि होय अनतगुणा होय ॥ २० ॥

आगें कहै हैं जो–हे आत्मन् ! तू जल थल आदि स्थानक विषै सर्वत्र वस्याः—

जलथलसिहिपवणंबरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ ।
वसिओसि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो ॥२१॥

जलस्थलशिखिपवनांबरगिरिसरिद्दरीतरुवनादिषु सर्वत्र ।
उषितोऽसि चिरं कालं त्रिभुवनमध्ये अनात्मवशः ॥२१॥

अर्थ–हे जीव ! तू जलविषै, थल कहिये भूमिविषै, शिखि कहिये अग्निविषैं, तथा पवनविषैं, अंबर कहिये आकाशविषैं गिरि कहिये पर्वतविषैं, सरित कहिये नदीविषैं, दरी कहिये पर्वतकी गुफाविषै तरु कहिये वृक्षनिविषैं वननिविषै बहुत कहा कहिये सर्वही स्थानकनिविषैं

तीनलोकविषैं बहुतकालपर्यन्त वस्या निवास किया, कैसा भया संता-अनात्मवश कहिये पराधीन भया संता ॥

भावार्थ—निज शुद्धात्माकी भावनाविना कर्मके आधीन भया तीन लोकमैं सर्व दुःखसहित सर्वत्र वास किया ॥ २१ ॥

आगैं फेरि कहै हैं जो हे जीव ! तैं या लोकमै सर्व पुद्गल भखे तौ हू तृप्त न भया;—

गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं ।
पत्तोसि तो ण तित्तिं पुंणरुत्तं ताइं भुंजंतो ॥ २२ ॥

ग्रसिताः पुद्गलाः भुवनोदरवर्त्तिनः सर्वे ।
प्राप्तोऽसि तन्न तृप्तिं पुनरुक्तान् तान् भुंजानः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे जीव ! तैं या लोकका उदरविषैं वर्त्तते जे पुद्गल स्कध तेनि सर्वनिकूं ग्रसे भखे बहुरि तिनिकूं पुनरुक्त फेरि फेरि भोगता सता हू तृप्तिकूं प्राप्त न भया ॥

फेरि कहै हैं;—

तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाइ पीडिएण तुमे ।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं ॥ २३ ॥

त्रिभुवनसलिलं सकलं पीतं तृष्णाया पीडितेन त्वया ।
तदपि न तृष्णाछेदः जातः चिन्तय भवमथनम् ॥२३॥

अर्थ-हे जीव ! तैं या लोकविषैं तृष्णाका पीड्या तीन भुवनका जल समस्त पिया तौऊ तृषाका व्युच्छेद न भया ते तातैं तू या ससा-रका मथन कहिये तेरै नाश होय तैसें निश्चय रत्नत्रय चिंतवन करि ॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'पुणरुत्त' ऐसा पाठ है जिसकी सस्कृत 'पुनारूप' इसप्रकार है ।

भावार्थ—संसारमैं काहू प्रकार सुखिता नांहीं तातैं जैसैं अपनैं संसारका अभाव होय तैसैं चिंतवन करना निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं सेवना यह उपदेश है ॥ २३ ॥

आगैं फेरि कहै है,—

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं ।
ताणं णत्थिपमाणं अणंतभवसायरे धीर ॥ २४ ॥

गृहीतोज्झितानि मुनिवर कलेवराणि त्वया अनेकानि ।
तेषां नास्ति प्रमाणं अनन्तभवसागरे धीर ! ॥ २४ ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! हे धीर ! तैं या अनंत भवसागरविषैं कलेवर कहिये शरीर अनेक ग्रहण किये अर छोड़े तिनिका परिमाण नाहीं है ॥

भावार्थ—हे मुनिप्रधान ! तू किछू इस शरीरसूं स्नेह किया चाहै तौ या संसारविषैं ऐसे शरीर छोड़े अर गहे तिनिका कछू परिमाण न किया जाय है ॥ २४ ॥

आगैं कहै हैं जो—पर्याय थिर नांही है आयुकर्मके आधीन है सो अनेक प्रकार क्षीण होय है,—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं ।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ॥ २५ ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारण अणणपसंगेहिं विविहेहिं ॥ २६ ॥
इय तिरिय मणुय जम्मे सुहरं उववज्जिऊण बहुवारं ।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तोसि तं मित्त ॥ २७ ॥

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशानाम् ।
आहारोच्छ्वासानां निरोधनात् क्षीयते आयुः ॥ २५ ॥

हिमज्वलनसलिलगुरुतरपर्वततरुरोहणपतनभङ्गैः।
रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगैः विविधैः ॥ २६ ॥

इति तिर्यग्मनुष्यजन्मनि सुचिरं उत्पद्य बहुवारम्।
अपमृत्युमहादुःखं तीव्रं प्राप्तोऽसि त्वं मित्र !॥ २७॥

अर्थ—विषभक्षणतैं वेदनाकी पीड़ाके निमित्ततैं रक्त कहिये रुधिर ताका क्षयतैं भय शस्त्रकरि घाततैं सक्लेश परिणामतैं आहारका तथा श्वासका निरोधतैं, इनि कारणनितैं आयुका क्षय होय है॥

बहुरि हिम कहिये शीत पालानैं अग्नितैं जलतैं बडे पर्वतके चढनेतैं पड़नेतै बडे वृक्ष परि चढ़करि पड़नेतैं शरीरका भग होनेतैं बहुरि रस कहिये पारा आदिककी विद्या ताका संयोग करि धारण करै भखै तातैं बहुरि अन्याय कार्य चोरी व्यभिचार आदिके निमित्ततैं ऐसैं अनेक प्रकारके कारणतैं आयुका व्युच्छेद होय कुमरण होय हैं।

यातैं कहै है जो—हे मित्र ! ऐसैं तिर्यंच मनुष्य जन्मविषै बहुतकाल बहुतवार उपजि करि अपमृत्यु कहिये कुमरण तिससबधी तीव्र महादु'खकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ–या ससारविषैं प्राणीकी आयु तिर्यंच मनुष्य पर्यायविषैं अनेक कारणनितैं छिदै है तातैं कुमरण होय है तातैं मरतै तीव्र दु ख होय है तथा खोटे परिणामनितैं मरणकरि फेरि दुर्गतिहीमैं पडै है, ऐसैं यह जीव संसारमैं महादु.ख पावै है यातैं आचार्य दयालु होय बारबार दिखावैं हैं अर ससारतैं मुक्त होनेंका उपदेश करै हैं ऐसै जानना ॥२५-२६-२७॥

आगैं निगोदका दु'खकूं कहै है,—

छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि निगोयवासम्मि ॥ २८ ॥

षट्त्रिंशत् त्रीणि शतानि षट्षष्टिसहस्रवारमरणानि ।
अन्तर्मुहूर्त्तमध्ये प्राप्तोऽसि निकोतवासे ॥ २८ ॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू निगोदके वासमैं एक अंतमुहूर्त्तमैं छ्यासठि हजार तीनसैं छत्तीस वार मरणकूं प्राप्त हूवा ।

भावार्थ-निगोदमें एक श्वासकै अठारवैं भाग प्रमाण आयु पावै है तहा एक मुहूर्त्तके सैंतीससै तिहत्तरि श्वासोच्छ्वास गिणे है तिनिमैं छत्तीससैपिच्यासी श्वासोच्छ्वास अर एक श्वासका तीसरा भागके छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस वार निगोदमैं जन्म मरण होय है ताके दु.ख यह प्राणी सम्यग्दर्शनभाव पाये विना मिथ्यात्वका उदयकै वशीभूत भया सहै है । भावार्थ—अंतर्मुहूर्त्तमैं छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस वार जामन मरण कह्या सो अठ्यासी श्वास घाटि मुहूर्त्त ऐसा अन्तर्मुहूर्त्तविषैं जानना ॥ २८ ॥

इसही अंतर्मुहूर्त्तके जन्म मरणमैं क्षुद्र भवका विशेष कहै हैं,

वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह ।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतो मुहुत्तस्स ॥ २९ ॥
विकलेंद्रियाणामशीतिं षष्टिं चत्वारिंशतमेव जानीहि ।
पंचेंद्रियाणां चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्त्तस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—इनि अन्तर्मुहूर्त्तके भवनिमैं वेंद्रियके क्षुद्रभव असी तेंद्रियके साठि चौइन्द्रियके चालीस पंचेंद्रियके चौवीस ऐसै—हे आत्मन् ! तू क्षुद्रभव जानि ।

भावार्थ—क्षुद्रभव अन्य शास्त्रमैं ऐसैं गिनैं हैं पृथ्वी अप तेज वायु साधारण निगोदके सूक्ष्म बादरकरि दश अर सप्रतिष्ठित वनस्पति एकै ऐसैं ग्यारह स्थानकके भव तौ एक एकके छह हजार बार ताके छ्यासठि

हजार एकसौ बत्तीस भये, बहुरि इस गाथामैं कहे ते बेंद्रिय आदिके दोयसौ च्यार ऐसैं ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त्तमै क्षुद्रभव कहे हैं ॥२९॥

आगैं कहै हैं कि हे आत्मन्! तू इस दीर्घससारविषैं ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयकी प्राप्ति बिना भ्रम्या यातै अब रत्नत्रय अगीकार करि,

रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओसि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तं समायरह ॥३०॥

रत्नत्रये अलब्धे एवं भ्रमितोऽसि दीर्घसंसारे।
इति जिनवरैर्भणितं तत् रत्नत्रयं समाचर ॥३०॥

अर्थ—हे जीव! तू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय ताकूं न पाये यातैं इस दीर्घ अनादिसंसारविषैं पूर्वैं कह्या तैसैं भ्रम्या ऐसा जानिकरि अब तू तिस रत्नत्रयका आचरणकरि, ऐसैं जिनेश्वरदेव कह्या है ॥

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय पाये बिना यह जीव मिथ्यात्वके उदयतैं संसारमैं भ्रमै है यातैं रत्नत्रयका आचरणका उपदेश है ॥ ३० ॥

आगैं शिष्य पूछै जो वह रत्नत्रय कैसा है ताका समाधान करै है जो रत्नत्रय ऐसा है;—

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्गुत्ति ॥३१॥

आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः।
जानाति तत् संज्ञानं चरतीह चारित्रं मार्ग इति ॥३१॥

अर्थ–जो आत्मा आत्माविषैं रत होय यथार्थरूपका अनुभव करि तद्रूप होय, श्रद्धान करै सो प्रगट सम्यग्दृष्टी होय, बहुरि तिस आत्माकूं जानैं सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि तिस आत्माकूं आचरण करै रागद्वेषरूप

न परिणमै सो चारित्र है; ऐसैं यह निश्चय रत्नत्रय है सो मोक्ष-मार्ग है ॥

भावार्थ—आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सो निश्चय रत्नत्रय है, अर बाह्य याका व्यवहारजीवअजीवादितत्वनिका श्रद्धान जाननां परद्रव्य परभावका त्याग करनां है ऐसैं निश्चय व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है। तहां निश्चय तौ प्रधान है या विनां व्यवहार संसारस्वरूपही है, बहुरि व्यवहार है सो निश्चयका साधनस्वरूप है या विना निश्चयकी प्राप्ति नाहीं है, अर निश्चयकी प्राप्ति भये पीछैं व्यवहार कछू है नांही ऐसैं जानना ॥ ३१ ॥

आगैं संसारविषैं या जीवनैं जन्म मरण किये ते कुमरण किये अब सुमरणका उपदेश करै हैं;—

अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओसि ।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव ! ॥३२॥

अन्यस्मिन् कुमरणमरणं अनेकजन्मान्तरेषु मृतः असि ।
भावय सुमरणमरणं जन्ममरणविनाशनं जीव ! ॥३२॥

अर्थ—हे जीव या संसारविषैं अनेक जन्मान्तरविषै अन्य कुमरण मरण जैसैं होय तैसैं तू मूवा अब तू जा मरणतैं जन्म मरणका नाश होय ऐसा सुमरण भाय ॥

भावार्थ—मरण संक्षेपकरि अन्य शास्त्रविषैं सतरह प्रकार कह्या है, सो ऐसैं—आवीचिकामरण १ तद्भवमरण २ अवधिमरण ३ आद्यान्त-मरण ४ बालमरण ५ पंडितमरण ६ आसन्नमरण ७ बालपंडितमरण ८ सशल्यमरण ९ पलायमरण १० वशार्त्तमरण ११ विप्राणसमरण १२ गृध्रपृष्टमरण १३ भक्तप्रत्याख्यानमरण १४ इंगिनीमरण १५ प्रायोपगमनमरण १६ केवलिमरण १७ ऐसैं सतरह ।

इनिका स्वरूप ऐसा—जो आयुका उदय समय समय करि घटै है सो समय समय मरण है ये आवीचिकामरण है ॥ १ ॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका अभाव सो तद्भवमरण है ॥ २ ॥

बहुरि जो जैसा मरण वर्त्तमान पर्यायका होय तैसाही अगिली पर्यायका होयगा सो अवधिमरण है, याका दोय भेद तहां जैसा प्रकृति स्थिति अनुभाग वर्त्तमानका उदय आया तैसाही अगिलीका उदय आवै सो सर्वावधिमरण है, अर एकदेशबंध उदय होय तौ देशावधि मरण कहिये ॥ ३ ॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था तैसा अगिलीका सर्वतो वा देशतो बंध उदय न होय सो आद्यन्तमरण है॥४॥

पांचवां बालमरण है, सो बाल पाच प्रकार है;—अव्यक्त बाल, व्यवहारबाल, ज्ञानबाल,दर्शनबाल चारित्रबाल। तहां जो धर्म अर्थ काम इनिकार्यनिकूं न जानैं इनिका आचरणकूं समर्थ जाका शरीर नाहीं होय सो अव्यक्तबाल है। जो लोकका अर शास्त्रका व्यवहारकूं न जानैं तथा बालक अवस्था होय सो व्यवहारबाल है। वस्तुका यथार्थ ज्ञानरहित ज्ञानबाल है। तत्वश्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टी दर्शनबाल है। चारित्र रहित प्राणी चारित्रबाल है। इनिका मरना सो बालमरण है। इहां प्रधानपणैं दर्शनबालहीका ग्रहण है जातै सम्यग्दृष्टीकै अन्य बालपणां होतैं भी दर्शनपंडितताका सद्भावतैं पंडितमरणविषैंही गणिये है। तहां दर्शनबालका सक्षेपतैं दोय प्रकार मरण कह्या है—इच्छाप्रवृत्त १ अनिच्छाप्रवृत्त २ तहां अग्निकरि धूमकरि शस्त्रकरि विषकरि जलकरि पर्वतके तटतैं पड़नेकरि अति शीत उष्णकी बाधाकरि बंधनकरि क्षुधा-तृषाके अवरोधकरि जीभ उपाडनेकरि विरुद्ध आहार सेवनेकरि बाल अज्ञानी चाहि करि मरै सो इच्छाप्रवृत्त है। अर जीवनेका इच्छुक होय अर मरै सो अनिच्छा प्रवृत्त है ॥। ५ ॥

बहुरि पंडितमरण च्यार प्रकार है,–व्यवहारपंडित सम्यक्त्वपंडित, ज्ञानपंडित, चारित्रपंडित। तहां लोकशास्त्रका व्यवहारविषैं प्रवीण होय

सो व्यवहारपंडित है। सम्यक्त्व सहित होय सो सम्यक्त्वपंडित है। सम्यग्ज्ञानसहित होय सो ज्ञानपडित है। सम्यक् चारित्रकरि सहित होय सो चारित्रपंडित है। इहाँ दर्शन ज्ञान चारित्रसहित पंडितका ग्रहण है जातैं व्यवहारपंडित मिथ्यादृष्टी बालमरणमैं आय गया ॥ ६ ॥

बहुरि जो मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तनेवाला साधु संघतैं छूट्या ताकूं आसन्न कहिये है तिनिमैं पार्श्वस्थ स्वच्छंद कुशील ससक्तभी लेने, ऐसै पंच प्रकार भ्रष्ट साधुनिका मरण सो आसन्नमरण है ॥ ७ ॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी श्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है ॥ ८ ॥

बहुरि सशल्यमरण दोय प्रकार—तहां मिथ्यादर्शन माया निदान ये तीन शल्य तौ भावशल्य है, अर पच स्थावर अर त्रसमैं असैंनी ये द्रव्यशल्यसहित हैं ऐसैं सशल्यमरण है ॥ ९ ॥

बहुरि जो प्रशस्तक्रियाविषैं आलसी होय व्रतादिविषैं शक्तिकूं छिपावै ध्यानादिकतैं दूरि भागैं ऐसाका मरण सो पलाय मरण है ॥ १० ॥

वशार्त्तमरण च्यार प्रकार है—सो आर्तरौद्र ध्यानसहित मरण है तहा पांच इंद्रियनिके विषयनिविषैं रागद्वेषसहित मरण सो इन्द्रियवशार्त्त मरण है, साता असाताकी वेदनासहित मरै सो वेदनावशार्त्तमरण है, क्रोध मान माया लोभ कषायके वशतैं मरै सो कषायवशार्त्तमरण है, हास्य विनोद कषायके वशतैं मरै सो नोकषायवशार्त्तमरण है ॥ ११ ॥

बहुरि जो अपना व्रत क्रिया चारित्रविषैं उपसर्ग आवै सो कह्याभी न जाय अर भ्रष्ट होनेका भय आवे तब अशक्त भया अन्नपानीका त्यागकरि मरै सो विप्राणसमरण है ॥ १२ ॥

बहुरि जो शस्त्रग्रहणकरि मरण होय सो गृध्रपृष्टमरण है ॥ १३ ॥

बहुरि जो अनुक्रमसूं अन्नपानीका यथाविधि त्यागकरि मरै सो भक्तप्रत्याख्यान मरण है ॥ १४ ॥

बहुरि जो सन्यास करै अर अन्यपास वैयावृत्य करावै सो इंगिनीमरण है ॥ १५ ॥

बहुरि जो प्रायोपगमन सन्यास करै काहू पास वैयावृत्त्य न करावै अपनैं आपभी न मरै प्रतिमायोग रहै सो प्रायोपगमनमरण है ॥१६॥

बहुरि जो केवली मुक्तिप्राप्त होय सो केवलिमरण है ॥ १७ ॥

ऐसैं सतरह प्रकार कहे तिनिका संक्षेप ऐसा किया है—जो मरण पांच प्रकार है,— पंडितपंडित, पंडित, बालपंडित, बाल, बालबाल। तहां दर्शन ज्ञान चारित्रका अतिशयकरि सहित होय सो तौ पंडितपंडित है, अर इनिकी प्रकर्षता जाकै न होय सो पंडित है; सम्यग्दृष्टी श्रावक सो बाल पंडित, अर पूर्वै च्यार प्रकार पंडित कहे तिनिमैंसू एकभी भाव जाकै नांही सो बाल है, अर जो सर्वतैं न्यून होय सो बालबाल है। इनिमैं पंडितपंडितमरण अर पंडितमरण बालपंडितमरण ये तीन प्रशस्त सुमरण कहे हैं अन्यरीति होय सो कुमरण है। ऐसैं जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र एकदेशसहित मरै सो सुमरण है, ऐसा सुमरण करनेका उपदेश है ॥ ३२ ॥

आगैं यह जीव संसारमैं भ्रमैं है तिस भ्रमणके परावर्तनका स्वरूप मनमैं धारि निरूपण करै हैं, तहां प्रथमही सामान्यकरि लोकके प्रदेशनिकी अपेक्षाकरि कहै हैं;—

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो॥३३

सः नास्ति द्रव्यश्रमणः परमाणुप्रमाणमात्रो निलयः।
यत्र न जातः न मृतः त्रिलोकप्रमाणकः सर्वः ॥३३

अर्थ—यह जीव द्रव्यलिंगका धारक मुनिपणा होतैं संतैं भी यहु तीन लोक प्रमाण सर्व स्थानक हैं तामैं एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्रभी ऐसा स्थान नांही जामैं जनम्यां नांहीं तथा मूवा नांही॥

भावार्थ— द्रव्यलिंग धारकरिभी सर्वलोकमैं यह जीव जनम्या मर्‍या ऐसा प्रदेश न रह्या जामैं जनम्या मर्‍या नाही, ऐसा भावलिंगविना द्रव्यलिंगतैं मुक्तिप्राप्त न भया ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ़ करनेकूं भावलिंगकूं प्रधानकरि कहै हैं,

कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं ।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण ॥ ३४ ॥

कालमनंतं जीवः जन्मजरामरणपीडितः दुःखम् ।
जिनलिंगेन अपि प्राप्तः परम्पराभावरहितेन ॥ ३४ ॥

अर्थ-यह जीव या संसारविषै जामैं परंपरा भावलिंग न भया संता अनंतकालपर्यन्त जन्म जरा मरणकरि पीडित दुःखहीकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ-द्रव्यलिंग धार्‍या अर तामैं परंपराकरि भी भावलिंगकी प्राप्ति न भई यातैं द्रव्यलिंग निष्फल गया मुक्तिकी प्राप्ति न भई संसारहीमैं भ्रम्या ।

इहां आशय ऐसा जो द्रव्यलिंग है सो भावलिंगका साधन है परन्तु काललब्धिविना द्रव्यलिंग धारेभी भावलिंगकी प्राप्ति न होय यातैं द्रव्यलिंग निष्फल जाय है ऐसैं मोक्षमार्ग प्रधानकरि भावलिंगही है। इहां कोई कहै है ऐसैं है तौ द्रव्यलिंग पहले काहेकूं धारणां ? ताकूं कहिये ऐसैं मानें तौ व्यवहारका लोप होय है तातैं ऐसैं माननां जो द्रव्यलिंग पहले धारना, ऐसा न जानना जो याहीतैं सिद्धि है भावलिंगकूं प्रधान मानि तिसकै सन्मुख उपयोग राखना द्रव्यलिंगकूं यत्नतैं साधना ऐसा श्रद्धान भला है ॥ ३४ ॥

आगैं पुद्गल द्रव्यकूं प्रधानकरि भ्रमण कहै हैं,—

पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं ।
गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीवो ॥ ३५ ॥

प्रतिदेशसमयपुद्गलायुः परिणामनामकालस्थम् ।
गृहीतोज्झितानि बहुशः अनंतभवसागरे जीवः ॥ ३५ ॥

अर्थ—इस जीवनैं या अनंत अपार भवसमुद्रविषैं लोकाकाशके जेते प्रदेश हैं तिनि प्रति समय समय अर पर्यायके आयुप्रमाण काल अर अपने जैसा योगकषायके परिणमन स्वरूप परिणाम अर जैसा गतिजाति आदि नामकर्मके उदयतैं भया नाम अर काल जैसा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तिनि विषैं पुद्गलके परमाणुरूप स्कध ते बहुतवार अनतवार ग्रहण किये अर छोड़े ॥

भावार्थ—भावलिंग विना लोकमैं जेते पुद्गल स्कध हैं ते ते सर्व ही ग्रहे अर छोडे तौऊ मुक्त न भया ॥ ३५ ॥

आगैं क्षेत्रकू प्रधान करि कहै हैं,—

तेयाला तिण्णि सया रज्जूण लोयखेत्तपरिमाणं ।
मुत्तूणट्ठ पएसा जत्थ ण डुरुडुल्लिओ जीवो ॥ ३६ ॥

त्रिचत्वारिंशत् त्रीणि शतानि रज्जूनां लोकक्षेत्रपरिमाणं ।
मुक्त्वाऽष्टौ प्रदेशान् यत्र न भ्रमितः जीवः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यहु लोक तीनसै तियालीस राजू परिमाण क्षेत्र है ताकै बीचि मेरुके तलै गोस्तनाकार आठ प्रदेश हैं तिनिकूं छोड़िकरि अन्य प्रदेश ऐसा न रह्या जामैं यह जीव नाही जनम्या मर्‍या ॥

भावार्थ—'डुरुडुल्लिओ' ऐसा प्राकृतमैं भ्रमण अर्थका धातुका आदेश है, अर क्षेत्र परावर्त्तनमैं मेरुकै तलैं आठ प्रदेश लोकके मध्यके हैं तिनिकूं जीव अपने प्रदेशनिके मध्यदेश उपजै हैं तहातैं क्षेत्रपरावर्त्तनका प्रारभ कीजिये है तातैं तिनिकूं पुनरुक्त भ्रमणमैं न गिणिये है ॥ ३६ ॥

आगैं यह जीव शरीरसहित उपजै मरै है तिस शरीरमैं रोग होय हैं तिनिकी संख्या दिखावै हैं:—

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं ।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया ॥ ३७॥

एकैकांगुलौ व्याधयः पएणवतिः भवंति जानीहि मनुष्यानां ।
अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः ॥

अर्थ—इस मनुष्यके शरीरविषैं एक एक अगुलमै छिनवै छिनवै रोग होय है तब कहो अवशेष समस्त शरीरविषैं केते रोग कहे ऐसै जानि ॥३७

आगैं कहै हैं हे जीव ! तिनि रोगनिका दु ख तैं सह्या,—

ते रोगा वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे ।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं ॥३८॥

ते रोगा अपि च सकलाः सोढास्त्वया परवशेण पूर्वभवे ।
एवं सहसे महायशः ! किं वा बहुभिः लपितैः ॥ ३८ ॥

हे महायश ! हे मुने ! तैं पूर्वोक्त सव रोगनिकूं पूर्वभवविषैं तौ परवश सहे, ऐसैं ही फेरि सहैगा, बहुत कहनेकरि कहा ? ·

भावार्थ—यह जीव पराधीन हुवा सर्व दु.ख सहै है जो ज्ञान भावना करै अर दु.ख आयाँ तासूं चिगै नाही ऐसैं स्ववशि सहै तो कर्मका नाश करि मुक्त हो जाय, ऐसै जानना ॥ ३८ ॥

आगैं कहै हैं जो-अपवित्र गर्भवासमैं भी वस्या,—

पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले ।
उयरे वसिओसि चिरं नवदसमासेहिं पत्तेहिं ॥३९॥

पित्तांत्रमूत्रफेफसयकृद्रुधिरखरिसकृमिजाले ।
उदरे उषितोऽसि चिरं नवदशमासैः प्राप्तैः ॥३९ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू ऐसे मलिन अपवित्र उदरकै विषै नव मास तथा दश मास प्राप्ति करि वस्या, कैसा है उदर जामैं पित्त अर आतनि-करि वेढ्या अर मूत्रका स्रवण अर फेफस कहिये जो रुधिर विना मेद फूलिजाय बहुरि कालिज्ज[1] कहिये कालजो बहुरि रुधिर बहुरि खरिस

1 पेटके दक्षिणभागमें जलका आधाररूप मांसपिंडकी थैली तथा मांसका विकार ।

कहिये जो अपक्व मलसूं मिल्या रुधिर श्लेष्म बहुरि कृमिजाल कहिये लट जीवनिके समूह ये सर्व पाइये, ऐसा स्त्रीका उदरविषैं बहुत बार वस्या ॥ ३९ ॥

फेरि याहीकूं कहै हैं;—

दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते ।
छद्दिखरिसाण मज्झे जठरे वसिओसि जणणीए ॥४०॥

द्विजसंगस्थितमशनं आहृत्य मातृभुक्तमन्नान्ते ।
छर्दिखरिसयोर्मध्ये जठरे उषितोऽसि जनन्याः ॥४०॥

अर्थ—हे जीव ! तू जननी जो माता ताके उदरगर्भविषैं वस्या तहां माताका अर पिताका भोगकै अंत छर्दि कहिये वमनका अन्न खरिस कहिये अपक्व मल रुधिरसूं मिल्या तिनिकै मध्य वस्या, कहा करि वस्या—माताका दांतनिकरि चाब्या तिनि दांतनिकै लग्या तिष्ठ्या औंठ्या जो भोजन माताके खाये पीछैं जो उदरमैं गया ताका रस आहारकरि वस्या ॥ ४० ॥

आगैं कहै हैं जो गर्भतैं नीसरि बालपणां ऐसा भोग्या;—

सिसुकाले य अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओसि तुमं ।
असुई असिया बहुसो मुणिवर ! बालत्तपत्तेण ॥४१॥

शिशुकाले च अज्ञाने अशुचिमध्ये लोलितोऽसि त्वम् ।
अशुचिः अशिता बहुशः मुनिवर ! बालत्वप्राप्तेन ॥४१॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू बालपणेके कालविषैं अज्ञान अवस्थामैं अशुचि अपवित्र स्थाननिविषैं अशुचिकै बीचि लौट्या बहुरि बहुतबार अशुचि वस्तु ही खाई, बालपणाकूं पाय ऐसी चेष्टा करी ॥

भावार्थ—इहा 'मुनिवर' ऐसा संबोधन है सो पूर्ववत् जानना, बाह्य आचरणसहित मुनि होय ताहीकूं इहा प्रधानपणैं उपदेश है जो बाह्य आचरण किया सो तौ बडा कार्य किया परन्तु भावविना यह निष्फल है तातैं भावके सन्मुख रहना, भावविना ये अपवित्र स्थान मिलै हैं ॥ ४१ ॥

आगैं कहै हैं—यह देह ऐसा है ताकूं विचारौ,—

मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसवत्तकुणिमदुग्गंधं ।
खरिसवसपूयखिब्भिस भरियं चिंतेहि देहउडं ॥ ४२ ॥

मांसास्थिशुक्रश्रोणितपित्तांत्रस्रवत्कुणिमदुर्गन्धम् ।
खरिसवसापूयकिल्बिषभरितं चिन्तय देहकुटम् ॥४२॥

अर्थ—हे मुने ! तू देहरूप घटकूं ऐसा विचारि, कैसा है देहघट—मास अर हाड अर शुक्र कहिये वीर्य अर श्रोणित कहिये रुधिर अर पित्तकहिये उष्टिविकार[1] अर अंत्र कहिये आतरे ऊरते तिनिकरि तत्काल मृतककी ज्यों दुर्गंध है, बहुरि कैसा है देहघट खरिस कहिये रुधिरसूं मिल्या अपकमल, वसा कहिये मेद अर पूय कहिये बिगड्या लोही राधि ये सर्व मलिन वस्तुनिकरि पूर्ण भर्‍या है ऐसा देहरूप घटकूं विचारि ॥

भावार्थ—यह जीव तौ पवित्र है शुद्धज्ञानमयी है अर ये देह ऐसा तामैं वसना अयोग्य है ऐसा जनाया है ॥ ४२ ॥

आगैं कहै हैं—जो कुटुम्बतै छूट्या सो नांही छूट्या भावतैं छूटे छूट्या कहिये,—

भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण ।
इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर ॥ ४३ ॥

---

१ उष्णविकार ।

भावविमुक्तः मुक्तः न च मुक्तः बांधवादिमित्रेण ।
इति भावयित्वा उज्झय ग्रन्थमाभ्यन्तरं धीर ! ॥४३॥

अर्थ—जो मुनि भावनिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त कहिये अर बांधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त न कहिये यातैं हे धीर ! मुनि तू ऐसा जानिकरि अभ्यन्तरकी वासनाकूं छोड़ि ॥

भावार्थ—जो बाह्य बांधव कुटुम्ब तथा मित्र इनिकूं छोड़िकरि निर्ग्रंथ भया अर अभ्यन्तरका ममत्व भावरूप वासना तथा इष्ट अनिष्ट विषैं रागद्वेष वासना न छूटी तौ ताकूं निर्ग्रंथ न कहिये,अभ्यन्तर वासना छूटे निर्ग्रंथ है तातैं यह उपदेश है जो अभ्यन्तर मिथ्यात्व कषाय छोड़ि भावमुनि होना ॥ ४३ ॥

आगैं कहै हैं जे पूर्वैं मुनि भये तिनिनैं भाव शुद्ध विना सिद्धि न पाई तिनिका उदाहरणमात्र नाम कहै हैं, तहां प्रथमही बाहुबलीका उदाहरण कहै हैं ;—

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर ! ।
अत्तावणेण जादो बाहुवली कित्तियं कालं ॥ ४४ ॥

देहादित्यक्तसंगः मानकषायेन कलुषितः धीर ! ।
आतापनेन जातः बाहुबली कियन्तं कालम् ॥४४॥

अर्थ—देखो, बाहुबली श्री ऋषभदेवका पुत्र सो देहादिकतैं छोड्या है परिग्रह जानैं ऐसा निर्ग्रंथ मुनि भया तौऊ मानकषाय करि कलुष परिणामरूप भया संता केतेयक काल आतापन योग करि तिष्ठ्या सिद्धि न पाई ॥

भावार्थ—बाहुबलीतैं भरतचक्रवर्ती विरोध करि युद्ध आरंभ्या तहां भरत अपमान पाया तापीछैं बाहुबली विरक्त होय निर्ग्रंथ मुनि भये परन्तु कछू मानकषायकी कलुषता रही जो भरतकी भूमिमैं मैं कैसैं रहूं तब कायोत्सर्ग योगकरि एकवर्षताईं तिष्ठे केवलज्ञान न पाया पीछैं कलुषता मिटी,

तब केवलज्ञान उपज्या, तातैं कहै हैं जो ऐसे महान पुरुष बडी शक्तिके धारकभी भावशुद्धिविना सिद्धि न पाई तब अन्यकी कहा कथा ? तातैं भाव शुद्ध करना यह उपदेश है ॥ ४४ ॥

आगैं मधुपिंगमुनिका उदाहरण कहै हैं: —

महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो ।
सवणत्तणं ए पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय॥४५॥

मधुपिंगो नाम मुनिः देहाहारादित्यक्तव्यापारः ।
श्रमणत्वं न प्राप्तः निदानमात्रेण भव्यनुत ! ॥ ४५ ॥

अर्थ—मधुपिंगनामा मुनि है सो कैसा भया देह आहारादिविषै छोड्या है व्यापार जानैं तोऊ नियानमात्रकरि भावश्रमणपणाकूं प्राप्त न भया ताहि भव्यजीवनिकरि नमने योग्य मुनि तू देखि ॥

भावार्थ—मधुपिंगलनामा मुनिकी कथा पुराणमैं है ताका संक्षेप ऐसा;—इस भरतक्षेत्रविषैं सुरम्यदेशमैं पोदनापुरका राजा तृणपिंगलका पुत्र मधुपिंगल था सो चारणयुगलनगरका राजा सुयोधनकी पुत्री सुलसाका स्वयंवरमैं आया था अर वहांही साकेतापुरीका राजा सगर आयाथा सो सगरकै मंत्री, मधुपिंगलकूं कपटकरि सामुद्रिक शास्त्रकूं नवीन बणाय दूषण दिया जो याके नेत्र पिंगल है मांजरा है जो याकूं कन्या वरैं सो मरणकूं प्राप्त होय तब कन्या सगरकै गलै वरमाला गेरी मधुपिंगलकूं वर्‍या नांही, तब मधुपिंगल विरक्त होय दीक्षा लई पीछैं कारणपाय सगरका मंत्रीका कपटकूं जाणि क्रोधकरि निदान किया जो मेरे तपका फल यह होहु "जन्मान्तरविषैं सगरके कुलकूं निर्मूल करूं" तापीछैं मधुपिंगल मरि करि महाकालासुरनामा असुर देव भया तब सगरकूं मंत्री सहित मारणेका उपाय देखता भया तब क्षीरकदंब ब्राह्मणका पुत्र पर्वत पापी याकूं मिल्या तब पशुनिकी हिंसारूप यज्ञका सहायी होय कही, सगर राजाकूं यज्ञका उपदेश करि यज्ञ कराय तेरा यज्ञका सहायी हूंगा

तब पर्वत सगर पासि यज्ञ कराया पशु होमे, तिस पापतैं सगर सातवैं नरक गया अर कालासुर सहायी भया सो यज्ञके कर्ताकूं स्वर्ग गये दिखाये। ऐसैं मधुपिंगल नामा मुनि निदानकरि महाकालसुर होय महापाप उपार्ज्या, तातैं आचार्य कहै हैं मुनि होय तोऊ भाव विगडे सिद्धिकू न पावै याकी कथा पुराणनितैं विस्तारतैं जाननी ॥

आगै वशिष्ठ मुनिका उदाहरण कहै हैं,—

अण्णं च वसिट्ठमुणि पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण ।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥४६॥

अन्यश्च वसिष्ठमुनिः प्राप्तः दुखं निदानदोषेण ।
तन्नास्ति वासस्थानं यत्र न भ्रमितः जीव ! ॥ ४६ ॥

अर्थ—वहुरि अन्य कहिये और एक वशिष्ठनामा मुनि निदानके दोषकरि दुखकू प्राप्तभया यातैं ऐसा लोकमैं वासस्थान नाही जामैं यहु जीव जन्ममरणसहित भ्रमणकूं प्राप्त नाही भया ॥

भावार्थ—वशिष्ठमुनिकी कथा ऐसैं है,—गंगा अर गंधवती दोऊ नदीका जहा संग भया है तहा जठरकौशिकनामा तापसीकी पल्ली है तहां एक वशिष्ट नामा तापसी पचाग्नितैं तपै था तहा गुणभद्र वीरभद्र नामा दोय चारणमुनि आये तिनि वशिष्ट तापसकूं कही जो तू अज्ञानतप करै है यामैं जीवनिकी हिंसा होय है, तब तापस प्रत्यक्ष हिंसा देखि अर विरक्त होय जैनदीक्षा लई मासोपवाससहित आतापनयोग स्थाप्या, तिस तपके माहात्म्यतैं सात व्यन्तरदेव आय कही, हमकूं आज्ञा द्यो सोही कराँ, तब वशिष्ठ कही अबारतौ मेरै कछू प्रयोजन नांही जन्मांतरमैं तुमकू यादि करूंगा। पाछैं वशिष्ठ मथुरापुरी आय मासोपवाससहित आतापन जोग स्थाप्या ताकूं मथुरापुरीके राजा उग्रसेनने देखि भक्ति थकी या विचारी जो याकूं मैं पारणा कराऊंगा ऐसैं

आगै कहै हैं—भावरहित चौरासीलाख योनिमैं भ्रमैं हैं,—

सो णत्थि तं पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।
भावविरओ वि सवणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओजीवो ॥४७॥

सः नास्ति त्वं प्रदेशः चतुरशीतिलक्षयोनिवासे ।
भावविरतःअपि श्रमणः यत्र न भ्रमितः जीवः ॥४७॥

अर्थ—या ससारमैं चौरासीलाख योनि तिनिके वासमैं ऐसा प्रदेश नांही है जामैं यह जीव द्रव्यलिंग मुनि होय करि भी भावरहित भया सता न भ्रमण किया ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारि निर्ग्रंथ मुनि होय करि शुद्धस्वरूपका अनुभवरूप भावविना यह जीव चौरासी लाख योनिमैं भ्रमताही रह्या, ऐसा ठिकानां नाही रह्या जामैं जनम्या मऱ्या न होय,, ऐसे जानना ॥

आगैं चौरासी लाख योनिका भेद कहै हैं,-पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इत्तरनिगोद, ये तौ सात सात लाख हैं ते बयालीस लाख भये; बहुरि वनस्पति दश लाख हैं, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, दोय दोय लाख हैं, पन्चेन्द्रिय तिर्यंच च्यार लाख, देव च्यार लाख, नारकी च्यार लाख, मनुष्य चौदह लाख। ऐसैं चौरासी लाख हैं। ये जीवनिके उपजनेके ठिकानें जानने ॥ ४७ ॥

आगैं कहै हैं जो—द्रव्यमात्रकरि लिंगी न होय, भावकरि लिंगी होय है;—

भावेण होइ लिंगी णहु लिंगी होइ दव्वमित्तेण ।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण ॥४८॥

भावेन भवति लिंगी न हि लिंगी भवति द्रव्यमात्रेण ।
तस्मात् कुर्याः भावं किं क्रियते द्रव्यलिंगेन ॥ ४८ ॥

अर्थ—लिंगी होय है सो भावलिंगहीतैं होय है द्रव्यलिंगकरि लि-

गी नाही होय है यह प्रकट है, तातैं भावलिगही धारण करना. द्रव्य लिंगकरि कहा कीजिये ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं जो—निवाय कहा कहिये भावलिंग विना लिंगी नामही नाही होय जातैं यह प्रकट है. भाव शुद्ध न देखै तब लोक ही कहै जो काहेका मुनि है कपटी है तातैं द्रव्यलिंगकरि कछू साध्य नाही. भावलिंगही धारना ॥ ४८ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करनेकूं द्रव्यलिंगधारककै उलटा उपद्रव भया. ताका उदाहरण कहै हैं:—

दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण ।
जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरये ॥४९॥

दण्डकनगरं सकलं दग्ध्वा अभ्यन्तरेण दोषेण ।
जिनलिंगेनापि बाहुः पतितः सः रौरवे नरके ॥४९॥

अर्थ—देखो, बाहुनामा मुनि बाह्य जिनलिंगकरि सहित था तौऊ अभ्यंतरके दोषकरि समस्त दंडकनामा नगरकूं दग्ध किया अर सप्तम पृथ्वीका रौरवनामा बिलमैं पड्या ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारि किछू तप करै ताकरि किछू सामर्थ्य बधै तब कछू कारण पाय क्रोध करि आपका अर परका उपद्रव करनेंका कारण बनावै तातैं द्रव्यलिंग भावसहित धारणा ही श्रेष्ठ है अर केवल द्रव्यलिंग तौ उपद्रवका कारण होय है, ऐसैं याका उदाहरण बाहु मुनिका बताया ताकी कथा ऐसैं,—दक्षिणदिशामें कुंभकारकटकनगरविषैं दंडकनामा राजा, ताकै बालकनाम मंत्री, तहां अभिनंदन आदि पांचसौ मुनि आये, तिनिमैं एक खडकनामा मुनि था, तानैं बालकनाम मंत्रिकूं वादविषैं जीत्या, तब मंत्री क्रोधकरि एक भांडकूं मुनिका रूप कराय राजाकी राणी सुव्रता सहित रमता राजाकूं दिखाया, अर कही जो देखो

राजाकै ऐसी भक्ति है जो अपनी स्त्री भी दिगवरकू रमशानै दई है तब राजा दिगम्बरनितैं क्रोध करि पाचसै मुनिनिकूं घाणीमै पिलवाया,ते मुनि उपसर्ग सहि परमसमाधि करि सिद्धि प्राप्त हुये। पीछै तिसनगर बाहुनामा मुनि आया ताकूं लोकनि मनैं किया जो इहा राजा दुष्ट है सो तुम नगरमै प्रवेश मति करौ आगैं पाचसै मुनि घाणीमैं पेल्या है सो तुमकू भी तैसैंही करैगा। तब लोकनिके वचनकरि बाहु मुनिकू क्रोध उपज्या तब अशुभतैजससमुद्घात करि राजाकूं मत्री सहित सर्वनगरकूं भस्म किया। राजा मंत्री सातवै नरक रौरवनामा बिलामैं पडे तहाही बाहुमुनिभी मरि करि रौरवबिलामैं पड्या। ऐसै द्रव्यलिंगमैं भावके दोषतै उपद्रव होय है तातें भावलिंगका प्रधान उपदेश है ॥ ४९ ॥

आगें इसही अर्थपरि दीपायनमुनिका उदाहरण कहै हैं,

अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्टो।
दीवायणुत्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ ॥ ५० ॥

अपरः अपि द्रव्यश्रमणः दर्शनवरज्ञानचरणप्रभ्रष्टः।
दीपायन इति नाम अनंतसांसारिकः जातः ॥ ५० ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो पहलै बाहु मुनि कह्या तैसैं ही और भी दीपायननामा द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतैं भ्रष्ट भया संता अनंतसंसारी भया ॥

भावार्थ—पूर्ववत् याकी कथा संक्षेपतैं ऐसी, नवमा बलभद्र श्रीनेमिनाथतीर्थंकरकूं पूछी जो स्वामिन्! या द्वारिकापुरी समुद्रमैं है सो याकी स्थिति केतेककाल है ? तब भगवान् कही रोहिणीको भाई दीपायन तेरो मामो बारह वर्ष पीछैं मद्यका निमित्तकरि क्रोधकरि या पुरीकूं दग्ध करिसी, ऐसे भगवानके वचन सुनि निश्चयकरि दीक्षा ले पूर्वदेशनैं गया, बारह वर्ष व्यतीत करनेंकूं तप करना आरंभ्या, अर बलभद्र

सागरदत्तनामा मुनि ऋद्धिधारीकूं बनमैं पूजनेंकू जाय हैं, तब शिवकुमार मुनि पासि जाय अपना पूर्वभव सुनि संसारसूं विरक्त होय दीक्षा लई, अर दृढधरनामा श्रावकके घर प्रासुक आहार लिया, ता पीछैं स्त्रीनिके निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालता सता बारह वर्ष ताईं तपकरि अतसन्यास मरणकरि ब्रह्मकल्पविषैं विद्युन्मालीदेव भया, तहांतैं चयकरि जंबूकुमार भया सो दीक्षा लेय केवलज्ञान पाय मोक्ष गया। ऐसैं शिवकुमार भावमुनि मोक्ष पाई, याकी विस्तारसहित कथा जंबूचरित्रमैं है तहातैं जाननीं; ऐसैं भाव लिंग प्रधान है ॥ ५१ ॥

आगैं शास्त्र भी पढै अर सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न होय तौ सिद्धिकूं न पावै, ताका उदाहरण अभव्यसेन का कहै हैं;—

केवलिजिणपण्णत्तं एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥५२॥

केवलिजिनप्रज्ञप्तं एकादशांगं सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितः अभव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः ॥ ५२ ॥

अर्थ—अभव्यसेननामा द्रव्यलिंगी मुनि है सो केवली भगवानका प्ररूप्या ग्यारह अग पढ्या तथा ग्यारह अंगकूं पूर्ण श्रुतज्ञान भी कहिये जातैं एता पढ्याकूं अर्थ अपेक्षा पूर्ण श्रुतज्ञान भी होय जाय है, तहा अभव्यसेन एता पढ्या तोऊ भावश्रमणपणाकूं प्राप्त न भया ॥

भावार्थ—इहा ऐसा आशय है जो कोई जानैगा बाह्य क्रिया मात्रतैं तौ सिद्धि नाही अर शास्त्रके पढनेंकरि तौ सिद्धि है तौ यह भी जानना

१—मुद्रित सस्कृत सटीक प्रतिमैं यह गाथा इस प्रकार है,—
अंगाइं दस य दुण्णि य चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।
पढिओ अ भव्वसेणो ण भावसवणत्तण पत्तो ॥ ५२ ॥
अंगानि दश च द्वे च चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितश्च भव्यसेनः न भावश्रमणत्व प्राप्तः ॥ ५२ ॥

सत्य नाही जातैं शास्त्र पढने मात्रतैभी सिद्धि नांही है-अभव्यसेन द्रव्य-मुनिभी भया अर ग्यारह अगभी पढ्या तौऊ जिनवचनकी प्रतीति न भई यातैं भावलिंग न पाया। अभव्यसेनकी कथा पुराणनिमैं प्रसिद्ध है तहांतैं जाननी ॥ ५२ ॥

आगैं शास्त्र पढ्या विना शिवभूति मुनि तुषमाषकूं घोखता ही भावकी विशुद्धिकूं पाय मोक्ष पाई ताका उदाहरण कहै हैं,—

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ॥ ५३ ॥

तुषमाषं घोषयन् भावविशुद्धः महानुभावश्च।
नाम्ना च शिवभूतिः केवलज्ञानी स्फुटं जातः ॥ ५३ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-शिवभूति मुनि है सो शास्त्र न पढ्या तुष माष ऐसा शब्दकू घोखता संता भावकरि विशुद्धितातैं महानुभाव होयकरि केवल ज्ञान पाया यह प्रकट है ॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि शास्त्र पढै ही सिद्धि है सो ऐसैं भी नाही, शिवभूति मुनि तुषमाष ऐसा शब्द मात्रही घोखता भावनिकी विशुद्धतातैं केवलज्ञान पाया, याकी कथा ऐसैं,—कोई शिवभूति नामा मुनि था सो गुरुनिपासि शास्त्र पढ़ै सो धारणा होय नाही, तब गुरुनि यह शब्द पढाया जो "मा रुष मा तुष" सो या शब्दकूं घोखने लगा। याका अर्थ यह जो रोष मति करै तोष मति करै ॥

भावार्थ–राग द्वेष मति करै यातैं सर्व सिद्धि है। तब यह भी शुद्ध यादि न रह्या तब 'तुषमाष' ऐसा पाठ घोखने लगा, दोष पदके 'रुकार 'तुकार' विस्मरण होय गये अर तुष माष ऐसा यादि रह्या ताकूं घोखता विचरै। तब कोई एक स्त्री उडदकी दालि धोवै थी ताकूं काहूनैं

---

१ 'माकार, ऐसा पाठ सुसंगत है।

पूछी, तू कहा करै है-तब वानैं कही-तुप अर माप भिन्न न्यारे न्यारे करूं हूं। तब या मुनिनैं सुनि तुप माप शब्दका भावार्थ यह जान्या जो यह शरीर तौ तुप है अर यह आत्मा माप है, दोऊ भिन्न हैं न्यारे न्यारे हैं, ऐसा भाव जानि आत्माका अनुभव करने लगा, चिन्मात्र शुद्ध आत्माकूं जानि तामैं लीन भया, तब घाति कर्मका नाशकरि केवलज्ञान उपजाया। ऐसैं भावनिकी विशुद्धितातैं सिद्धि भई जानि भाव शुद्ध करना, यह उपदेश है ॥ ५३ ॥

आगै य ही अर्थकूं सामान्यकरि कहै हैं,

भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीय णियरं णासइ भावेण दव्वेण ॥ ५४ ॥

भावेन भवति नग्नः बहिर्लिंगेन किं च नग्नेन।
कर्मप्रकृतीनां निकरं नाशयति भावेन द्रव्येण ॥ ५४ ॥

अर्थ—भावकरि नग्न होय है बाह्य नग्नलिंगकरि कहा कार्य होय है. नाही होय है जातैं भाव सहित द्रव्यलिंगकरि कर्मप्रकृतिके समूहका नाश होय है ॥

भावार्थ—आत्माकै कर्मप्रकृतिका नाशकरि निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है, सो यह कार्य द्रव्यलिंग ही करि तौ नांही होय है, भावसहित द्रव्यलिंग भये कर्मकी निर्जरा नामा कार्य होय है, केवल द्रव्यलिंगकरि तौ न होय है, तातैं भावसहित द्रव्यलिंग धारणां यह उपदेश है ॥५४॥

आगै याही अर्थकू दृढ करै है;—

णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥ ५५ ॥

नग्नत्वं अकार्यं भावरहितं जिनैः प्रज्ञप्तम्।
इति ज्ञात्वा नित्यं भावयेः आत्मानं धीर ! ॥ ५५ ॥

अर्थ—भावरहित नग्नपणां है सो अकार्य है कछू कार्यकारी नाही यह जिनभगवाननैं कह्या है, ऐसैं जानिकरि हे धीर! हे धैर्यवान मुने निरन्तर नित्य आत्माहीकूं भाय ॥

भावार्थ—आत्माकी भावना विना केवल नग्नपणां कछू कार्य करने वाला नाहीं तातैं चिदानन्दस्वरूप आत्माहीकी भावना निरन्तर करणीं, या सहित नग्नपणा सफल है ॥ ५५ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—भावलिंगकूं प्रधानकरि निरूपण किया सो भावलिंग कैसा है? ताका समाधानकू भावलिंगका निरूपण करै हैं,—

देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ॥ ५६ ॥

देहादिसंगरहितः मानकषायैः सकलपरित्यक्तः ।
आत्मा आत्मनि रतः स भावलिंगी भवेत् साधु ॥५६॥

अर्थ—भावलिंगी साधु ऐसा होय है—देह आदिक जे परिग्रह तिनितैं रहित होय बहुरि मान कषायकरि रहित होय बहुरि आत्मा विषैं लीन होय सो आत्मा भावलिंगी है ॥

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक परिणामकू भाव कहिये है तिसमयी लिंग कहिये चिह्न तथा लक्षण तथा रूप होय सो भावलिंग है। तहां आत्मा अमूर्तीक चेतनारूप है ताका परिणाम दर्शन ज्ञान है तिसमैं कर्मके निमित्ततैं बाह्य तौ शरीरादिक मूर्तीक पदार्थका संबंध है अर अंतरंग मिथ्यात्व अर रागद्वेष आदि कषायनिका भाव है। तातैं कहै हैं—जो बाह्य तौ देहादिक परिग्रहतैं रहित अर अंतरंग रागादिक परिणामविषैं अहंकाररूप मानकषाय परभावनिविषैं आपा मानना तिस भावतैं रहित होय, अर अपना दर्शनज्ञानरूप चेतनाभाव ताविषैं लीन होय सो भाव लिंग है, यह भाव होय सो भावलिंगी साधु है ॥ ५६ ॥

आगैं याही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै हैं,—

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥ ५७ ॥

ममत्वं परिवर्जामि निर्ममत्वमुपस्थितः ।
आलंबनं च मे आत्मा अवशेषानि व्युत्सृजामि ॥५७॥

अर्थ—भावलिंगी मुनिके ऐसे भाव होय है-मैं परद्रव्य अर परभावनितैं ममत्व कहिये अपनां माननां ताकू छोड़ूहूँ वहुरि मेरा निजभाव ममत्वरहित है ताकू अंगीकार करि तिष्ठू हूँ, अब मेरै आत्माहीका अवलबन है और सर्वहीकूं छोडू हूँ॥

भावार्थ—सर्व परद्रव्यनिका आलंबन छोड़ि अपने आत्म स्वरूप विषैं तिष्ठै ऐसा भावलिंग है॥ ५७॥

आगैं कहै हैं जो-ज्ञान दर्शन संयम त्याग संवर योग ये भाव भावलिंगी मुनिकै होय हैं ते अनेक है तौऊ आत्माही है तातैं इनितैं भी अभेदका अनुभव करै है,—

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ ५८ ॥

आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्रे च ।
आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे संवरे योगे ॥ ५८ ॥

अर्थ—भावलिंगी मुनि विचारै है जो-मेरै ज्ञानभाव प्रगट है ताविषैं आत्माहीकी भावना है कछू ज्ञान न्यारा वस्तु नांही है ज्ञान है सो आत्मा ही है, तैसैं दर्शनविषैं भी आत्माही है, बहुरि चारित्र है सो ज्ञानविषैं थिरता रहना है सो या विषै भी आत्माही है, बहुरि प्रत्याख्यान आगामी परद्रव्यका सबध छोड़ना है सो या भावविषै आत्माही है, बहुरि सवर परद्रव्यके भावरूप न परिणमनेका है सो या भावविषैं भी मेरै आत्माही

है, वहुरि योग नाम एकाग्र चितारूप समाधि ध्यानका है सो या भाव-विषैं भी मेरैं आत्माही है ॥

भावार्थ—ज्ञानादिक कछू न्यारे पदार्थ तौ है नांही, आत्माहीके भाव है सञ्ज्ञादिकके भेदतैं न्यारे कहिये हैं, तहा अभेददृष्टिकरि देखिये तब ये सर्वभाव आत्माही हैं तातैं भावलिंगी मुनिके अभेद अनुभवमैं विकल्प नाही है; तातैं निर्विकल्प अनुभवतैं सिद्धि है यह जाणि ऐसैं करै है ॥ ५८ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते कहै हैं,—

अनुष्टुप् श्लोक।

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥५९॥

एकः मे शाश्वतः आत्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः।
शेषाः मे बाह्याः भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः ॥५९॥

अर्थ—भावलिंगी विचारै है जो ज्ञान दर्शन जाका लक्षण ऐसा अर शाश्वता नित्य ऐसा आत्मा है सोही एक मेरा है बाकी भाव हैं ते मोतैं बाह्य हैं ते सर्वही सयोगस्वरूप हैं परद्रव्य हैं ॥

भावार्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है सो तौ मेरा रूप है एक स्वरूप है अर अन्य परद्रव्य हैं ते मोतैं बाह्य हैं सर्व सयोगस्वरूप हैं, भिन्न हैं, यह भावना भावलिंगी मुनिकै है ॥ ५९ ॥

आगैं कहै हैं जो मोक्ष चाहै है सो ऐसैं आत्माकी भावना करै,

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छसि सासयं सुक्खं ॥६०॥

भावय भावशुद्धं आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव।
लघु चतुर्गतिं च्युत्वा यदि इच्छसि शाश्वतं सौख्यम् ॥६०॥

अर्थ—हे मुनिजन हो ! जो च्यारगतिरूप संसारतै छुटिकरि शीघ्र शाश्वता सुखरूप मोक्ष तुम चाहोहौ तौ भावकरि शुद्ध जैसैं होय तैसैं अतिशयकरि विशुद्ध निर्मल आत्माकूं भावौ ॥

भावार्थ—जो ससारतैं निवृत्तिकरि मोक्ष चाहोहौ तौ द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मतैं रहित शुद्ध आत्माकूं भावौ ऐसा उपदेश है ॥ ६० ॥

आगैं कहै हैं जो आत्माकूं भावै सो याका स्वभावकू जाणि भावै सो मोक्ष पावै;—

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो ।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥६१॥

यः जीवः भावयन् जीवस्वभावं सुभावसंयुक्तः ।
सः जरामरणविनाशं करोति स्फुटं लभते निर्वाणम् ॥६१॥

अर्थ—जो भव्यपुरुष जीवकूं भावता संता भले भावकरि संयुक्त भया जीवका स्वभावकूं जाणि करि भावै सो जरा मरणका विनाशकरि प्रगट निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—जीव ऐसा नाम तौ लोकमैं प्रसिद्ध है परन्तु याका स्वभाव कैसा है ऐसा लोककै यथार्थ ज्ञान नाहीं अर मतातरके दोषतैं याका स्वरूप विपर्यय होय रह्या है तातैं याका यथार्थ स्वरूप जानि भावै हैं ते संसारतैं निवृत्त होय मोक्ष पावै हैं ॥ ६१ ॥

आगै जीवका स्वरूप सर्वज्ञदेव कह्या है सो कहै हैं;—

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो ॥ ६२ ॥

जीवः जिनप्रज्ञप्तः ज्ञानस्वभावः च चेतनासहितः ।
सः जीवः ज्ञातव्यः कर्मक्षयकरणनिमित्तः ॥ ६२ ॥

अर्थ– जिन सर्वज्ञ देव जीवका स्वरूप ऐसा कह्या है;—जीव है सो चेतनासहित है बहुरि ज्ञानस्वभाव है, ऐसा जीवका भावना कर्मका क्षयके निमित्त जाननां ॥

भावार्थ—जीवका चेतनासहित विशेषण कियातैं तौ चार्वाक जीवकूं चेतनासहित न मानै है ताका निराकरण है। बहुरि ज्ञानस्वभाव-विशेषणतैं सांख्यमती ज्ञानकूं प्रधान धर्म मानै है जीवकूं उदासीन नित्य चेतनारूप मानै है ताका निराकरण है, तथा नैयायिकमती गुण गुणीका भेद मानि ज्ञानकूं सदा भिन्न मानै है ताका निराकरण है। बहुरि ऐसा जीवका स्वरूपका भावना कर्मका क्षयकै निमित्त होय है, अन्य प्रकार भया मिथ्याभाव है ॥ ६२ ॥

आगै कहै हैं जो जे पुरुष जीवका अस्तित्व मानैं है ते सिद्ध होय हैं,—

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमतीदा ॥ ६३ ॥

येषां जीवस्वभावः नास्ति अभावः च सर्वथा तत्र।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धाः वचोगोचरातीताः ॥ ६३ ॥

अर्थ—जिनि भव्यजीवनिकै जीवनामा पदार्थ सद्भावरूप है अर सर्वथा अभावरूप नांही है ते भव्यजीव देह तैं भिन्न ऐसे सिद्ध होय हैं, ते कैसे हैं सिद्ध—वचनगोचरतैं अतीत हैं ॥

भावार्थ—जीव है सो द्रव्यपर्यायस्वरूप है सो कथंचित् अस्तित्व-रूप है कथंचित् नास्तिस्वरूप है तहा पर्याय अनित्य है या जीवकै कर्मके निमित्ततैं मनुष्य तिर्यंच देव नारक पर्याय होय हैं ताका कदाचित् अभाव देखि जीवका सर्वथा अभाव मानैं है। ताके सम्बोधनकूं ऐसा कह्या है-जो जीवका द्रव्यदृष्टिकरि नित्य स्वभाव है, पर्यायका अभाव होतैं

सर्वथा अभाव न मानै है सो देहतैं भिन्न होय सिद्ध होय है, ते सिद्ध वचनगोचर नाही है, अर जे देहकूं विनसता देखि जीवका सर्वथा नाश मानैं हैं ते मिथ्यादृष्टि हैं, ते सिद्ध कैसैं होय, न होय ॥६३॥

आगै कहै हैं जो जीवका स्वरूप वचनकै अगोचर है अर अनुभवगम्य है सो ऐसा है;—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं[1] ।
जाणमलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ६४ ॥

अरसमरूपमगंधं अव्यक्तं चेतनागुणं अशब्दम् ।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवं अनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥६४॥

अर्थ—हे भव्य ! तू जीवका स्वरूप-ऐसा जानि-कैसा है अरस कहिये पंच प्रकार खाटो मीठो कडो कषायलो खारो रसकरि रहित है बहुरि कालो पीलो लाल सुफेद हर्‍यो या प्रकार अरूप कहिये पांच प्रकार रूप करि रहित है; बहुरि दोय प्रकार गंधकरि रहित है बहुरि अव्यक्त कहिये इन्द्रियनिके गोचरव्यक्त नांही है, बहुरि चेतनागुण है जामैं, बहुरि अशब्द कहिये शब्दकरि रहित है, बहुरि अलिंगग्रहण कहिये जाका कोऊ चिह्न इन्द्रियद्वारै ग्रहणमैं आता नाही, अर अनिर्दिष्ट संस्थान कहिये चौकूंणा गोल आदि वछू आकार जाका कह्या जाता नांही ऐसा जीव जाणौं ॥

भावार्थ—रस रूप गंध शब्द येतौ पुद्गलके गुण है-तिनिका निषेधरूप जीव कह्या, बहुरि अव्यक्त, अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कह्या, सो ये भी पुद्गलके स्वभावकी अपेक्षाकरि निषेधरूपही जीव कह्या, अर चेतनागुण कह्या सो ये जीवका विधिरूप कह्या। सो निषेध अपेक्षा तौ वच-

१—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'चेयणागुणसमद्द' ऐसा प्राकृत पाठ है जिसका "चेतनागुणसमार्द्र" ऐसा संस्कृत है, वचनिका प्रतियोंमें उपरिलिखित पाठ है।

नके अगोचर जानना अर विधि अपेक्षा स्वसंवेदगोचर जाननां, ऐसैं जीवका स्वरूप जानि अनुभवगोचर करनां। यह गाथा समयसार प्रवचनसार ग्रंथमैं भी है सो याका व्याख्यान टीकाकार विशेषकरि कह्या है सो तहातैं जाननां ॥ ६४ ॥

आगैं जीवका स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावनां कह्या सो वह ज्ञानके प्रकार भावना सो कहै हैं;—

भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ ॥६५॥

भावय पंचप्रकारं ज्ञानं अज्ञाननाशनं शीघ्रम्।
भावनाभावितसहितः दिवशिवसुखभाजनं भवति ॥६५॥

अर्थ—हे भव्यजन! तू यह ज्ञान पांच प्रकार भाय, कैसा है यह ज्ञान—अज्ञानका नाशकरनेंवाला है, कैसा भया भाय, भावनाकरि भावित जो भाव तिमसहित भाय, बहुरि कैसा भया शीघ्र भाय, यातें तू दिव कहिये स्वर्ग शिव कहिये मोक्ष ताका भाजन होय ॥

भावार्थ—यद्यपि ज्ञान जाननस्वभावकरि एक प्रकार है तौऊ कर्मके क्षयोपशम क्षयकी अपेक्षा पच प्रकार भया है तामैं मिथ्यात्वभावकी अपेक्षाकरि मतिश्रुत अवधि ये तीन मिथ्याज्ञानभी कहाये हैं, तातैं मिथ्याज्ञानका अभाव करनेकूं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञानस्वरूप पंच प्रकार सम्यग्ज्ञान जानि तिनिकूं भावना, परमार्थ विचार तैं ज्ञान एकही प्रकार है, यह ज्ञानकी भावना स्वर्गमोक्षकी दाता है ॥ ६५ ॥

आगैं कहै हैं जो—पढ़नां सुननां भी भावविना कछू है नांही,—

पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥ ६६ ॥

पठितेनापि किं क्रियते किं वा श्रुतेन भावरहितेन।
भावः कारणभूतः सागारानगारभूतानाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—भावरहित पढना सुनना तिनिकरि कहा कीजिये कछू भी कार्यकारी नांहीं है तातैं श्रावकपणा तथा मुनिपणा इनिका कारणभूत भावही है॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमैं एकदेश सर्वदेश व्रतनिकी प्रवृत्तिरूप मुनिश्रावकपणा है सो दोऊका कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं, तहां भावविना व्रतक्रियाकी कथनी कछू कार्यकारि नाहीं है, तातैं ऐसा उपदेश है जो भावविना पढ़ना सुनना आदिकरि कहा कीजिये, केवल खेदमात्र है, तातैं भावसहित कछू करो सो सफल है। इहां ऐसा आशय है जो कोऊ जानेगा पढ़ना सुननांही ज्ञान है सो ऐसैं नाहीं है, पढ़ि सुनिकरि आपकूं ज्ञानस्वरूप जानि अनुभव करैं तब भाव जानिये है, तातैं बार बार भावनाकरि भाव लगायेही सिद्धि है॥ ६६॥

आगैं कहै हैं जो—बाह्य नग्नपणांही करि ही सिद्धि होय तौ नग्न तौ सारेही होय हैं;—

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तण पत्ता॥ ६७॥

द्रव्येण सकला नग्नाः नारकतिर्यंचश्च सकलसंघाताः।
परिणामेन अशुद्धाः न भावश्रमणत्वं प्राप्ताः॥६७॥

अर्थ—द्रव्यकरि बाह्य तौ सकल प्राणी नागा होय हैं नारकी जीव अर तिर्यंच जीव तौ निरन्तर वस्त्रादिककरि रहित नागाही रहैं हैं, बहुरि सकलसंघात कहनेतैं अन्य मनुष्य आदिक भी कारण पाय नग्न होय हैं तौऊ परिणामकरि अशुद्ध हैं तातैं भावश्रमणपणांकूं प्राप्त नांही भये॥

भावार्थ—जो नग्न रहे ही मुनिलिंग होय तौ नारकी तिर्यंच आदि सकल जीवसमूह नग्न रहैं हैं ते सर्वही मुनि ठहरै तातै मुनिपणां तौ भाव शुद्ध भयेही होय है, अशुद्ध भाव होय तेतै द्रव्यकरि नग्न भी होय तौ भावमुनिपणां न पावै है ॥ ६७ ॥

आगै याही अर्थकूं दृढ़ करनेंकूं केवल नग्नपणां निष्फल दिखावै हैं,—

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमई।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ॥६८॥

नग्नः प्राप्नोति दुःखं नग्नः संसारसागरे भ्रमति ।
नग्नः न लभते बोधिं जिनभावनावर्जितः सुचिरं ॥६८॥

अर्थ—नग्न है सो सदा दुःख पावै है, बहुरि नग्न है सो सदा संसारसमुद्रमैं भ्रमै है, बहुरि नग्न है सो बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप स्वानुभव ताहि न पावै है, कैसा है नग्न—जो जिन भावना-करि वर्जित है सो ॥

भावार्थ—जिनभावना जो सम्यग्दर्शन भावना तिसकरि वर्जित जो जीव है सो नग्न भी रहै तौ बोधि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताकूं न पावै है याहीतैं संसारसमुद्रमैं भ्रमता संसारहीमैं दुःखकूं पावै है, तथा वर्त्तमानमैं भी जो पुरुष नागा होय है सो दुःखहीकूं पावै है; सुख तौ भावमुनि नागा होय ते ही पावैं हैं ॥ ६८ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृढ़ करनेंकूं कहै हैं जो द्रव्यनग्न होय मुनि कहावै ताका अपयश होय है,—

अयसाण भायणेण य किं ते णग्गेण पावमलिणेण ।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण ॥ ६९ ॥

अयशसां भाजनेन किं ते नग्नेन पापमलिनेन ।
पैशून्यहासमत्सरमायाबहुलेन श्रमणेन ॥ ६९ ॥

अर्थ—हे मुने! तेरे ऐसे नग्नपणांकरि तथा मुणिपणाकरि कहा साध्य है, कैसा है—पैशून्य कहिये अन्यका दोष कहनेंका स्वभाव, हास्य कहिये अन्यका हास्य करना, मत्सर कहिये आपसमानतैं ईर्षा राखि परकूं नीचा पाडनेकी बुद्धि, माया कहिये कुटिल परिणाम, ये भाव हैं बहुत प्रचुर जामैं, याहीतैं कैसा है पापकरि मलिन है, याहीतैं कैसा है अयश कहिये अपकीर्त्ति तिनिका भाजन है ॥

भावार्थ—पैशून्य आदि पापनिकरि मैला ऐसा नग्नपणास्वरूप मुनिपणाकरि कहा साध्य है? उलटा अपकीर्त्तिका भाजन होय व्यवहार धर्मकी हास्य करावनहार होय है; तातैं भावलिंगी होना योग्य है-यह उपदेश है ॥ ६९ ॥

आगैं ऐसैं भावलिंगी होनां यह उपदेश करै है,—

पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो ।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियई ॥ ७० ॥

प्रकटय जिनवरलिंगं अभ्यन्तरभावदोषपरिशुद्धः ।
भावमलेन च जीवः बाह्यसंगे मलिनयति ॥ ७० ॥

अर्थ—हे आत्मन्! तू अभ्यन्तर भावदोषनिकरि अत्यंत शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग कहिये बाह्य निर्ग्रन्थलिंग प्रगटकरि, भावशुद्धि विनां द्रव्य-लिंग विगडि जायगा जासैं भावमलिनकरि जीव है सो बाह्य परिग्रहविषैं मलिन होय है ॥

भावार्थ—जो भाव शुद्धकरि द्रव्यलिंग धारै तौ भ्रष्ट न होय अर भाव मलिन होय तौ बाह्य भी परिग्रहकी संगतिकरि द्रव्यलिंगभी विगाड़ै तातैं प्रधानपणैं भावलिंगहीका उपदेश है, विशुद्ध भाव विना बाह्य भेष धारणां योग्य नांही ॥ ७० ॥

आगैं कहै हैं जो भावरहित नग्न मुनि है सो हास्यका स्थान है—

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥ ७१ ॥

धर्मे निप्रवासः दोषावासः च इक्षुपुष्पसमः।
निष्फलनिर्गुणकारः नटश्रमणः नग्नरूपेण ॥ ७१ ॥

अर्थ—धर्म कहिये अपनां स्वभाव तथा दशलक्षणस्वरूप तिसविषै जाका वास नाही सो जीव दोषनिका आवास है अथवा दोष जामैं वसैं है सो इक्षुके फूल समान है जाकै कछू फल नांही अर गधादिक गुण नाही सो ऐसा मुनि वो नग्नरूपकरि नटश्रमण कहिये नाचनेंवाला भांडका स्वाग सारिखा है ॥

भावार्थ—जाकै धर्म वासना नाही तातैं क्रोधादिक दोष ही वसै अर दिगंबररूप धारै तौ वह मुनि इक्षुके फूल सारिखा निर्गुण अर निष्फल है ऐसे मुनिकै मोक्षरूप फल न लागै, अर सम्यग्ज्ञानादिक गुण जामैं नाही तब नग्न भया भांडकासा स्वाग दीखै, सो भी भांड नाचै तब श्रृंगारादिक करि नाचैं तौ शोभा पावै, नग्न होय नाचै तब हास्यकूं पावै तैसें केवल द्रव्य नागा हास्यका स्थानक है ॥ ७१ ॥

आगैं इसही अर्थका समर्थनरूप कहै हैं जो—द्रव्यलिंगी बोधि समाधि जैसी जिनमार्गमैं कही है तैसी नांही पावै है;—

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
न लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले ॥७२॥

ये रागसंयुक्ताः जिनभावनारहितद्रव्यनिर्ग्रंथाः।
न लभंते ते समाधिं बोधिं जिनशासने विमले ॥७२॥

अर्थ—जे मुनि राग कहिये अभ्यंतर परद्रव्यसूं प्रीति सोही भया संग कहिये परिग्रह ताकरि युक्त है, बहुरि जिनभावना कहिये शुद्धस्व-

रूपकी भावनाकरि रहित हैं ते द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तौहू निर्मल जिनशासन-विषैं जो समाधि कहिये धर्मशुक्लध्यान अर बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताहि न पावैं हैं ॥

भावार्थ--द्रव्यलिंगी अभ्यन्तरका राग छोडै नांही परमात्माकू भावै नांही तब कैसे मोक्षमार्ग पावै तथा समाधिमरण कैसैं पावै ॥७२॥

आगैं कहै है जो--पहलै मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़िकरि भावकरि नग्न होय पीछै द्रव्यमुनि होय यह मार्ग है,--

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए ॥७३॥
भावेन भवति नग्नः मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा।
पश्चात् द्रव्येण मुनिः प्रकटयति लिंगं जिनाज्ञया ॥ ७३ ॥

अर्थ--पहलें मिथ्यात्व आदि दोषनिकू छोड़ि अर भावकरि अंतरंग नग्न होय एकरूप शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै पीछैं मुनि द्रव्यकरि बाह्य लिंग जिन आज्ञाकरि प्रगट करै यह मार्ग है ॥

भावार्थ--भाव शुद्ध हुवा विना पहलैं ही दिगंबररूप धारि ले तौ पीछै भाव विगडै तब भ्रष्ट होय, अर भ्रष्ट होय मुनि भी कहावो करै तौ मार्गकी हास्य करावै तातै जिन आज्ञा यही है--भाव शुद्ध करि बाह्य मुनिपणा प्रगट करो ॥ ७३ ॥

आगैं कहै है जो--शुद्ध भावही स्वर्गमोक्षका कारण है, मलिन-भाव संसारका कारण है,--

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो ॥७४॥
भावः अपि दिव्यशिवसौख्यभाजनं भाववर्जितः श्रमणः।
कर्ममलमलिनचित्तः तिर्यगालयभाजनं पापः ॥ ७४ ॥

अर्थ—भाव है सो ही स्वर्गमोक्षका कारण है बहुरि भावकरि वर्जित श्रमण है सो पापस्वरूप है तिर्यंचगतिका स्थानक है, कैसा है श्रमण-कर्ममलकरि मलिन है चित्त जाका ॥

भावार्थ—भावकरि शुद्ध है सो तौ स्वर्ग मोक्षका पात्र है अर भावकरि मलिन है सो तिर्यंचगतिमैं निवास करै है। ७४ ॥

आगैं फेरि भावके फलका माहात्म्य कहै है,—

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ बोही सुभावेण ॥ ७५ ॥

खचरामरमनुजकरांजलिमालाभिश्च संस्तुता विपुला।
चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते बोधिः सुभावेन ॥ ७५ ॥

अर्थ—सुभाव कहिये भले भाव करि मंदकषायरूप विशुद्ध भाव करि चक्रवर्त्ती आदि राजा तिनिकी विपुल कहिये बड़ी लक्ष्मी पावै है, कैसी है—खचर कहिये विद्याधर अमर कहिये देव मनुज कहिये मनुष्य इनिकी अंजुलीमाला कहिये हस्तनिकी अंजुली तिनिकी पंक्ति करि संस्तुत कहिये नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य है, बहुरि केवल यह लक्ष्मीही नाहीं पावै है बोधि कहिये रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग भी पावै है

भावार्थ—विशुद्ध भावनिका यह माहात्म्य है ॥ ७५ ॥

आगै भावनिका विशेष कहै हैं,—

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरुद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं ॥ ७६ ॥

भावः त्रिविधप्रकारः शुभोऽशुभः शुद्ध एव ज्ञातव्यः।
अशुभश्च आर्त्तरौद्रं शुभः धर्म्यं जिनवरेन्द्रैः ॥ ७६ ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'लब्भेइ बोही ण भव्वणुआ' ऐसा पाठ है।

अर्थ-जिनवरदेव भाव तीनप्रकार कह्या है-शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसैं। तहां अशुभ तौ आर्त्तरौद्र ये ध्यान है अर शुभ है सो धर्मध्यान है ।७६।

सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं ।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह ।।७७।।

शुद्धः शुद्धस्वभावः आत्मा आत्मनि सः च ज्ञातव्यः ।
इति जिनवरैः भणितं यः श्रेयान् तं समाचर ।। ७७ ।।

अर्थ—बहुरि शुद्ध है सो अपनां शुद्धस्वभाव आपहीमैं है ऐसैं जिनवरदेव कह्या है सो जानना तिनिमैं जो कल्याणरूप होय ताकूं अंगीकार करौ ।।

भावार्थ—भगवान भाव तीनं प्रकार कह्या है, शुभ, अशुभ शुद्ध। तहा अशुभ तौ आर्तरौद्र ध्यान हैं सो तौ अतिमलिन है त्याज्य ही है, बहुरि शुभ है सो धर्मध्यान है सो यह कथंचित् उपादेय है जातैं मदकषायरूप विशुद्ध भावकी प्राप्ति है, बहुरि शुद्ध भाव है सो सर्वथा उपादेय है जातै यह आत्माका स्वरूपही है। ऐसैं हेय उपादेय जानि त्याग ग्रहण करना तातै ऐसा कह्या है जो कल्याणकारी होय सो अंगीकार करना यह जिनदेवका उपदेश है ।। ७७ ।।

आगैं कहै है जो जिनशासनका ऐसा माहात्म्य है,—

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो ।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो ।। ७८ ।।

प्रगलितमानकषायः प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्तः ।
आप्नोति त्रिभुवनसारं बोधिं जिनशासने जीवः ।।७८।।

अर्थ—यह जीव है सो जिनशासनविषैं तीन भुवनमै सार ऐसी बोधि कहिये रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग ताहि पावै है; कैसा भया संता-

प्रगलितमानकषाय कहिये प्रकर्षकरि गल्या है मान कपाय जाका, काहू परद्रव्यसूं अहंकाररूप गर्व नांही करै है, बहुरि कैसा भया संता प्रगलित कहिये गलिगया है नष्ट भया है मिथ्यात्वका उदयरूप मोह जाका याहीतैं समचित्त है परद्रव्यविषैं ममकाररूप मिथ्यात्व अर इष्ट अनिष्टबुद्धिरूप रागद्वेष जाकै नाही है ॥

भावार्थ–मिथ्यात्वभाव अर कषाय भावका स्वरूप अन्य मतविपैं यथार्थ नाही, यह कथनी या वीतरागरूप जिनमतमैं ही है, तातैं यह जीव मिथ्यात्व कषायके अभावरूप मोक्षमार्ग तीन भवनमैं सार जिनमतका सेवनही तैं पावैं है, अन्यत्र नांही ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनशासनविषैं ऐसा मुनिही तीर्थंकर प्रकृति बाधै है,—

विसयविरत्तो सवणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण ।
तित्थयर नामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण ॥ ७९ ॥

विषयविरक्तः श्रमणः षोडशवरकारणानि भावयित्वा ।
तीर्थंकरनामकर्म बध्नाति अचिरेण कालेन ॥ ७९ ॥

अर्थ—इन्द्रियनिके विषयनिकरि विरक्त है चित्त जाका ऐसा श्रमण कहिये मुनि है सो सोलहकारण भावनाकूं भाय तीर्थंकर नाम प्रकृति है ताहि थोरेही कालकरि बाधे है ॥

भावार्थ—यह भावका माहात्म्य है, विषयनितैं विरक्त भाव होय सोलह कारण भावना भावै तौ अचिंत्य है माहात्म्य जाका ऐसी तीन लोककरि पूज्य तीर्थंकर नामा प्रकृति बाधै ताकू भोगि अर मोक्षकूं प्राप्त होय । इहां सोलहकारण भावनाके नाम,—दर्शनविशुद्धि, विनयसपन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, सवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्त्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति,

प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, सन्मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य, ऐसैं सोलह भावना हैं। इनिका स्वरूप तत्वार्थ सूत्रकी टीकातैं जाननां। इनिमैं सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न होय अर पंदरह भावनाका व्यवहार होय तौ कार्यकारी नांही, अर यह होय तो पंदरह भावनाका कार्य यही करिले, ऐसैं जाननां ॥

आगैं भावकी विशुद्धितानिमित्त आचरण कहै हैं;—

बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणांकुसएण मुणिपवर ॥ ८० ॥

द्वादशविधतपश्चरणं त्रयोदश क्रियाः भावय त्रिविधेन।
धर मनोमत्तदुरितं ज्ञानाङ्कुशेन मुनिप्रवर! ॥ ८० ॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर! मुनिनिमैं श्रेष्ठ! तू बारह प्रकार तप चर अर तेरह प्रकार क्रिया मन वच कायकरि भाय, अर ज्ञानरूप अंकुशकरि मन-रूप माते हाथीकूं थारि अपने वशमैं राखि ॥

भावार्थ—यह मनरूप हस्ती मदोन्मत्त बहुत है सो तपश्चरण क्रिया-दिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतैं वशि होय है तातैं यह उपदेश है जो तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतै वशिहोय है और प्रकार नांही। इहां बारह तपके नाम:—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्या, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश ये तौ छहप्रकार बाह्यतप हैं, बहुरि प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ये छह प्रकार अभ्यंतर तप हैं, इनिका स्वरूप तत्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना। बहुरि तेरह क्रिया ऐसैं,—पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार ये पाच क्रिया; छह आवश्यकक्रिया निषिधिकाक्रिया, आसिकाक्रिया। ऐसैं भाव शुद्ध होनेके कारण कहे ॥ ८० ॥

आगैं द्रव्यभावरूप सामान्यकरि जिनलिंगका स्वरूप कहै हैं,—

पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू ।
भावं भाविय पुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥ ८१ ॥

पंचविधचेलत्यागं क्षितिशयनं द्विविधसंयमं भिक्षुः ।
भावं भावयित्वा पूर्वं जिनलिंगं निर्मलं शुद्धम् ॥ ८१ ॥

अर्थ —निर्मल शुद्ध जिनलिंग ऐसा है--जहा पचप्रकार वस्त्रका त्याग है, बहुरि जहां भूमिविषैं शयन है, बहुरि जहा दोय प्रकार सयम है, बहुरि जहा भिक्षाभोजन है, बहुरि भावितपूर्व कहिये पहलैं शुद्ध आत्माका स्वरूप परद्रव्यतैं भिन्न सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रमयी भया वारवार भावनाकरि अनुभव किया ऐसा जामैं भाव है ऐसा निर्मल कहिये बाह्यमलरहित शुद्ध कहिये अन्तर्मलरहित जिनलिंग है ॥

भावार्थ—इहां लिंग द्रव्य भावकरि दोयप्रकार है तहां द्रव्य तौ बाह्य त्याग अपेक्षा है जामैं पाचप्रकार वस्त्रका त्याग है, ते पच प्रकार ऐसैं,–अडज कहिये रेसमतै उपज्या, बोंडुज कहिये कपासतैं उपज्या, रोमज कहिये ऊनतै उपज्या, वल्कलज कहिये वृक्षकी त्वचा छालितैं उपज्या, चर्मज कहिये मृग आदिककी चर्मतैं उपज्या, ऐसैं पाच प्रकार कहे, तहा ऐसैं नाही जानना जो—इनि सिवाय और वस्त्र ग्राह्य है--ये तौ उपलक्षणमात्र कहे हैं तातै सर्वही वस्त्रमात्रका त्याग जाननां। बहुरि भूमिविषैं सोवना बैठना तहा काष्ठ तृण भी गिणि लेनां। बहुरि इंद्रिय मनका वशि करना छह कायके जीवनिकी रक्षा करनां ऐसैं दोय प्रकार सयम है। बहुरि भिक्षा भोजन करना जामैं कृत कारित अनुमोदनाका दोष न लागै—छियालीस दोष टलै, बत्तीस अंतराय टलै ऐसैं यथाविधि आहार करै। ऐसैं तौ बाह्यलिंग है। बहुरि पूर्वैं कह्या तैसैं होय सो भावलिंग है। ऐसैं दोय प्रकार शुद्ध जिनलिंग कह्या है, अन्य प्रकार श्वेताबरादिक कहैं हैं सो जिनलिंग नाही है ॥ ८१ ॥

आगैं जिनधर्मकी महिमा कहै हैं,—

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं [1]भाविभवमहणं ॥८२

यथा रत्नानां प्रवरं वज्रं यथा तरुगणानां गोशीरम्।
तथा धर्माणां प्रवरं जिनधर्मं भाविभवमथनम् ॥८२॥

अर्थ—जैसैं रत्नविषैं प्रवर कहिये श्रेष्ठ उत्तम वज्र कहिये हीरा है बहुरि जैसे तरुगण कहिये बड़े वृक्षनिविषैं प्रवर श्रेष्ठ उत्तम गोसीर कहिये बावन चन्दन है तैसैं धर्मनिविषैं उत्तम श्रेष्ठ जिनधर्म है, कैसा है जिन धर्म—भाविभवमथन कहिये आगामी संसारका मथन करनेवाला है यातैं मोक्ष होय है ॥

भावार्थ—धर्म ऐसा सामान्य नाम तौ लोकमैं प्रसिद्ध है अर लोक अनेक प्रकारकरि क्रियाकाडादिकनैं धर्म जानि सेवै है, तहा परीक्षा किये मोक्षकी प्राप्ति करनेंवाला जिनधर्महीं है अन्य सर्व संसारके कारण हैं ते क्रियाकाडादिक ससारहीमैं राखैं हैं, कदाचित् संसारके भोगकी प्राप्ति करै है तौऊ फेरि भोगनिमैं लीन होय तब एकेंद्रियादि पर्याय पावै तथा नरककूं पावै है ऐसैं अन्यधर्म नाममात्रहैं तातैं उत्तम जिनधर्म जानना ८२

आगैं शिष्य पूछै है जो—जिनधर्म उत्तम कह्या सो धर्मका कहा स्वरूप है ? ताका स्वरूप कहै हैं जो धर्म ऐसा है,—

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥ ८३ ॥

पूजादिषु व्रतसहितं पुण्यं हि जिनैः शासने भणितम्।
मोहक्षोभविहीनः परिणामः आत्मनः धर्मः ॥ ८३ ॥

१—मुद्रित संस्कृतसटीक प्रतिमें "भावि भवमहण" ऐसे दो पद हैं जिनकी संस्कृत "भावय भवमथनं" इस प्रकार है।

अर्थ—जिनशासनविषैं जिनेन्द्रदेव ऐसै कह्या है जो पूजा आदिक के विषैं अर व्रतसहित होय सो तौ पुण्य है बहुरि मोहके क्षोभकरि रहित जो आत्माका परिणाम सो धर्म है ॥

भावार्थ—लौकिक जन तथा अन्यमति केई कहै है जो—पूजा आदिक शुभक्रिया तिनिविषैं अर व्रतक्रियासहित है सो जिनधर्म है सो ऐसैं नाही है। जिनमतमैं जिनभगवान ऐसैं कह्या है जो पूजादिकविषैं अर व्रतसहित होय सो तो पुण्य है, तहा पूजा अर आदि शब्द करि भक्ति वंदना वैयावृत्त्य आदिक लेना यह तौ देव गुरु शास्त्रके अर्थि होय है बहुरि उपवास आदिक व्रत हैं सो शुभक्रिया हैं इनिमैं आत्माका रागसहित शुभपरिणाम है ताकरि पुण्यकर्म निपजैहैं तातैं इनिकूं पुण्य कहे हैं, याका फल स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति है। बहुरि मोहका क्षोभ रहित आत्माके परिणाम लेणे, तहा मिथ्यात्व तौ अतत्वार्थश्रद्धानहै, बहु-रि क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्सा ये छह तौ द्वेषप्रकृति है बहुरि माया लोभ हास्य रति पुरुष स्त्री नपुसक ये तीन विकार ऐसै सात प्रकृति रागरूप हैं इनिके निमित्ततैं आत्माका ज्ञानदर्शनस्वभाव विकारसहित क्षोभरूप चलाचल व्याकुल होय है यातैं इनिका विकारनितैं रहित होय तब शुद्ध दर्शनज्ञानरूप निश्चय होय सो आत्माका धर्म है, इस धर्मतैं आत्माके आगामी कर्मका तौ आस्रव रुकि संवर होय है अर पूर्वैं बंधे कर्म तिनिकी निर्जरा होय है, संपूर्ण निर्जरा होय तब मोक्ष होय है, तथा एकदेश मोहके क्षोभकी हानि होय है तातैं शुभपरिणामकूं भी उपचार करि धर्म कहिये है, अर जे केवल शुभपरिणामहीकू धर्म मांनि सतुष्टहैं तिनिकै धर्मकी प्राप्ति नाही है, यह जिनमतका उपदेश है ॥८३॥

आगैं कहै हैं जो-पुण्यहीकूं धर्म जांणि श्रद्धै है तिनिकै केवल भोगका निमित्त है कर्मक्षयका निमित्त नांही,—

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥८४॥

श्रद्धाति च प्रत्येति च रोचते च तथा पुनरपि स्पृशति ।
पुण्यं भोगनिमित्तं न हि तत् कर्मक्षयनिमित्तम् ।। ८४ ।।

अर्थ—जे पुरुष पुण्यकूं धर्म जांणि श्रद्धान करै हैं बहुरि प्रतीति करै हैं बहुरि रुचि करै हैं बहुरि स्पर्शै है तिनिकै पुण्य भोगका निमित्त है यातैं स्वर्गादिक भोग पावैं हैं, बहुरि सो पुण्य, कर्मका क्षयका निमित्त न होय है, यह प्रगट जानो ।।

भावार्थ—शुभक्रियारूप पुण्यकू धर्म जांणि याका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै है ताकै पुण्यकर्मका बंध होय है ताकरि स्वर्गादिके भोगकी प्राप्ति होय है, अर ताकरि कर्मका क्षयरूप संवर निर्जरा मोक्ष न होय ।। ८४ ।।

आगैं कहै है जो आत्माका स्वभावरूप धर्म्म है सो ही मोक्षका कारण है ऐसा नियम है,-

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो ।
संसारतरणहेदू धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।। ८५ ।।

आत्मा आत्मनि रतः रागादिषु सकलदोषपरित्यक्तः ।
संसारतरणहेतुः धर्म इति जिनैः निर्दिष्टम् ।। ८५ ।।

अर्थ—जो आत्मा आत्माहीविषैं रत होय, कैसा भया रत होय-रागादिक समस्त दोषनिकरि रहित भया सता ऐसा धर्म जिनेश्वरदेवनै संसारसमुद्रतैं तिरणेका कारण कह्या है ।।

भावार्थ-जो पूर्वे कह्याथा मोहके क्षोभकरि रहित आत्माका परिणाम है सो धर्म है सो ऐसा धर्मही संसारतैं पारकरि मोक्षका कारण भगवान कह्या है, यह नियम है ।। ८५ ।।

आगैं याही अर्थके दृढ़ करनेंकूं कहै हैं जो-आत्माकूं इष्ट नांही करै है अर समस्त पुण्यकूं आचरण करै है तौऊ सिद्धिकूं न पावै है,-

अह पुणु अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥८६॥

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति पुण्यानि करोति निरवशेषानि।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ॥८६॥

अर्थ—अथवा जो पुरुष आतमाकूं नाही इष्ट करै है ताका स्वरूप न जानैं है अगीकार नाही करै है अर सर्व प्रकार समस्त पुण्यकूं करै है तौऊ सिद्धि कहिये मोक्ष ताहि नहीं पावै है बहुरि वह पुरुष संसारहीमैं तिष्ठ्या रहै है ॥

भावार्थ—आत्मिक धर्म धार्‍यां विना सर्वप्रकार पुण्यका आचरण करै तौऊ मोक्ष न होय संसारहीमैं रहै है, कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावै तौ तहा भोगनिमैं आसक्त होय वसै, तहातैं चय एकेंद्रियादिक होय संसारहीमैं भ्रमै है ॥

आगैं इस कारणकरि आत्माहीका श्रद्धान करौ प्रयत्नकरि जाणौ मोक्ष पावो ऐसा उपदेश करै हैं,—

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लभेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥ ८७ ॥

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ ८७ ॥

अर्थ—पूर्वैं कह्याथा जो आत्माका धर्म तौ मोक्ष है तिसही कारण कहै है जो—हे भव्यजीव हो! तुम तिस आत्माकूं प्रयत्नकरि सर्वप्रकार उद्यमकरि यथार्थ जानो, बहुरि तिस आत्माकूं श्रद्धो, प्रतीतिकरो, आचरो मन वचन कायकरि ऐसैं करो जाकरि मोक्ष पावो ॥

भावार्थ-जाके जानें श्रद्धान करे मोक्ष होय ताहीका जानना श्रद्धना

मोक्षप्राप्ति करै है तातैं आत्माका जानना सर्वप्रकार उद्यमकरि करना याहीतैं मोक्षकी प्राप्ति होय है, तातैं भव्यजीवनिकूं यही उपदेश है।८७।

आगैं कहै हैं बाह्यहिंसादिक क्रिया विनाही अशुद्धभावतैं तंदुलमत्स्य तुल्य जीवभी सातवें नरक गया तब अन्य बड़े जीवनिकी कहा कथा?

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं ॥ ८८ ॥

मत्स्यः अपि शालिसिक्थः अशुद्धभावः गतः महानरकम्।
इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय जिनभावनां नित्यम् ॥८८॥

अर्थ—हे भव्यजीव! तू देखि शालिसिक्थ कहिये तंदुलनामा मत्स्य है सो भी अशुद्धभावस्वरूप भया संता महानरक कहिये सातवैं नरक गया इस हेतुतैं तोकूं उपदेश करै हैं जो अपनें आत्माकूं जाननेंकूं निरंतर जिनभावना भाय॥

भावार्थ—अशुद्धभावके माहात्म्यकरि तंदुल मत्स्य अल्पजीवभी सातवैं नरक गया तौ अन्य बड़ाजीव क्यों नरक न जाय तातैं भाव शुद्ध करनेंका उपदेश है। अर भाव शुद्ध भये अपनां परका स्वरूप जानना होय है, अर अपना परका स्वरूपका ज्ञान जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरन्तर भाये होय है, तातैं जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरंतर करनां योग्य है।

तंदुल मत्स्यकी कथा ऐसै है—काकंदीपुरीका राजा सूरसेन था सो मांसभक्षी भया अतिलोलुपी निरन्तर मांस भक्षणका अभिप्राय राखै ताकै पितृप्रियनामा रसोईदार सो अनेक जीवनिका मांस निरन्तर भक्षण करावै ताकूं सर्प डस्या सो मरिकरि स्वयंभूरमणसमुद्रमैं महामत्स्य भया अर राजा सूरसेनभी मरि वहांही वा महामत्स्यके कानमैं तंदुल मत्स्य भया, तहां महामत्स्यके मुखमैं अनेक जीव आवै अर निकसि जाय तब

तंदुल मत्स्य तिनिकूं देखिकरि विचारैं जो ये महामत्स्य निर्भागी है जो मुखमें आये जीवनिकूं भखै नाही है, मेरा शरीर जो एता बडा होता तौ या समुद्रके सर्व जीवनिकूं भखता; ऐसे भावनिके पापतैं जीवनिकूं भखे विनाही सातवैं नरकमैं गया अर महामत्स्य तौ भखणेवाला था सो तौ नरक जायही जाय, यातैं अशुद्धभावसहित बाह्य पाप करना तौ नरकका कारणहै ही परन्तु बाह्य हिंसादिक पापके किये विना केवल अशुद्धभावही तिस समान है, तातैं भावमैं अशुभ ध्यान छोडि शुभध्यान करना योग्य है। इहां ऐसा भी जानना जो पहलैं राज पायाथा सो पूर्वे पुण्य किया था ताका फलथा पीछैं कुभाव भये तब नरक गया यातैं आत्मज्ञान विना केवल पुण्यही मोक्षका साधन नांही है ॥ ८८ ॥

आगैं कहै हैं, जो भावरहितनिका बाह्य परिग्रहका त्यागादिक सर्व निष्प्रयोजन है,—

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं ॥ ८९ ॥

बाह्यसंगत्यागः गिरिसरिद्दरीकंदरादौ आवासः।
सकलं ध्यानाध्ययनं निरर्थकं भावरहितानाम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—जे पुरुष भावकरि रहित हैं शुद्ध आत्माकी भावनारहित हैं अर बाह्य आचरणकरि सन्तुष्ट हैं तिनिका बाह्य परिग्रहका त्याग है सो निरर्थक है, बहुरि गिरि कहिये पर्वत दरी कहिये पर्वतकी गुफा सरित् कहिये नदीके निकट कदर कहिये पर्वतका जलकरि विदार्‍या स्थानक इत्यादिकविषैं आवास कहिये बसना निरर्थक है, बहुरि ध्यान करनां आसनकरि मनकूं थाभना अध्ययन कहिये पढना ये सब निरर्थक है ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाका फल आत्मज्ञानसहित होय तौ सफल होय नांतरि सर्व निरर्थक है, पुण्यका फल होय तौऊ संसारका ही कारण है मोक्षफल नांही ॥ ८९ ॥

आगैं उपदेश करै है जो—भावशुद्धके अर्थि इन्द्रियादिक वशि करौ भावशुद्धविनां बाह्य भेषका आडंबर मति करौ,—

भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण ।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु ॥ ९० ॥

भंग्धि इन्द्रियसेनां भंग्धि मनोमर्कटं प्रयत्नेन ।
मा जनरंजनकरणं बहिर्व्रतवेष ! त्वंकार्षीः ॥९० ॥

अर्थ—हे मुने ! तू इंद्रियकी सेना है ताहि भंजनकरि विषयनिमैं रमावै मति, बहुरि मनरूप बंदर है ताहि प्रयत्नकरि बड़ा उद्यमकरि भजनकरि वशीभूतकरि, बहुरि बाह्यव्रतका भेष लोकका रंजन करनेंवाला मति धारण करै ।

भावार्थ-बाह्य मुनिका भेष लोकका रंजन करनेवाला है तातैं यह उपदेश है, लोकरंजनतैं कछू परमार्थ सिद्धि नांही तातैं इन्द्रिय मनके वश करनेकूं बाह्य यत्न करै तौ श्रेष्ठ है अर इन्द्रिय मन वशि किये विना केवल लोकरंजनमात्र भेष धारनेमैं कछू परमार्थसिद्धि है नाही ९०

आगैं फेरि उपदेश कहै हैं,-

णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए ।
चेइयपवयणगुरुणं करेहिं भत्तिं जिणाणाए ॥९१॥

नवनोकषायवर्गं मिथ्यात्वं त्यज भावशुद्ध्या ।
चैत्यप्रवचनगुरूणां कुरु भक्तिं जिनाज्ञया ॥ ९१ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू नव जे हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद ये नोकषायवर्ग बहुरि मिथ्यात्व इनिकूं छोडि, बहुरि जिनआज्ञाकरि चैत्य प्रवचन गुरु इनिकी भक्ति करि ॥ ९१ ॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं ॥९२॥

तीर्थंकरभाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक् ।
भावय अनुदिनं अतुलं विशुद्धभावेन श्रुतज्ञानम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू तीर्थंकर भगवाननैं कह्या अर गणधर देवनिनै गूंथ्या शास्त्ररूप रचना करी ऐसा श्रुतज्ञान है ताहि सम्यक् प्रकार भाव-शुद्धिकरि निरन्तर भाय, कैसा श्रुतज्ञान—अतुल है या बराबर अन्य-मतका भाष्या श्रुतज्ञान नांही है ॥ ९२ ॥

ऐसें किये कहा होय है ? सो कहै हैं,-

पाऊण[1] णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का ।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥९३॥

प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मथ्यतृषादाहशोषोन्मुक्ता ।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥९३

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध किये ज्ञानरूप जलकूं पीय करि सिद्ध होय हैं, कैसें हैं सिद्ध—निर्मथ्य कहिये मथ्या न जाय ऐसा तृषा दाह शोष ताकरि रहित हैं ऐसे सिद्ध होय हैं ज्ञानरूप जलपियेका ये फल है, बहुरि कैसे हैं सिद्ध—शिवालय कहिये मुक्तिरूप महल ताके वसनेवाले हैं लोकके शिखरपरि जिनका वास है, याहीतैं कैसे हैं—तीन भवनके चूडामणि हैं मुकुटमणि हैं तथा तीन भवनमैं ऐसा सुख नाही ऐसा परमानंद अविनाशी सुख नांही, ऐसा परमानंद अविनाशी सुखकूं भोगवैं हैं, ऐसे तीन भवनके मुकुटमणि हैं ॥

१—एक वचनिका प्रतिमें 'पीऊण' ऐसा पाठ है जिसका संस्कृत 'पीत्वा' है अर्थात् 'पी कर' ।

भावार्थ- शुद्ध भाव किये ज्ञानरूप जल पिये तृष्णा दाह शोष मिटै है तातैं ऐसैं कह्या है जो परमानन्दरूप सिद्ध होय है ॥ ९३ ॥

आगैं भावशुद्धिके अर्थि फेरि उपदेश करैं हैं;—

दस दस दोसुपरीसह सहदि मुणी सयलकाल काएण।
सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमुत्तूण ॥ ९४ ॥

दश दश द्वौ सुपरीषहान् सहस्व मुने! सकलकालं कायेन।
सूत्रेण अप्रमत्तः संयमघातं प्रमुच्य ॥ ९४ ॥

अर्थ—हे मुने! तू दश दश दोय कहिये बाईस जे सुपरीषह कहिये अतिशयकरि सहनेयोग्य ऐसे परीषह तिनिकूं सूत्रेण कहिये जैसैं जिन वचनमैं कहे तिसरीतिकरि निःप्रमादी भया सता संयमका घात निवारिकरि अर तेरे कायकरि सदा काल निरंतर सहि ॥

भावार्थ—जैसैं संयम न बिगडै अर प्रमादका निवारण होय तैसैं निरन्तर मुनि क्षुधा तृषा आदिक बाईस परीषह सहै। इनिका सहनेंका प्रयोजन सूत्रमैं ऐसा कह्या है जो—इनिके सहनेंतैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संयमके मार्गतैं छूटनां न होय परिणाम दृढ़ होय है ॥ ९४ ॥

आगैं कहै हैं जो—परीषह सहनेंमैं दृढ़ होय तौ उपसर्ग आये भी दृढ़ रहै चिगै नांही, ताका दृष्टांत कहै हैं,—

जहपत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुकएण।
तह साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीषहेहिंतो ॥ ९५ ॥

यथा प्रस्तरः न भिद्यते परिस्थितः दीर्घकालमुदकेन।
तथा साधुरपि न भिद्यते उपसर्गपरीषहेभ्यः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जैसैं पाषाण है सो जलकरि बहुतकाल तिष्ठ्या भी भेदकूं प्राप्त न होय है तैसैं साधु है सो उपसर्ग परीषहनिकरि नांही भिदै है ॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'तह साहू ण विभिज्जइ' ऐसा पाठ है।

भावार्थ—पाषाण ऐसा कठिन है जो जलमैं बहुतकाल रहै तौऊ तामैं जल प्रवेश न करै तैसैं साधुके परिणाम ऐसे दृढ़ होय है जो उपसर्ग परीषह आये सयमके परिणामतैं च्युत न होय हैं, अर पूर्वैं कह्या जो संयमका घात जैसैं न होय तैसै परीषह सहै जो कदाचित् सयमका घात होता जानैं तौ जैसैं घात न होय तैसैं करै ॥ ९५ ॥

आगैं परीषह आये भाव शुद्ध रहै ऐसा उपाय कहैं हैं,—

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि।
भावरहिएण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥ ९६ ॥

भावय अनुप्रेक्षाः अपराः पंचविंशतिभावनाः भावय ।
भावरहितेन किं पुनः बाह्यलिंगेन कर्त्तव्यम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू अनुपेक्षा कहिये अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं तिनहिं भाय, बहुरि अपर कहिये और पाच महाव्रतनिकी पचीस भावना कही हैं तिनहिं भाय, भावरहित जो बाह्य लिग है ताकरि कहा कर्त्तव्य है ? कछू भी नांही ॥

भावार्थ—कष्ट आये बारह अनुप्रेक्षा चिंतवन करनें योग्य हैं तिनिके नाम—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्त्व अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म इनिका अर पचीस भावनाका भावना बड़ा उपाय है। इनिका बारंबार चितवन किये कष्टमैं परिणाम बिगडै नांही, तातैं यह उपदेश है ॥ ९६ ॥

आगैं फेरि भावशुद्ध रखनेकूं ज्ञानका अभ्यास करै हैं;—

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥ ९७ ॥

सर्वविरतः अपि भावय नव पदार्थान् सप्त तत्त्वानि ।
जीवसमासान् मुने ! चतुर्दशगुणस्थाननामानि ॥ ९७ ॥

अर्थ—हे मुने तू सर्व परिग्रहादिकतैं विरक्त भया है महाव्रतनिकरि सहित है तौउ भावविशुद्धिकै अर्थि नवपदार्थ सप्त तत्व चउदह जीवसमास चउदह गुणस्थान इनिके नाम लक्षण भेद इत्यादिकनिकी भावना करि ॥

भावार्थ—पदार्थनिका स्वरूपका चितवन करनां भावशुद्धिका बड़ा उपाय है तातैं यह उपदेश है। इनिका नाम स्वरूप अन्यग्रथनितैं जाननां ॥ ९७ ॥

आगैं भावशुद्धिकै अर्थि अन्य उपाय कहै हैं;—

णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओसि भवण्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

नवविधब्रह्मचर्यं प्रकटय अब्रह्म दशविधं प्रमुच्य।
मैथुनसंज्ञासक्तः भ्रमितोऽसि भवार्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे जीव! तू नव प्रकार ब्रह्मचर्य है ताहि प्रगटकरि भावनिमैं प्रत्यक्ष करि, पूर्वैं कहाकरि—दशप्रकार अब्रह्म है ताहि छोड़िकरि, ये उपदेश काहेतैं दिया जातै तू मैथुनसज्ञा जो कामसेवन की अभिलाषा ताविषैं आसक्त भया अशुद्ध भावकरि इस भीम भयानक ससाररूप समुद्रविषै भ्रम्या ॥

भावार्थ–यह प्राणी मैथुनसंज्ञाविषैं आसक्त भया गृहस्थपणां आदिक अनेक उपायकरि स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावकरि अशुभ कार्यनिमैं प्रवर्तै है ताकरि इस भयानक ससारसमुद्रविषैं भ्रमै है तातैं यह उपदेश है जो दशप्रकार अब्रह्मकूं छोडि नव प्रकार ब्रह्मचर्यकूं अंगीकार करौ। तहा दशविध अब्रह्म तौ ऐसैं–प्रथम तौ स्त्रीका चिंतवन होय १ पीछैं देखनेंकी चिंता होय २ पीछैं निश्वास डारै ३ पीछैं ज्वर उपजै ४ पीछैं दाह उपजै ५ पीछैं कामकी रुचि उपजै ६ पीछैं मूर्च्छा होय ७ पीछैं उन्माद उपजै ८ पीछैं जीवनेंका सदेह उपजै ९ पीछैं मरण होय १० ऐसैं दशप्रकार अब्रह्म

है। बहुरि नवविध ब्रह्मचर्य ऐसैं—नवकारणनितैं ब्रह्मचर्य बिगड़ै है तिनिकै नाम–स्त्री सेवनेंका अभिलाष १ स्त्रीका अंगका स्पर्शन २ पुष्ट रसका सेवन ३ स्त्रीकरि ससक्त वस्तुका सेवन शय्या आदिक ४ स्त्रीका मुख नेत्र आदिकनिका देखना ५ स्त्रीका सत्कार पुरस्कार करनां ६ पहलैं स्त्रीका सेवन किया ताकी यादि करनां ७ आगामी स्त्रीसेवनका अभिलाप करना ८ मनवांछित इष्ट विषयनिका सेवनां ९ ऐसैं नव प्रकार हैं तिनिका वर्जनां सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है। अथवा मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना करि ब्रह्मचर्य पालनां ऐसैं भी नव प्रकार कहिये है। ऐसैं करना सो भी भाव शुद्ध होनेका उपाय है ॥ ९८ ॥

आगैं कहै हैं जो भाव सहित मुनि है सो आराधनाका चतुष्ककूं पावै है, भावविना सो भी संसारमैं भ्रमै है,—

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च ।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

भावसहितश्च मुनीनः प्राप्नोति आराधनाचतुष्कं च ।
भावरहितश्च मुनिवर ! भ्रमति चिरं दीर्घसंसारे ॥ ९९ ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! जो भावसहित है सो दर्शन ज्ञान चारित्र तप ऐसा आराधनका चतुष्यकूं पावै है सो मुनिनिमैं प्रधान है, बहुरि, जो भावरहित मुनि है सो वहुतकाल दीर्घससारमैं भ्रमै है ॥

भावार्थ–निश्चय सम्यक्त्वका शुद्ध आत्माका अनुभूतिरूप श्रद्धान है सो भाव है ऐसे भावसहित होय ताकै च्यार आराधना होय हैं ताका फल अरहंत सिद्ध पद है बहुरि ऐसे भावकरि रहित होय ताकै आराधना न होय ताका फल संसारका भ्रमण है, ऐसा जाणि भाव शुद्ध करना यह उपदेश है ॥ ९९ ॥

आगैं भावहीके फलका विशेप कहै हैं,—

पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं ।
दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ॥ १०० ॥

प्राप्नुवंति भावश्रमणाः कल्याणपरंपराः सौख्यानि ।
दुःखानि द्रव्यश्रमणाः नरतिर्यक्कुदेवयोनौ ॥ १०० ॥

अर्थ—जे भावश्रमण हैं भावमुनि हैं ते कल्याणकी परपरा जामैं ऐसे सुखनिकूं पावै हैं बहुरि जे द्रव्य श्रमण हैं ते तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनिविषैं दु.खनिकूं पावै हैं।

भावार्थ—भावमुनि सम्यग्दर्शनसहित हैं ते तौ सोलै कारण भावनां भाय गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण पच कल्याण तिनिसहित तीर्थंकर पद पाय मोक्ष पावै हैं, बहुरि जे सम्यग्दर्शनरहित द्रव्यमुनि हैं ते तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनि पावैं हैं। यह भावके विशेषतैं फलका विशेष है ॥ १०० ॥

आगैं कहै हैं जो अशुद्ध भावकरि अशुद्धही आहार किया यातैं दुर्गतिही पाई,—

छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण ।
पत्तोसि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ॥ १०१ ॥

षट्चत्वारिंशद्दोषदूषितमशनं ग्रसितं अशुद्धभावेन ।
प्राप्तः असि महाव्यसनं तिर्यग्गतौ अनात्मवशः ॥१०१॥

अर्थ—हे मुने ! तैं अशुद्ध भावकरि छियालीस दोषनिकरि दूषित अशुद्ध अशन कहिये आहार ग्रस्या खाया ताकारण करि तिर्यंचगतिविषैं पराधीन भया संता महान बड़ा व्यसन कहिये कष्ट ताकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—मुनि आहार करै सो छियालीस दोषरहित शुद्ध करै है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मलदोषरहित करै है, सो जो मुनि होयकरि सदोष आहार करै तौ जानिये याके भावभी शुद्ध नाही ताकूं यह उप-

देश है जो हे मुने ! तैं दोषसहित अशुद्ध आहार किया तातैं तिर्यंच गतिमैं पूर्वैं भ्रम्या कष्ट सह्या तातैं भाव शुद्धकरि शुद्ध आहार करि, ज्यो फेरि नाही भ्रमैं। छियालीस दोषनिमैं सोलह तौ उद्गम दोष हैं ते आहारके उपजनेंके हैं ते श्रावक आश्रित हैं, बहुरि सोलह उत्पादन दोष हैं ते मुनिके आश्रय हैं, बहुरि दश दोष एषणाके हैं ते आहारके आश्रित हैं; बहुरि च्यार प्रमाणादिक है। इनिका नाम तथा स्वरूप मूलाचार आचारसारग्रंथतैं जानना॥ १०१॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

सच्चित्तभत्तपाणं गिद्धी दप्पेणऽधी पभुत्तूण[1]।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं अणाइकालेण तं चित्त[2]॥ १०२॥

सचित्तभक्तपानं गृद्ध्या दर्पेण अधीः प्रभुज्य।
प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं अनादिकालेन त्वं चिन्तय॥१०२॥

अर्थ—हे जीव ! तू दुर्बुद्धी अज्ञानी भया संता अतिचार करि तथा अतिगर्व उद्धतपणाकरि सचित्त भोजन तथा पान जीवनिसहित आहार पानी लेकरि अनादिकालतैं लगाय तीव्र दुःखकूं पाया ताहि चिंतवनकरि विचारि॥

भावार्थ—मुनिकूं उपदेश करै हैं जो—अनादिकालतैं लगाय जेतैं अज्ञानी रह्या जीवका स्वरूप न जान्यां तेतैं सचित्त जीवनि सहित आहार पानी करता संता संसारमैं तीव्र नरकादिकका दुःख पाया अब मुनि होय करि भाव शुद्धकरि सचित्त आहार पानी मति करै नातरि फेरि पूर्ववत् दुःख भोगवैगा॥ १०२॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'पभुत्तूण' इसकी संस्कृत 'प्रभुक्त्वा' की है।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'चित्त' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'चित्त' है अर्थात् 'हे चित्त' ऐसा संबोधनपद किया है।

आगैं फेरि कहै हैं;—

कंदं मूलं बीयं पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं ।
असिऊण माणगव्वं भमिओसि अणंतसंसारे ॥१०३॥

कंदं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि किंचित् सचित्तम् ।
अशित्वा मानगर्वे भ्रमितः असि अनंतसंसारे ॥१०३॥

अर्थ—कंद कहिये जमीकंद आदिक, बीज कहिये बीज चणा आदिक अन्नादिक, मूल कहिये आदो मूला गाजर आदिक, पुष्प कहिये फूल, पत्र कहिये नागरवेल आदिक, इनिकूं आदि लेकरि जो कछू सचित्त वस्तु ताहि मानकरि गर्वकरि भक्षण करी; ताकरि हे जीव ! तू अनंत-संसारविषैं भ्रम्या ॥

भावार्थ—कन्दमूलादिक सचित्त अनंतजीवनिकी काय है तथा अन्य वनस्पति बीजादिक सचित हैं तिनिकूं भक्षण किया। तहां प्रथम तौ मान करि जो हम तपस्वी हैं हमारै घरबार नांही वनके पुष्प फलादिक खाय करि तपस्या करैं हैं ऐसैं मिथ्यादृष्टी तपस्वी होय मानकरि खाये तथा गर्वकरि उद्धत होय दोष गिन्यां नाही स्वच्छंद होय सर्व भक्षी भया। ऐसैं इनि कंदादिककूं खाय यही जीव संसारमैं भ्रम्या अब मुनि होय इनिका भक्षण मति करै, ऐसा उपदेश है। अर अन्यमतके तपस्वी कंदमूलादिक फल फूल खाय आपकूं महंत मानैंहैं तिनिका निषेध है ॥ १०३ ॥

आगैं विनय आदिका उपदेश करै है तहां प्रथमही विनयका वर्णन है;—

विणयं पंचपयारं पालहि मणवयणकायजोएण ।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति ॥१०४॥

विनयः पंचप्रकारं पालय मनोवचनकाययोगेन ।
अविनतनराः सुविहितां ततो मुक्तिं न प्राप्नुवंति ॥१०४॥

अर्थ—हे मुने ! जा कारणतैं अविनयवान नर है ते भले प्रकार विहित जो मुक्ति ताहि न पावै है अभ्युदय तीर्थंकरादिसहित मुक्ति न पावै है तातैं हम उपदेश करैं है जो हस्त जोडना पगा पडना आएतैं उठना सामा जाना अनुकूल वचन कहना यह पचप्रकार विनय अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र तप अर इनिका धारक पुरुष इनिका विनय करना ऐसैं पंचप्रकार विनयकू तू मन वचन काय तीनू योगनिकरि पालि ॥

भावार्थ—विनयविना मुक्ति नाही तातैं विनयका उपदेश है, विनयमै बडे गुण हैं ज्ञानकी प्राप्ति होय है मानकषायका नाश होय है शिष्टाचारका पालना है कलहका निवारण है इत्यादि विनयके गुण जाननें, तातैं सम्यग्दर्शनादिकरि जे महान हैं तिनिका विनय करना यह उपदेश है, अर जे विनय विना जिनमार्गतैं भ्रष्ट भये वस्त्रादिकसहित जे मोक्षमार्ग मानने लगे तिनिका निषेध है ॥ १०४ ॥

आगै भक्तिरूप वैयावृत्त्यका उपदेश करै हैं,—

णियसत्तिए महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि ।
तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं ॥१०५॥

निजशक्त्या महायशः ! भक्तिरागेण नित्यकाले ।
त्वं कुरु जिनभक्तिपरं वैयावृत्यं दशविकल्पम् ॥१०५॥

अर्थ—हे महायश ! हे मुने ! भक्तिका रागकरि तिस वैयावृत्त्यकू सदाकाल अपनी शक्तिकरि तू करि, कैसैं—जिनभक्तिविषै तत्पर होय तैसैं—कैसा है वैयावृत्त्य—दशविकल्प है दशभेदरूप है, वैयावृत्य नाम परके दुःख कष्ट आये टहल चदगी करनेका है, ताके दशभेद—आचार्य, उपा

ध्याय, तपस्वि, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ ये दश-भेद मुनिके हैं तिनिका कीजिये है तातैं दशभेद कहे है ॥ १०५ ॥

आगैं अपने दोषकूं गुरु पासि कहना ऐसी गर्हाका उपदेश करै हैं:-

जं किंचिकय दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेणं ।
तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥१०६॥

यः कश्चित् कृतः दोषः मनोवचःकायैः अशुभभावेन ।
तं गर्ह गुरुसकाशे गारवं मायां च मुक्त्वा ॥१०६॥

अर्थ—हे मुने! जो कछु मन वचन कायकरि अशुभ भावनितैं प्रतिज्ञामैं दोष लग्या होय ताकू गुरु पासि अपना गौरव कहिये अपना महतपणा गर्व छोडिकरि बहुरि माया कहिये कपट छोड़ि करि मन वचन काय सरल करि गर्हाकरि वचन प्रकासि ॥

भावार्थ—आपकू कोई दोष लाग्या होय अर निष्कपट होय गुरूकूं कहै तो वह दोष निवृत्त होय, अर आप शल्यवान रहैं तौ मुनिपदमैं यह बडा दोष है, तातैं अपना दोष छिपावना नांही; जैसा होय तैसा सरलबुद्धितैं गुरुनिपासि कहना तब दोष मिटै, यह उपदेश है। कालके निमित्ततैं मुनिपदतैं भ्रष्ट भये पीछें गुरुनिपासि प्रायश्चित न लिया तब विपरीत होय सम्प्रदाय न्यारा बांध्या, ऐसैं विपर्यय भया ॥ १०६ ॥

आगैं क्षमाका उपदेश करै है;—

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा ।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा ॥१०७॥

दुर्जनवचनचपेटां निष्ठुरकटुकं सहन्ते सत्पुरुषाः ।
कर्ममलनाशनार्थं भावेन च निर्ममाः श्रमणाः ॥१०७॥

अर्थ—सत्पुरुष मुनि है ते दुर्जनके वचनरूप चपेट जो निष्ठुर

कहिये कठोर दयारहित अर कटुक कहिये सुनतेही काननिकूं कड़ा सूल समान लागै ऐसी चपेट है ताहि सहैं हैं, ते कौन अर्थि सहैं हैं—कर्मनिके नाश होनेंके अर्थि पूर्वैं अशुभकर्म बाध्या था ताके निमित्ततैं दुर्जननैं कटुक वचन कह्या आप सुन्यां ताकूं उपशम परिणामतैं आप सहै तब अशुभकर्म उदय होइ खिरि गया ऐसैं कटुकवचन सहे कर्मका नाश होय है, बहुरि ते मुनि सत्पुरुष कैसे हैं अपनें भावकरि वचनादिककरि निर्ममत्व हैं वचनतैं तथा मान कषायतैं अर देहादिकतैं ममत्व नाही है, ममत्व होय तौ दुर्वचन सह्या न जाय, यह न जानै जो ये मोकूं दुर्वचन कह्या, तातैं ममत्वके अभावतैं दुर्वचन सहै है। तातैं मुनि होय करि काहूतैं क्रोध न करनां यह उपदेश है। लौकिकमैं भी जे बडे पुरुष हैं ते दुर्वचन सुनिकै क्रोध न करैं हैं तब मुनिकूं तौ सहना उचितही है, जे क्रोध करैं हैं ते कहवेके तपस्वी हैं, साचे तपस्वी नाही ॥ १०७ ॥

आगैं क्षमाका फल कहै हैं,—

पावं खवइ असेसं खमाय पडिमंडिओ य मुणिपवरो ।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ ॥ १०८ ॥

पापं क्षिपति अशेषं क्षमया परिमंडितः च मुनिप्रवरः ।
खेचरामरनराणां प्रशंसनीयः ध्रुवं भवति ॥ १०८ ॥

अर्थ—जो मुनिप्रवर मुनिनमैं श्रेष्ठ प्रधान क्रोधके अभावरूप क्षमा करि मंडित है सो मुनि समस्त पापकूं क्षय करै है, बहुरि विद्याधर देव मनुष्यनिकरि प्रशंसा करनेंयोग्य निश्चयकरि होय है ॥

भावार्थ—क्षमा गुण बड़ा प्रधान है जातैं सर्वकै स्तुति करनेंयोग्य पुरुष होय, जे मुनि हैं तिनिकै उत्तमक्षमा होय है ते तौ सर्व मनुष्य देव विद्याधरनिकै स्तुतियोग्य होयही होय अर तिनिकै सर्व पापका क्षय होयही होय, तातैं क्षमा करनां योग्य है ऐसा उपदेश है। क्रोधी सर्वकै निंदनें योग्य होय हैं तातैं क्रोधका छोडना श्रेष्ठ है ॥ १०८ ॥

आगे ऐसैं क्षमागुण जानि क्षमा करना क्रोध छोड़ना ऐसैं कहै है;—

इय णाऊण खमागुण खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ॥१०९॥

इति ज्ञात्वा क्षमागुण ! क्षमस्व त्रिविधेन सकलजीवान्।
चिरसंचितक्रोधशिखिनं वरक्षमासलिलेन सिंच ॥ १०९ ॥

अर्थ—हे क्षमागुण मुने ! क्षमा है गुण जाकै ऐसा मुनिका संबोधन है, इति कहिये पूर्वोक्त क्षमागुणकूं जाणि अर सकलजीवनिपरि मन वचन कायकरि क्षमाकरि, बहुरि बहुत काल करि संचय किया जो क्रोधरूप अग्नि ताहि क्षमारूप जलकरि सींचि, बुझाय ॥

भावार्थ—क्रोधरूप अग्निहै सो पुरुषमै भले गुण हैं तिनिकूं दग्ध करनेवाला है अर परजीवनिका घात करनेंवाला है तातै याकूं क्षमारूप जलकरि बुझावना, अन्य प्रकार यह बुझै नाही, अर क्षमा गुण सर्व गुणनिमै प्रधान है। तातै यह उपदेश है जो क्रोधकूं छोड़ि क्षमा ग्रहण करना ॥ १०९ ॥

आगै दीक्षाकालादिककी भावनाका उपदेश करै है,—

दिक्खाकालाईयं[1] भावहि अवियार[2]दंसणविसुद्धो।
उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण ॥ ११० ॥

दीक्षाकालादिकं भावय अविकारदर्शनविशुद्धः।
उत्तमबोधिनिमित्तं असार[3]साराणि ज्ञात्वा ॥ ११० ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'दीक्खाकालईयं' इसकी संस्कृत 'दीक्षाकालादीयं' की है।

२—मुद्रितसंस्कृत प्रतिमें 'अवियार दंसणविसुद्धो' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत 'हे अविचार ! दर्शनविशुद्ध' इस प्रकार है।

३—संस्कृत टीकामें 'असारसाराणि' का अर्थ 'सार और असारको जान कर ऐसा किया है।

अर्थ—हे मुने! तू दीक्षाकाल आदिककी भावना करि, कैसा भया संता—अविकार कहिये अतीचाररहित जो निर्मल सम्यग्दर्शन ताकरि सहित भया संता, पूर्वैं कह्याकरि ससारकूं असार जाणिकरि, काहेकै अर्थि—उत्तमबोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रकी प्राप्तिकै निमित्त ॥

भावार्थ—दीक्षा लेहै तब ससार भोगकूं असार जाणि अत्यंत वैराग्य उपजै है तैसैं ही वाके आदिशब्दतैं रोगोत्पत्ति मरणकालादिक जानना तिनिकालनिमैं जैसे भाव होय तैसे ही संसारकूं असार जाणि विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित भया संता उत्तमबोधि जो जामैं केवलज्ञान उपजै है वाकै अर्थि दीक्षाकालादिककी निरन्तर भावनाकरणी, ऐसा उपदेश है।११०

आगैं भावलिंग शुद्धकरि द्रव्यलिंग सेवनेका उपदेश करै हैं,—

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो ।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥१११॥

सेवस्व चतुर्विधलिंगं अभ्यंतरलिंगशुद्धिमापन्नः ।
बाह्यलिंगमकार्यं भवति स्फुटं भावरहितानाम् ॥१११॥

अर्थ—हे मुनिवर! तू अभ्यंतरलिंगकी शुद्धि कहिये शुद्धताकूं प्राप्त भया संता च्यार प्रकार बाह्यलिंग है ताहि सेवन करि जातैं जे भावरहित हैं तनिकै प्रगटपणैं बाह्यलिंग अकार्य है, कार्यकारी नांही है ॥

भावार्थ—जे भावकी शुद्धताकरि रहित हैं अपनी आत्माका यथार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण जिनकै नाही तिनिकै बाह्यलिंग कछू कार्यकारी नाही है, कारण पाय तत्काल बिगडे है, तातैं यह उपदेश है—पहलैं भावकी शुद्धताकरि द्रव्यलिंग धारणां। सो यह द्रव्यलिंग च्यारि प्रकार कह्या, ताकी सूचना ऐसी जो-मस्तकका, डाढीका, मूंछका, केशाका तौ लौंच करना तीन चिह्न तौ ये अर चौथा नीचले केश राखनां, अथवा वस्त्रका त्याग, केशनिका लौंच करना, शरीरका स्नानादिककरि

सस्कार न करनां, प्रतिलेखन मयूरपिच्छका राखना, ऐसैंभी च्यार प्रकार बाह्यलिंग कह्या है। ऐसैं सर्व बाह्य वस्त्रादिककरि रहित नग्न रहनां, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धिविना हास्यका ठिकाना है अर कछू उत्तम फलभी नाही है ॥ १११ ॥

आगैं कहै हैं जो-भाव विगडनेंके कारण च्यार सज्ञा हैं तिनिकरि संसार भ्रमण होय है, यह दिखावै हैं,—

आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं।
भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥११२॥

आहारभयपरिग्रहमैथुनसंज्ञाभिः मोहितः असि त्वम्।
भ्रमितः संसारवने अनादिकालं अनात्मवशः ॥११२॥

अर्थ—हे मुने! तू आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि संज्ञा तिनि करि मोहित भया अनादिकालतैं लगाय पराधीन भया संता संसाररूप वनमैं भ्रम्या ॥

भावार्थ—संज्ञा नाम वांछाका चेत रहनेंका है सो आहारकी दिशि भयकी दिशि मैथुनकी दिशि परिग्रहकी दिशि प्राणीकै निरतर चेत रहै है, यह जन्मान्तरमैं चली जाय है जन्म लेतेही तत्काल उघडै है, याहीके निमित्ततैं कर्मनिका बंध करि संसारवनमैं भ्रमैं है, तातैं मुनिनिकूं यह उपदेश है जो अब इनि संज्ञानिका अभाव करौ ॥ ११२ ॥

आगैं कहै हैं जो बाह्य उत्तरगुणकी प्रवृत्तिभी भाव शुद्ध करि करणीं;—

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि।
पालहि भावविसुद्धो पूयालाभं ण ईहंतो ॥ ११३ ॥

१—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें "नईहंतो" ऐसा एक पद किया है जिसकी संस्कृत 'अनीहमान.' ऐसी की है।

बहिःशयनातापनतरुमूलादीन् उत्तरगुणान् ।
पालय भावविशुद्धः पूजालाभं न ईहमानः ॥११३॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू भावकरि विशुद्ध भया संता पूजालाभादिकफूं न चाहता संता बाह्य शयन आतापन वृक्षमूलयोग धारना इत्यादिक उत्तरगुण हैं तिनिकूं पालि ॥

भावार्थ—शीतकालमें बाह्य खांडे सोवनां बैठना, ग्रीष्मकालमें पर्वतके शिखर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरनां, वर्षाकालमें वृक्षके मूल योग धरनां जहां बूंद वृक्षपरि पडे पीछे भेली होय शरीरपरि पडै याहां किछू प्रासुकका भी संकल्प अर बाधा बहुत इनिकूं आदि लेकरि ये उत्तरगुण हैं तिनिका पालना भी भाव शुद्धिकरि करना । भावशुद्धि विना करै तौ तत्काल बिगडै अर फल किछू नाही तातैं भाव शुद्ध करि करनेका उपदेश है । ऐसा ही न जाननां जो इनिका बाह्य करनां निषेध है, ये भी करनें अर भाव शुद्ध करना यह आशय है । अर केवल पूजालाभादिकं अर्थि अपनी महत्वता दिखावनेंके अर्थि करै तौ कछू फललाभकी प्राप्ति नांही है ॥ ११३ ॥

आगैं तत्त्वकी भावना करनेंका उपदेस करै हैं;—

भावहि पढमं तच्चं विदियं तदियं चउत्थ पंचमयं ।
तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं ॥ ११४॥

भावय प्रथमं तत्त्वं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं पंचमकम् ।
त्रिकरणशुद्धः आत्मानं अनादिनिधनं त्रिवर्गहरम् ॥११४॥

अर्थ—हे मुने ! तू प्रथमतत्त्व जो जीवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि द्वितीयतत्त्व जो अजीवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि तृतीयतत्त्व जो आस्रवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि चतुर्थतत्त्व जो बंधतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि पचमतत्त्व जो संवरतत्व ताकूं भाय, बहुरि त्रिकरण कहिये मन वचन काय

कृत कारित अनुमोदनाकरि शुद्ध भया संता आत्माकूं भाय. कैसा है आत्मा अनादिनिधन है, बहुरि कैसा है त्रिवर्ग कहिये धर्म अर्थ काम इनिका हरनेंवाला है ॥

भावार्थ—प्रथम जीवतत्त्वकी भावना तौ सामान्य जीव दर्शन ज्ञानमयी चेतना स्वरूप है ताकी भावना करनीं पीछैं ऐसा मैं हूं ऐसें आत्मतत्त्वकी भावना करनीं, बहुरि दूसरा अजीवतत्त्व है सो सामान्य अचेतन जड़ है सो पांचभेदरूप पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल है इनिकूं विचारणें पीछै भावना करनीं जो ये मैं नांही हूं, बहुरि तीसरा आस्रवतत्त्व है सो जीव पुद्गलके संयोगजनित भाव हैं तिनिमैं अनादि-कर्मसंबंधतैं जीवके भाव तौ रागद्वेष मोह हैं अर अजीव पुद्गलके भाव-कर्मका उदयरूप मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ये द्रव्य आस्रव हैं तिनिकी भावना करनीं जो ये मेरै होय हैं मेरे रागद्वेषमोह भाव हैं तिनि-करि कर्मका बंध होय है तिनितैं संसार होय है तातैं तिनिका कर्त्ता न होना, बहुरि चौथा बधतत्त्व है सो मैं रागद्वेपमोहरूप परिणमूं हूं सो तौ मेरा चेतनाका विभाव है इनितैं बंधै हैं ते पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होय बंधै है ते स्वभाव प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप च्यार प्रकार होय बधै हैं ते मेरे वि-भाव तथा पुद्गलकर्म सर्व हेय हैं संसारके कारण है मोकूं रागद्वेष मोहरूप न होना ऐसैं भावना करनीं, बहुरि पांचवा तत्व संवर है सो रागद्वेषमोह-रूप जीवके विभाव हैं तिनिका न होनां अर दर्शन ज्ञानरूप चेतनाभाव थिर होना यह संवर है सो अपना भाव है अर याही करि पुद्गल कर्मजनित भ्रमण मिटै है। ऐसैं इनि पांच तत्त्वनिकी भावना करनेमैं आत्मतत्त्वकी भावना प्रधान है ताकरि कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है, आत्मा भाव शुद्ध अनुक्रमतैं होनां यह तौ निर्जरातत्त्व भया अर सर्व कर्मका अभाव होनां यह मोक्षतत्त्व भया। ऐसैं सात तत्त्वकी भावनां करनीं। याहीतैं आत्मतत्त्वका विशेषण किया जो आत्मतत्त्व कैसा है—धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गका अभाव करै है याकी भावनातैं त्रिवर्गतैं न्यारा चौथा पुरु-

पार्थ मोक्ष है सो होय है। बहुरि यह आत्मा ज्ञानदर्शनमयीचेतनास्वरूप अनादिनिधन है जाका आदि भी नांहीं अर निधन कहिये नाश भी नाही। बहुरि भावना नाम बार बार अभ्यास करना चितवन करनेका है सो मन करि वचनकरि कायकरि आप करना तथा परकूं करावना करतेकू भला जानना, ऐसें त्रिकरण शुद्ध करि भावना करनी। माया मिथ्या निदान शल्य न राखणीं, ख्याति लाभ पूजाका आशय न राखना ऐसें तत्वकी भावना करनेंतैं भाव शुद्ध होय हैं। याका उदाहरण ऐसा जो—स्त्री आदि इंद्रियगोचर होय तब ताकै विषैं तत्व विचारना जो ये स्त्री है सो कहा है? जीवनामक तत्वकी एक पर्याय है अर याका शरीर है सो पुद्गलतत्वकी पर्याय है अर यह हावभाव चेष्टा करै है सो या जीवकै तौ विकार भया है सो आस्रवतत्व है अर बाह्य चेष्टा पुद्गलकी है, या विकारतैं या स्त्री की आत्माकै कर्मका वंध होय है, यहु विकार याकै न होय तौ आस्रव बंध याकै न होय। बहुरि कदाचित् मैं भी याकू देखि विकाररूप परिणमू तौ मेरै भी आस्रव वंध होय तातैं मोकूं विकाररूप न होना यह संवर तत्व है बनैं तौ कछू उपदेश करि याका विकार मेटूं ऐसैं तत्वकी भावनातैं अपना भाव अशुद्ध न होय तातैं जो दृष्टिगोचर पदार्थ आवै ताविषैं ऐसैं तत्वकी भावना राखणीं यह तत्वकी भावनाका उपदेश है॥ ११४॥

आगैं कहै हैं—ऐसैं तत्वकी भावना जेतैं नांही तेतैं मोक्ष नांही—

जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।
ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं॥११५॥

यावन्न भावयति तत्त्वं यावन्न चिंतयति चिंतनीयानि।
तावन्न प्राप्नोति जीवः जरामरणविवर्जितं स्थानम् ११५

अर्थ—हे मुने! जैतैं यह जीव आदि तत्वनिकू नाही भावै है,

बहुरि चिंतवन करने योग्यकूं नाही चिंतै है तेतै जरा अर मरणकरि रहित जो स्थान मोक्ष ताहि नांही पावै है ॥

भावार्थ—तत्वकी भावना तौ पूर्वैं कही सो चिंतवन करने योग्य धर्म शुक्लध्यानका विषयभूत सो ध्येय वस्तु अपनां शुद्ध दर्शनमयी चेतनाभाव अर ऐसाही अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप ताका चिंतवना जेतैं या आत्माकै नांही, तेतैं संसारतैं निवृत्त होनां नांही, तातैं तत्वकी भावना अर शुद्धस्वरूपका ध्यानका उपाय निरन्तर राखणा यह उपदेश है ॥ ११५ ॥

आगैं कहै हैं जो–पाप पुण्यका अर बंध मोक्षका कारण परिणाम ही है,—

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा ।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥११६॥

पापं भवति अशेषं पुण्यमशेषं च भवति परिणामात् ।
परिणामाद्बंधः मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥ ११६ ॥

अर्थ—पाप पुण्य बंध मोक्षका कारण परिणामही कह्या तहां जीवकै मिथ्यात्व विषय कषाय अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होय तिनितैं तौ पापास्रवका बंध होय है, बहुरि परमेष्ठीकी भक्ति जीवनिकी दया इत्यादिक मंदकषाय शुभलेश्यारूप परिणाम होय तातैं पुण्यास्रवका बंध होय है, अर शुद्ध परिणामरहित विभावरूप परिणामतैं बंध होय है । तहां शुद्धभावकै सन्मुख रहनां ताके अनुकूल शुभ परिणाम राखनें अशुभ परिणाम सर्वथा मेटनां, यह उपदेश है ॥ ११६ ॥

आगैं पुण्य पापका बंध जैसे भावनिकरि होय तिनिकूं कहै हैं, तहां प्रथमही पापबंधके परिणाम कहै हैं;—

मिच्छत्त तह कसायाऽसंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं ।
बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥११७॥

मिथ्यात्वं तथा कषायासंयमयोगैः अशुभलेश्यैः।
बध्नाति अशुभं कर्म जिनवचनपराङ्मुखः जीवः ॥११७॥

अर्थ—मिथ्यात्व तथा कषाय अर असंयम अर योग ते कैसे, अशुभ है लेश्या जिनिमैं ऐसे भावनि करि तौ यह जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है, कैसा जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है-जिनवचनतैं पराङ्मुख है सो पाप बाधै है॥

भावार्थ—मिथ्यात्व भाव तौ तत्वार्थका श्रद्धानरहित परिणाम है, बहुरि कषाय क्रोधादिक हैं, अर असयम परद्रव्यके ग्रहणरूप है त्यागरूप भाव नांही, ऐसे इन्द्रियनिके विषयनितैं प्रीति जीवनिकी विराधनासहित भाव है, योग मनवचनकायके निमित्ततैं आत्मप्रदेशका चलनां है। ये भाव हैं ते जब तीव्रकषायसहित कृष्णनील कापोत अशुभ लेश्यारूप होय तब या जीवके पापकर्मका बध होय है। तहा पापबंध करनें वाला जीव कैसा है-ताकै जिनवचनकी श्रद्धा नांही, इस विशेषणका आशय यह जो अन्य मतके श्रद्धानीकै जो कदाचित् शुभलेश्याके निमित्ततैं पुण्यका भी बध होय तौ ताकूं पापहीमैं गिणिये, अर जो जिन आज्ञामैं प्रवर्तै है ताकै कदाचित् पापभी बंधै तौ वह पुण्यजीवनिकी ही पंक्तिमैं गिणिये है, मिथ्यादृष्टीकूं पापजीवनिमैं गिण्या है सम्यग्दृष्टीकूं पुण्यजीवनिमैं गिण्या है। ऐसैं पापबंधके कारण कहे॥ ११७॥

आगैं यातैं उलटा जीव है सो पुण्य बांधै है ऐसैं कहै हैं;—

तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो।
दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं॥ ११८॥

तद्विपरीतः बध्नाति शुभकर्म भावशुद्धिमापन्नः।
द्विविप्रकारं बध्नाति संक्षेपेणैव कथितम्॥ ११८॥

अर्थ—तिस पूर्वोक्त जिनवचनका श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित

सम्यग्दृष्टी जीव है सो शुभकर्मकूं बांधै है कैसा है जीव भावनिकी जो विशुद्धि ताकूं प्राप्त है। ऐसैं दोऊ प्रकार दोऊ शुभाशुभ कर्म बांधै है यह संक्षेपकरि जिन कह्या ॥

भावार्थ—पूर्वैं कह्या जिनवचनतैं पराङमुख मिथ्यात्वसहित जीव तिसतैं विपरीत कहिये जिन आज्ञाका श्रद्धानी सम्यग्दृष्टी जीव है सो विशुद्धभावकूं प्राप्त भया शुभकर्मकूं बांधै है जातैं याके सम्यक्त्वके माहात्म्यकरि ऐसे उज्ज्वल भाव हैं ताकरि मिथ्यात्वकी लार बंध होती पापप्रकृतिनिका अभाव है, कदाचित् किंचित् कोई पापप्रकृति बंधै है तिनिका अनुभाग मंद होय है कछू तीव्र पापफलका दाता नाहीं तातैं सम्यग्दृष्टी शुभकर्महीका बांधनेवाला है। ऐसैं शुभ अशुभ कर्मके बंधका संक्षेपकरि विधान सर्वज्ञदेवनै कह्या है सो जानना ॥ ११९ ॥

आगैं कहै है जो—हे मुने! तू ऐसी भावनाकरि,—

णाणावरणादीहिं य अट्ठहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं।
डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ११९

ज्ञानावरणादिभिः च अष्टभिः कर्मभिः वेष्टितश्च अहं।
दग्ध्वा इदानीं प्रकटयामि अनंतज्ञानादिगुणचेतनां ॥

अर्थ—हे मुनिवर! तू ऐसी भावनाकरि जो मैं ज्ञानवरणकूं आदि लेकरि आठ कर्म हैं तिनितैं वेढ्याहू यातैं इनिकूं भस्मकरि अनंतज्ञानादि गुणनिजस्वरूप चेतनाकूं प्रगट करूं ॥

भावार्थ—आपकूं कर्मनिकरि वेढ्या मानैं अर तिनिकरि अनंतज्ञानादि गुण आच्छादे मानैं तब तिनि कर्मनिका नाश करना विचारै, तातैं कर्मनिका बंधकी अर तिनिका अभावकी भावना करनेका उपदेश है, अर कर्मनिका अभाव शुद्धस्वरूपके ध्यावनेतैं होय है सो करनेका उपदेश है। कर्म आठ हैं ते ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये तौ घातिया कर्म हैं, इनिकी प्रकृति सैंतालीस हैं, तिनिमैं केवलज्ञाना-

वरणतैं तौ अनतज्ञान आच्छादित है, अर केवलदर्शनावरणतैं अनंतदर्शन आच्छादित है, अर मोहनीयतैं अनंतसुख प्रगट न होय है अर अंतरायतैं अनतवीर्य प्रगट न होय है सो इनिका नाश करनां। बहुरि च्यारि अघाति कर्म हैं तिनितैं अव्याबाध अगुरुलघु सूक्ष्मता अवगाहना ये गुण प्रगट न होय हैं, इनि अघातिकर्मनिकी प्रकृति एकसौ एक है। तिनि घातिकर्मनिका नाश भये अघाति कर्मनिका स्वयमेव अभाव होय है, ऐसैं जाननां ॥ ११९ ॥

आगैं इनि कर्मनिका नाश होनेकूं अनेक प्रकार उपदेश है ताकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

सीलसहस्सट्ठारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं ।
भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं बहुणा १२०

शीलसहस्राष्टादश चतुरशीतिगुणगणोनां लक्षाणि ।
भावय अनुदिनं निखिलं असत्प्रलापेन किं बहुना ॥१२०॥

अर्थ—शील तौ अठारह हजार भेदरूप है बहुरि उत्तरगुण चौरासी लाख हैं तहा आचार्य कहै हैं जो—हे मुने! बहुत झूंठे प्रलापरूप निरर्थक वचनकरि कहा? इनि शीलनिकूं अर उत्तरगुणनिकूं सर्वकूं तू निरन्तर भाय, इनिकी भावना चितवन अभ्यास निरन्तर राखि, इनिकी प्राप्ति होय तैसैं करि ॥

भावार्थ—आत्मा जीवनामा वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है, संक्षेप करि याकी दोय परिणति हैं, एक स्वाभाविक एक विभावरूप। तामैं स्वाभाविक तौ शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है; अर विभावपरिणाम कर्मके निमित्ततैं हैं, ते प्रधानकरि तौ मोहकर्मके निमित्ततैं भये संक्षेप करि मिथ्यात्व रागद्वेष हैं तिनिके विस्तारकरि अनेक भेद हैं। बहुरि अन्यकर्मके उदयकरि विभाव होय है तिनिमैं पौरुष प्रधान नांही तातैं उपदेश अपेक्षा ते गौण हैं। ऐसैं ये शील अर उत्तरगुण स्वभाव विभाव

परिणतिके भेदतैं भेदरूपकरि कहे हैं, तहां शीलकी तौ दोय प्रकार प्ररूपणा है—एकतौ स्वद्रव्य परद्रव्यके विभाग अपेक्षा है अर स्त्रीके संसर्गकी अपेक्षा है। तहां परद्रव्यका संसर्ग मन वचन कायकरि होय अर कृत कारित अनुमोदनाकरि होय सो न करणां, इनिकू परस्पर गुणें नव भेद होंय। बहुरि आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार सञ्ज्ञा हैं इनिकरि परद्रव्यका संसर्ग होय हैं ताका न होनां यातैं नवभेदनिकूं च्यार सञ्ज्ञानितै गुणे छत्तीस होय। बहुरि पाच इंद्रियनिके निमित्ततैं विषयनिका संसर्ग होय है तिनिकी प्रवृत्तिका अभावरूप पाच इंद्रियनिकरि छत्तीसकूं गुणें एकसौ अस्सी होय हैं। बहुरि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक साधारण ये तौ एकेंद्रिय अर द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पचेंद्रिय ऐसैं दशभेदरूप जीवनिका संसर्ग इनिकी हिंसारूप प्रवर्त्तनेतैं परिणाम विभावरूप होय हैं सो न करणा, ऐसैं एकसौ अस्सी भेदनिकूं दशकरि गुणें अठारासै होय। बहुरि क्रोधादिक कषाय अर असंयम परिणामतैं परद्रव्यस बंधी विभावपरिणाम होय हैं तिनिके अभावरूप दश लक्षण धर्म हैं तिनितैं गुणे अठारह हजार होय हैं। ऐसैं परद्रव्यके संसर्गरूप कुशीलके अभावरूप शीलके अठारह हजार भेद हैं इनिके पाले परम ब्रह्मचर्य होय हैं, ब्रह्म कहिये आत्मा ताविषै प्रवर्त्तना रमना ताकूं ब्रह्मचर्य कहिये है।

बहुरि स्त्रीके संसर्गकी अपेक्षा ऐसैं है,—स्त्री दोय प्रकार, तहां अचेतन स्त्री तौ काष्ठ पाषाण लेप कहिये चित्राम ये तीन मन अर काय इनि दोयकरि ससर्ग होय, इहां वचन नाही तातैं दोयकरि गुणे छह होय। बहुरि कृतकारित अनुमोदनाकरि गुणें अठारह होय। बहुरि पांच इन्द्रियनिकरि गुणें निव्वै होय। बहुरि द्रव्य भावकरि गुणे एक सौ अस्सी होय। बहुरि क्रोध मान माया लोभ इनि च्यार कषायनिकरि गुणें सातसैवीस होय। बहुरि चेतन स्त्री देवी मनुष्यणी तिर्यंचणी ऐसै तीन, सो इनि तीननिनैं मन वचन कायकरि गुणें नव होय। तिनिकूं

कृत कारित अनुमोदनाकरि गुणें सत्ताईस होय। तिनिकूं पांच इन्द्रियनितैं गुणें एकसौ पैंतीस होय तिनिकूं द्रव्य अर भाव इनि दोयकरि गुणें दोयसै सत्तरि होय। तिनिकूं च्यार संज्ञातै गुणे एक हजार अस्सी होय। इनिकूं अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इनि सोलह कषायनितैं गुणें सतराहजार दोयसैं अस्सी होय है। ऐसैं अचेतनस्त्रीके सातसैबीस मिलाये अठारह हजार होय हैं, ऐसैं स्त्रीके संसर्गतैं विकार परिणाम होय ते कुशील हैं इनिका अभावरूप परिणाम ते शील हैं याकूं भी ब्रह्मचर्यसंज्ञा है॥

बहुरि चौरासी लाख उत्तरगुण ऐसैं हैं जो आत्माके विभाव परिणामनिके बाह्यकारणनिकी अपेक्षा भेद होय है, तिनिके अभावरूप ये गुणनिके भेद हैं, तिनि विभावनिका संक्षेपकरि भेदनिकी गणना ऐसैं;— हिंसा १ अनृत २ स्तेय ३ मैथुन ४ परिग्रह ५ क्रोध ६ मान ७ माया ८ लोभ ९ भय १० जुगुप्सा ११ अरति १२ शोक १३ मनोदुष्टत्व १४ वचनदुष्टत्व १५ कायदुष्टत्व १६ मिथ्यात्व १७ प्रमाद १८ पैशून्य १९ अज्ञान २० इन्द्रियनिका अनुग्रह २१ ऐसै इकईस दोष है, तिनिकूं अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार अनाचार इनि च्यारनितैं गुणें चौरासी होय हैं। बहुरि पृथ्वी अप तेज वायु प्रत्येक साधारण ये तो थावर एकेंद्रिय जीव छह अर विकल तीन पंचेंद्रिय एक ऐसैं जीवनिका दश भेद तिनिका परस्पर आरंभतैं घात होत परस्पर गुणें सौ (१००) होय इनितैं चौरासीकूं गुणें चौरासी सौ होय है। बहुरि तिनिकूं दश शील विराधनातैं गुणें चौराशी हजार होय, तिनि दशके नाम—स्त्रीसंसर्ग १ पुष्टरसभोजन २ गंधमाल्यका ग्रहण ३ शयनासन सुन्दरका ग्रहण ४ भूषणका मंडन ५ गीतवादित्रका प्रसंग ६ धनका सम्प्रयोजन ७ कुशीलका संसर्ग ८ राजसेवा ९ रात्रिसंचरण १० ये दश शील विराधना हैं। बहुरि तिनिकूं आलोचनाके दश दोष हैं जो गुरुनि पासि लगे दोषनिकी आलोचना

करै सो सरल होय न करै कछू शल्य राखै ताके दश भेद किये हैं तिनितैं गुणें आठ लाख चालीस हजार होय है। बहुरि आलोचनाकूं आदि देय प्रायश्चित्तके भेद है तिनितैं गुणें चौरासीलाख होय है। सो सर्व दोषनिके भेद है इनिका अभावतैं गुण है इनिकी भावना राखै चितवन अभ्यास राखै इनिकी संपूर्ण प्राप्ति होनेंका उपाय राखै, ऐसैं, इनिकी भावनाका उपदेश है। आचार्य कहै हैं जो बारबार बहुत वचनके प्रलाप करि तौ कछू साध्य नांही जो कछू आत्माके भावकी प्रवृत्तिके व्यवहारके भेद है तिनिकूं गुण संज्ञा है तिनिकी भावना राखणी बहुरि इहां एता और जानना जो—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिस परिपाटीकरि गुण दोषनिका विचार है। तहां मिथ्यात्व सासादन मिश्र इनि तीननिमैं तौ विभावपरणतिही है तहां तौ गुणका विचार नांही। बहुरि अविरत देशविरत आदिमैं गुणका एकदेश आवै है, तहां अविरतमैं मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कषायके अभावरूप गुणका एकदेश सम्यक्त्व अर तीव्र राग द्वेषका अभावरूप गुण आवै है, बहुरि देश विरतमैं कछू व्रतका एकदेश आवै है। अर प्रमत्तमैं महाव्रतरूप सामायिक चारित्रका एकदेश आवै है जातैं पापसंबंधी तौ राग द्वेष तहां नाही परन्तु धर्मसम्बन्धी राग अर सामायिक राग द्वेषका अभावका नाम है तातैं सामायिकका एकदेशाही कहिये, अर इहां स्वरूपके सन्मुख होनेविषैं क्रियाकांडके संबंधतैं प्रमाद है तातैं प्रमत्त नाम दिया है। बहुरि अप्रमत्तविषैं स्वरूप साधनेंविषैं प्रमादसौ नांही परन्तु कछू स्वरूपके साधनेंका राग व्यक्त है तातैं तहांभी सामायिकका एकदेशाही कहिये। बहुरि अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणविषैं राग व्यक्त नांही अव्यक्तकषायका सद्भाव है तातैं सामायिक चारित्रकी पूर्णता कही। बहुरि सूक्ष्मसांपराय है सो अव्यक्तकषायभी सूक्ष्म रहिगई तातैं याका नाम सूक्ष्मसांपराय दिया। बहुरि उपशांतमोह क्षीणमोहविषैं कषायका अभावही है तातैं जैसा आत्माका मोहविकाररहित शुद्ध स्वरूप था ताका अनुभव भया तातैं यथाख्यात चारित्र नाम पाया, ऐसैं मोहकर्मके अभावकी अपेक्षा तौ तहांही उत्तरगुणनिकी पूर्णता कहिये

परन्तु आत्माका स्वरूप अनंतज्ञानादि स्वरूप है सो घातिकर्मके नाश भये अनंतज्ञानादि प्रगट होय तब सयोगकेवली कहिये तहांभी कछू योगनिकी प्रवृत्ति है, तातैं अयोगकेवली चौदमा गुणस्थान है तहां योगनिकी प्रवृत्ति मिटि अवस्थित आत्मा होय जाय है तब चौरासीलाख उत्तरगुणनिकी पूर्णता कहिये। ऐसैं गुणस्थाननिकी अपेक्षा उत्तरगुणनिकी प्रवृत्ति विचारणी। ये बाह्य अपेक्षा भेद हैं अंतरंग अपेक्षा विचारिये तब संख्यात असंख्यात अनंत भेद होय हैं, ऐसैं जानना ॥ १२० ॥

आगैं भेदनिका विकल्पतैं रहित होय ध्यान करनेका उपदेश करे हैं:-

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण ।
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥ १२१ ॥

ध्याय धर्म्यं शुक्लं आर्त्तं रौद्रं च ध्यानं मुक्त्वा ।
रौद्रार्त्ते ध्याते अनेन जीवेन चिरकालम् ॥ १२१ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू आर्त्तरौद्र ध्यानकूं छोड़ि धर्म शुक्लध्यान हैं तिनिहि ध्याय जातैं रौद्र अर आर्त्तध्यान तौ या जीवनैं अनादितैं लगाय बहुतकाल ध्याये ॥

भावार्थ—आर्त्तरौद्र ध्यान तौ अशुभ हैं संसारके कारण हैं सो ये दोऊ ध्यान तौ जीवकै बिना उपदेशही अनादितैं प्रवर्त्तै हैं तातैं तिनिकूं छोड़नेंका उपदेश है। बहुरि धर्मशुक्ल ध्यान हैं ते स्वर्ग मोक्षके कारण हैं इनिकूं कबहूँ ध्याये नांहीं तातैं तिनिकूं ध्यावनेंका उपदेश है। तहां ध्यानका स्वरूप एकाग्रचिंतानिरोध कह्या है—तहां धर्मध्यानमैं तौ धर्मानुरागका सद्भाव है सो धर्मके मोक्षमार्गके कारणविषैं रागसहित एकाग्रचिंतानिरोध होय है तातैं शुभरागके निमित्ततैं पुण्यबंधभी होय है अर विशुद्धताके निमित्ततैं पापकर्मकी निर्जराभी होय है। बहुरि शुक्लध्यानमैं

आठवे नवमें दशमे गुणस्थान तौ अव्यक्तराग है तहाँ अनुभव अपेक्षा उपयोग उज्ज्वल है तातैं शुक्लनाम पाया है अर यातैं ऊपरिके गुणस्थाननिमैं राग कषायका अभावही है तातैं सर्वथाही उपयोग उज्ज्वल है तहां शुक्लध्यान युक्तही है। तहां एता विशेष और है जो उपयोगका एकाग्रपणां रूप ध्यानकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी कही है तिस अपेक्षा तेरमें चौदमें गुणस्थान ध्यानका उपचार है अर योगक्रियाके थमनकी अपेक्षा ध्यान कह्या है। यह शुक्लध्यान कर्मकी निर्जराकरि जीवकूं मोक्ष प्राप्त करै है, ऐसैं ध्यानका उपदेश जानना ॥ १२९ ॥

आगैं कहै हैं यह ध्यान भावलिंगी मुनिनिकूं मोक्ष करै है;—

जे के वि दव्वसमणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति।
छिंदंति भावसवणा झाणकुठारेहिं भवरुक्खं ॥ १२२ ॥

ये केऽपि द्रव्यश्रमणा इन्द्रियसुखाकुलाः न छिंदन्ति।
छिन्दन्ति भावश्रमणाः ध्यानकुठारैः भववृक्षम् ॥१२२॥

अर्थ—केई द्रव्यलिंगी श्रमण हैं ते तौ इन्द्रियसुखविषैं व्याकुल हैं तिनिकै यह धर्मशुक्लध्यान होय नाही ते तौ संसाररूप वृक्षके काटनेकूं समर्थ नांही हैं, बहुरि जे भावलिंगी श्रमण हैं ते ध्यानरूप कुहाडेनिकरि संसाररूप वृक्षकूं काटैं हैं ॥

भावार्थ—जे मुनि द्रव्यलिंग तौ धारैं हैं परन्तु परमार्थसुखका अनुभव जिनिकै न भया तातैं इस लोक परलोकविसैं इन्द्रियनिका सुख हीकूं चाहैं हैं तपश्चरणादिक भी याही अभिलाषतैं करैं हैं तिनिकै धर्मशुक्लध्यान काहे तैं होय? न होय, बहुरि जिनिमैं परमार्थ सुखका उपाय धर्म शुक्लध्यान है ताकू करि संसारका अभाव करैं हैं तातैं भावलिंगी होय ध्यानका अभ्यास करनां ॥ १२२ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै हैं;—

जह दीवो गब्भहरे मारुयवाहाविवज्जिओ जलइ ।
तह रायानिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ॥ १२३ ॥

यथा दीपः गर्भगृहे मारुतबाधाविवर्जितः ज्वलति ।
तथा रागानिलरहितः ध्यानप्रदीपः अपि प्रज्वलति ॥

अर्थ—जैसें दीपक है सो गर्भगृह कहिये जहां पवनका संचार नांही ऐसा मध्यका घर ताविषैं पवनकी बाधाकरि रहित निश्चल भया उज्वलै है उद्योत करै है तैसें अंतरंग मनविषैं रागरूपी पवनकरि रहित ध्यानरूपी दीपक भी प्रज्वलै है एकाग्र होय ठहरै है आत्मरूपकूं प्रकाशै है ॥

भावार्थ—पूर्वे कह्या था जो इन्द्रियसुखकरि व्याकुल हैं तिनिकै शुभ ध्यान न होय है ताका यह दीपकका दृष्टान्त है—जहां इन्द्रियनिके सुखविषैं जो राग सोही भई पवन सो विद्यमान है तिनिकै ध्यानरूपी दीपक कैसें निर्बाध उद्योत करै ? न करै, अर जिनिकै यह रागरूप पवन बाधा न करै तिनिकै ध्यानरूप दीपक निश्चल ठहरै है ॥ १२३ ॥

आगे कहै हैं—जो ध्यानविषैं परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्माका स्वरूप है तिसस्वरूपके आराधनेविषैं नायक प्रधान पंच परमेष्ठी हैं तिनिकूं ध्यावनां, यह उपदेश करै हैं;—

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥ १२४ ॥

ध्याय पंच अपि गुरुन् मंगलचतुः शरणपरिकरितान् ।
नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान् ॥१२४॥

अर्थ—हे मुने ! तू पंच गुरु कहिये पंच परमेष्ठी हैं तिनहिं ध्याय, इहां 'अपि' शब्द है सो शुद्धात्मस्वरूपके ध्यानकूं सूचै है, ते पच परमेष्ठी कैसे हैं—मंगल कहिये पापका गालणा अथवा सुखका देना अर

चउशरण कहिये च्यार शरण अर लोक कहिये लोकके प्राणी तिनिकरि अरहत सिद्ध साधु केवलि प्रणीत धर्म ये परिकरित कहिये परिवारित हैं युक्त हैं, बहुरि नर सुर विद्याधरनिकरि सहित हैं पूज्य हैं लोकोत्तम कहै हैं, बहुरि आराधनाके नायक हैं, बहुरि वीर हैं कर्मनिके जीतनेंकूं सुभट हैं तथा विशिष्ट लक्ष्मीकूं प्राप्त हैं तथा देहैं, ऐसे पंच परम गुरुकूं ध्याय ॥

भावार्थ—इहां पच परमेष्ठीकूं ध्यावना कह्या तहां ध्यानविषैं विघ्नके निवारनेवाले च्यार मंगलस्वरूप कहे ते येही हैं, बहुरि च्यार शरण अर लोकोत्तम कहे हैं ते भी इनिहीकूं कहे हैं, इनिसिवाय प्राणीकूं अन्य शरण रक्षा करनेंवाला भी नाहीं है, अर लोकविषैं उत्तमभी येही हैं। बहुरि आराधना दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये च्यार हैं ताकै नायक स्वामीभी येही हैं, कर्मनिकूं जीतनेंवालेभी येही हैं। तातैं ध्यानके कर्त्ताकूं इनिका ध्यान श्रेष्ठ है, शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति इनिहीके ध्यानतैं होय है तातैं यह उपदेश है ॥ १२४ ॥

आगैं ध्यान है सो ज्ञानका एकाग्र होना है सो ज्ञानका अनुभवन का उपदेश करै हैं,—

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
बाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥ १२५ ॥

ज्ञानमयविमलशीतलसलिलं प्राप्य भव्याः भावेन।
व्याधिजरामरणवेदनादाहविमुक्ताः शिवाः भवन्ति ॥

अर्थ—भव्यजीव हैं ते ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल है ताहि सम्यक्त्वभावकरि सहित पीयकरि अर व्याधिस्वरूप जो जरा मरण ताकी वेदना पीड़ा ताहि भस्म करि मुक्त कहिये संसारतैं रहित शि[illegible] परमानंद सुखरूप होय हैं ॥

भावार्थ—जैसें निर्मल अर शीतल ऐसे जलके पीये पित्तका दाहरूप व्याधि मिटै अर साता होय है तैसें यह ज्ञान है सो जब रागादिकमलतें रहित निर्मल होय अर आकुलतारहित शांतभावरूप होय ताकी भावनाकरि रुचि श्रद्धा प्रतीतिकरि पीवै यासूं तन्मय होय तौ जरा मरणरूप दाह वेदना मिटि जाय अर संसारतें निवृत्त होय सुखरूप होय, तातैं भव्यजीवनिकूं यह उपदेश है जो ज्ञानमैं लीन होहु ॥ १२५ ॥

आगैं कहै हैं जो—या ध्यानरूप अग्निकरि संसारका बीज आठ कर्म एक वार दग्ध भये पीछैं फेरि संसार न होय है, सो यह बीज भावमुनिके दग्ध होय है;—

जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे ।
तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भवसवणाणं ॥ १२६ ॥

यथा बीजे च दग्धे नापि रोहति अंकुरश्च महीपीठे ।
तथा कर्मबीजदग्धे भवांकुरः भावश्रमणानाम् ॥ १२६ ॥

अर्थ—जैसें पृथ्वीके स्थलविषैं बीज दग्ध होनैं संतैं तिसका अंकुर है सो फेरि नाही ऊगै है तैसें जे भावलिंगी श्रमण हैं तिनिकै संसारका कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाय है, यातैं संसाररूप अंकुरा फेरि नांही होय है ॥

भावार्थ—संसारका बीज ज्ञानावरणादिक कर्म है सो कर्म भावश्रमणकै ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध हो जाय है तातैं फेरि संसाररूप अंकुरा काहेतैं होय ? तातैं भावश्रमण होय धर्म शुक्लध्यानतैं कर्मका नाश करनां योग्य है, यह उपदेश है । कोई सर्वथा एकांती अन्यथा कहै जो कर्म अनादि है ताका अंत भी नांही, ताका यह निषेध भी है, बीज अनादि है सो एक बार दग्ध भये पीछैं फेरि न ऊगै तैसें जानना ॥ १२६ ॥

आगैं संक्षेपकरि उपदेश करै हैं,—

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होइ ॥ १२७ ॥

भावश्रमणः अपि प्राप्नोति सुखानि दुःखानि द्रव्यश्रमणश्च।
इति ज्ञात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतः भव ॥ १२७॥

अर्थ—भावश्रमण तौ सुखनिकूं पावै है बहुरि द्रव्यश्रमण है सो दुःखनिकूं पावै है ऐसैं गुण दोषनिकूं जाणि हे जीव तू भावकरि सयुक्त सयमी होहु ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनसहित तौ भावश्रमण होय है सो ससारका अभावकरि सुखनिकूं पावै है, अर मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण भेषमात्र होय है सो संसारका अभाव न करि सकै है तातैं दुःखनिकूं पावै है यातैं उपदेश करै हैं जो दोऊका गुण दोष जाणि भावसयमी होना योग्य है, यह सर्व उपदेशका सक्षेप है ॥ १२७ ॥

आगैं फेरि भी याहीका उपदेश अर्थरूप सक्षेपकरि कहै है,—

तित्थयरगणहराइं अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं।
पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

तीर्थकरगणधरादीनि अभ्युदयपरंपराणि सौख्यानि।
प्राप्नुवंति भावश्रमणाः संक्षेपेण जिनैः भणितम् ॥१२८॥

अर्थ—जे भावसहित मुनि हैं ते अभ्युदयसहित तीर्थंकर गणधर आदि पदवीके सुख तिनिकूं पावैं हैं यह संक्षेपकरि कह्या है ॥

भावार्थ—तीर्थंकर गणधर चक्रवर्त्ती आदि पदवीके सुख बड़े अभ्युदयसहित हैं तिनहिं भावसहित सम्यग्दृष्टी मुनि हैं ते पावैं हैं, यह सर्व उपदेशका संक्षेपकरि उपदेश कह्या है तातैं भावसहित मुनि होना योग्य है ॥ १२८ ॥

आगैं आचार्य कहै हैं जो-जे भावश्रमण हैं ते धन्य हैं तिनिकूं हमारा नमस्कार होहू,—

ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं ।
भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाण ॥१२९॥

ते धन्याः तेभ्यः नमः दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धेभ्यः ।
भावसहितेभ्यः नित्यं त्रिविधेन प्रणष्टमायेभ्यः ॥१२९॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-जे मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ विशिष्ट ज्ञान अर निर्दोष चारित्र इनिकरि शुद्ध हैं याहीतैं भावकरि सहित हैं, बहुरि प्रणष्ट भई है माया कहिये कपटपरिणाम जिनिकै ऐसे हैं ते धन्य हैं तिनिकै अर्थि हमारा मन वचन कायकरि सदा नमस्कार होहु ॥

भावार्थ—भावलिंगीनिमैं दर्शन ज्ञान चारित्रकरि जे शुद्ध है तिनिकी आचार्यनिकैं भक्ति उपजी है तातैं तिनिकूं धन्य कहिकरि नमस्कार किया है सो युक्त है, जिनिकै मोक्षमार्गविषैं अनुराग है जे तिनिमैं मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमैं प्रधानता दीखै तिनिकूं नमस्कार करै ही करैं ॥ १२९ ॥

आगै कहै हैं-जे भावश्रमण हैं ते देवादिककी ऋद्धि देखि मोहकूं प्राप्त न होय है,—

इड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं ।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो ॥१३०॥

ऋद्धिमतुलां विकुर्वद्भिः[1] किंनरकिंपुरुषामरखचरैः ।
तैरपि न याति मोहं जिनभावनाभावितः धीरः ॥१३०॥

अर्थ-जिनभावना जो सम्यक्त्वभावना ताकरि वासित जो जीव है सो किन्नर किंपुरुष देव अर कल्पवासी देव अर विद्याधर इनिकरि विक्रि-

१—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'विकृता' ऐसा पाठ है ।

यारूप विस्तारी जो अतुल ऋद्धि तिनिकरि मोहकूं प्राप्त न होय है जातैं कैसा है सम्यग्दृष्टी जीव—धीर है दृढबुद्धि है निःशंकित अंगका धारक है ॥

भावार्थ—जिसकै जिनसम्यक्त्व दृढ है तिसकै संसारकी ऋद्धि तृणवत् है परमार्थसुखहीकी भावना है विनाशीक ऋद्धिकी वांछा काहेकूं होय ? ॥ १३० ॥

आगैं इसहीका समर्थन है जो- ऐसी ऋद्धि ही न चाहै तौ अन्य सांसारिक सुखकी कहा कथा ?,—

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं ।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो ॥१३१॥

किं पुनः गच्छति मोहं नरसुरसुखानां अल्पसाराणाम् ।
जानन् पश्यन् चिंतयन् मोक्षं मुनिधवलः ॥ १३१ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वोक्त प्रकारकी ही ऋद्धिकूं न चाहै तौ मुनिधवल कहिये मुनिप्रधान है सो अन्य जे मनुष्य देवनिके सुख भोगादिक जिनिमैं अल्पसार-ऐसे जिनिविषैं कहा मोहकूं प्राप्त होय ? कैसा है मुनिधवल—मोक्षकूं जानता है तिसहीकी तरफ दृष्टि है तिसहीका चितवन करै है ।

भावार्थ—जे मुनिप्रधान हैं तिनिकी भावना मोक्षके सुखनिमैं है ते बड़ी बड़ी देव विद्याधरनिकी फैलाई विक्रियाऋद्धि विषैंही लालसा न करै तौ किंचित्मात्र विनाशीक जे मनुष्य देवनिका भोगादिकका सुख तिनिविषैं वांछा कैसैं करै ? न करै ॥ १३१ ॥

आगैं उपदेश करै हैं जो—जेतैं जरा आदिक न आवैं ते तैं अपनां हित करौ;—

उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं ।
इंदियबलं न वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ॥१३२॥

आक्रमते यावन्न जरा रोगाग्निर्यावन्न दहति देहकुटीम् ।
इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम् ॥१३२॥

अर्थ—हे मुने ! जेतैं तेरै जरा वृद्धपणा न आवै बहुरि रोगरूप अग्नि तेरी देहरूप कुटीकूं जेतैं दग्ध न करै बहुरि जेतैं इन्द्रियनिका बल न घटै तेतैं अपना हितकू करि ॥

भावार्थ—वृद्ध अवस्थामैं देह रोगनिकरि जर्जरी होय इंद्रिय क्षीण पड़ै तब असमर्थ भया इस लोकके कार्य उठनां बैठना भी न करि सकै तब परलोक संबधी तपश्चरणादिक तथा ज्ञानाभ्यास स्वरूपका अनुभवादिक कार्य कैसैं करै तातैं यह उपदेश है जो–जेतैं सामर्थ्य है तेतैं अपनां हितरूप कार्य करिल्यो ॥ १३२ ॥

आगैं अहिंसाधर्मका उपदेश वर्णन करै हैं;—

छज्जीव षडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं ।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं ॥१३३॥

[1]षट्जीवान् षडायतनानां नित्यं मनोवचनकाययोगैः ।
कुरु दयां परिहर मुनिवर भावय अपूर्वं महासत्त्वम् ॥१३३॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू छहकायके जीवनिकी दयाकरि, बहुरि छह अनायतनकूं परिहरि छोडि, कैसैं छोडि–मन वचन कायके योगनिकरि छोडि; बहुरि अपूर्व जो पूर्वैं न भया ऐसा महासत्त्व कहिये सर्व जीवनिमैं व्यापक महासत्त्व चेतनाभाव ताहि भाय ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'महासत्त' ऐसा संबोधनपद किया है जिसकी संस्कृत 'महासत्त्व' है ।

मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'षट्जीवषडायतनानां' एक पद किया है ।

भावार्थ—अनादिकालतैं जीवका स्वरूप चेतनास्वरूप न जाण्या तातैं जीवनिकी हिंसा करी तातै यह उपदेश है जो अब जीवात्माका स्वरूप जाणि छह कायके जीवनिकी दया करि। बहुरि अनादिहीतैं आप्त आगम पदार्थका अर इनका सेवनेंवालाका स्वरूप जाण्या नाही तातैं अनाप्त आदि छह अनायतन जे मोक्षमार्गके ठिकाणे नांही तिनिकूं भले जांणि सेवन किया तातैं यह उपदेश है जो अनायतनका परिहार करि जीवका स्वरूपका उपदेशक ये दोऊही तैं पूर्वैं जाणे नाही, भाया नाहीं तातैं अब भाय, ऐसा उपदेश है ॥ १३३ ॥

आगैं कहै हैं जो—जीवका तथा उपदेश करनेंवालाका स्वरूप जाण्या विना सर्वजीवनिके प्राणनिका आहार किया ऐसैं दिखावै हैं;—

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण ॥
भोयसुहकारणट्ठं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं ॥१३४

दशविधप्राणाहारः अनंतभवसागरे भ्रमता।
भोगसुखकारणार्थं कृतश्च त्रिविधेन सकलजीवानां ॥

अर्थ—हे मुने! तै अनतभवसागरमैं भ्रमता सकल त्रस थावर जीवनिके दशविध प्राणनिका आहार, भोग सुखकै कारणकै अर्थि मन वचनकायकरि किया ॥

भावार्थ—अनादिकालतैं जिनमतका उपदेशविना अज्ञानी भया तैं त्रसथावर जीवनिके प्राणनिका आहार किया तातैं अब जीवनिका स्वरूप जांणि जीवनिकी दया पालि भोगाभिलाप छोडि, यह उपदेश है ॥१३४॥

फेरि कहै हैं—ऐसैं प्राणीनिकी हिंसाकरि संसारमैं भ्रमिकरि दुःख पाया;—

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।
उप्पजंत मरंतो पत्तोसि निरंतरं दुक्खं ॥ १३५ ॥

प्राणिविधैः महायशः ! चतुरशीतिलक्षयोनिमध्ये ।
उत्पद्यमानः म्रियमाणः प्राप्तोऽसि निरंतरं दुःखम् ॥१३५॥

अर्थ—हे मुने ! हे महायश ! तैं प्राणीनिके घातकरि चौरासी लाख योनिकै मध्य उपजतैं अर मरतैं निरतर दु.ख पाया ॥

भावार्थ—जिनमतके उपदेश विना जीवनिकी हिंसा करि यह जीव चौरासी लाख योनिमैं उपजै है अर मरै है. हिंसातैं कर्मबंध होय है, कर्मबंधके उदयतैं उत्पत्तिमरणरूप संसार होय है, ऐसैं जन्म मरण का दु.ख सहै है तातैं जीवनिकी दयाका उपदेश है ॥

आगै तिस दयाहीका उपदेश करै है,—

जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं ।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए ॥ १३६ ॥

जीवानामभयदानं देहि मुने प्राणिभूतसत्त्वानाम् ।
कल्याणसुखनिमित्तं परंपरया त्रिविधशुद्धया ॥ १३६ ॥

अर्थ—हे मुने ! जीवनिकू अर प्राणीभूत सत्त्व इनिकू अपनां परपरायकरि कल्याण अर सुख ताकै अर्थि मन वचन कायकी शुद्धता-करि अभयदान दे ॥

भावार्थ—जीव तौ पचेंद्रियनिकू कहे हैं अर प्राणी विकलत्रयकूं कहे हैं अर भूत वनस्पतीकूं कहे है अर सत्त्व पृथ्वी अप तेज वायु इनि-कूं कहे हैं। इनि सर्व जीवनिकूं आप समान जाणि अभयदान देनेंका उपदेश है, यातैं शुभ प्रकृतिनिका बध होनेंतैं अभ्युदयका सुख होय है परपराकरि तीर्थंकरपद पाय मोक्ष पावै है, यह उपदेश है ॥ १३६ ॥

आगैं यह जीव षट् अनायतनके प्रसंगकरि मिथ्यात्वतैं संसार मैं भ्रमै है ताका स्वरूप कहै है, तहां प्रथमही मिथ्यात्वके भेदनिकं कहै हैं,—

असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी।
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणैया होंति बत्तीसा ॥ १३७ ॥

अशीतिशतं क्रियावादिनामक्रियाणां च भवति चतुरशीतिः।
सप्तषष्टिरज्ञानिनां वैनयिकानां भवति द्वात्रिंशत् ॥१३७॥

अर्थ—एकसौ अस्सी तौ क्रियावादी हैं चौरासी अक्रियावादीनिके भेद हैं अज्ञानी सडसठि भेदरूप हैं विनयवादी बत्तीस हैं ॥

भावार्थ-वस्तुका स्वरूप अनत धर्म स्वरूप सर्वज्ञ कह्या है सो प्रमाण नयकरि सत्यार्थ सधै है, तहां जिन्होंके मतमैं सर्वज्ञ नाही तथा सर्वज्ञका स्वरूप यथार्थ निश्चयकरि ताका श्रद्धान न किया ऐसे अन्य-वादी तिनिनैं वस्तुका एक धर्म ग्रहणकरि तिसका पक्षपात किया जो—हमनैं ऐसैं मान्या है सो ऐसैं ही है अन्य प्रकार नांही है। ऐसैं विधि निषेधकरि एक एक धर्मके पक्षपाती भये तिनिके ये संक्षेपकरि तीनसह तरेसठि भेद भये।

तहां केई तौ गमन करनां बैठनां खड़ा रहनां खानां पीनां सोवनां उप-जनां विनसना देखनां जानना करनां भोगना भूलनां यादि करना प्रीति करनां हर्ष करनां विषाद करनां द्वेष करनां जीवना मरनां इत्यादिक क्रिया हैं तिनिकूं जीवादिक पदार्थनिकै देखि कोई कैसी क्रियाका पक्ष किया है कोईनें कैसी क्रियाका पक्ष किया है ऐसैं परस्पर क्रियाविवादकरि भेद भये हैं तिनिके सक्षेपकरि एकसौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं, विस्तार किये बहुत होय हैं। बहुरि केई अक्रियावादी हैं तिनिनैं जीवादिक पदा-र्थनिविषैं क्रियाका अभाव मांनि परस्पर विवाद करैं हैं, केई कहैं हैं जीव जानैं नांही है, केई कहैं हैं कछू करै नांही हैं, केई कहैं हैं भोगवै नांही है, केई कहै हैं उपजै नांही है, केई कहै हैं विनसै नांही है, केई कहै हैं गमन नांही करै है, केई कहै हैं तिष्ठै नांही है इत्यादिक क्रियाके अभा-

वका पक्षपातकरि सर्वथा एकान्ती होय हैं तिनिके संक्षेपकरि चौरासी भेद किये हैं बहुरि केई अज्ञानवादी हैं, तिनिमें केई तौ सर्वज्ञका अभाव मानें हैं, केई कहैं हैं जीव अस्ति है यह कौन जानैं केई कहै हैं जीव नास्ति हैं यह कौन जानैं, केई कहैं हैं जीव नित्य है यह कौन जानैं, केई कहै हैं जीव अनित्य है यह कौन जानैं; इत्यादिक सशय विपर्यय अनध्यवसायरूप भये विवाद करैं हैं, तिनिके संक्षेपकरि सडसठि भेद कहे हैं। बहुरि केई विनयवादी हैं, ते केई कहै हैं देवादिकका विनयतैं सिद्धि है, केई कहै हैं गुरुके विनयतैं सिद्धि है, केई कहै हैं माताके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं पिताके विनयतैं सिद्धि है केई कहै हैं राजाके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं सर्वके विनयतैं सिद्धि है इत्यादिक विवाद करैं है तिनिके संक्षेपकरि वत्तीस भेद किये हैं। ऐसैं सर्वथा एकांतीनिके तीनसह तरेसठि भेद सक्षेपकरि किये हैं, विस्तार किये बहुत होय हैं इनिमैं केई ईश्वरवादी हैं केई कालवादी हैं, केई स्वभाववादी हैं, केई विनयवादी हैं, केई आत्मावादी हैं तिनिका स्वरूप गोमट्टसारादि ग्रंथनितैं जाननां, ऐसैं मिथ्यात्वके भेद हैं ॥ १३७ ॥

आगैं कहै हैं—अभव्यजीव है सो अपनी प्रकृतिकूं छोड़ै नांही वाका मिथ्यात्व मिटै नांही है;—

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं ।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥१३८॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठु अपि आकर्ण्य जिनधर्मम्
गुडदुग्धमपि पिबंतः न पन्नगाः निर्विषाः भवंति ॥१३८॥

अर्थ—अभव्यजीव है सो भलै प्रकार जिनधर्म है ताहि सुणिकरि भी अपनी प्रकृति स्वभाव है ताहि न छोडै है, इहां दृष्टांत जे सर्प हैं ते गुडसहित दुग्धकूं पीवते संते भी विषरहित नांही होय हैं ॥

भावार्थ—जो कारण पाय भी न छूटै ताकूं प्रकृति स्वभाव कहिये है, जो अभव्यका स्वभाव यह है जो अनेकांत है तत्वस्वरूप जामैं ऐसा वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व का मैंटने वाला है ताका भलैंप्रकार स्वरूप सुणिकरिभी जाका मिथ्यात्वस्वरूप भाव बदलै नांही है सो यह वस्तुका स्वरूप है काहूका किया नांही। इहा उपदेश अपेक्षा ऐसैं जाननां जो अभव्यरूप प्रकृति तौ सर्वज्ञगम्य है तथापि अभव्यकी प्रकृति सारिखी प्रकृति न राखणी, मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है॥ १३८॥

आगै याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि॥ १३९॥

मिथ्यात्वछन्नदृष्टिः दुर्धिया दुर्मतैः दोषैः।
धर्मं जिनप्रज्ञप्तं अभव्यजीवः न रोचयति॥ १३९॥

अर्थ—अभव्यजीव है सो जिनप्रणीत धर्म है ताहि न रोचै है न श्रद्धै है रुचि न करै है, जातैं कैसा है अभव्यजीव दुर्मत जे सर्वथा एकान्ती तिनिके प्ररूपे अन्यमत तेही भये दोष तिनिकरि अपनी दुर्बुद्धिकरि मिथ्यात्वतैं आच्छादित है बुद्धि जाकी॥

भावार्थ—मिथ्यात्वके उपदेशकरि अपनी दुर्बुद्धिकरि जाकै मिथ्या दृष्टि है ताकूं जिनधर्म न रुचै है तब जाणिये यह अभव्यजीवके भाव हैं यथार्थ अभव्यजीवकूं तौ सर्वज्ञ जाणै है अर ये अभव्यके चिन्ह है तिनितैं परीक्षाकरि जानिये हैं॥ १३९॥

आगैं कहै हैं जो ऐसे मिथ्यात्वके निमित्ततैं दुर्गतिका पात्र होय है—

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडि भत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ॥ १४०॥

कुत्सितधर्मे रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः।
कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनं भवति ॥ १४० ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं जो—कुत्सित निंद्य मिथ्याधर्मविषैं रत है लीन है, अर जो पाषंडी निंद्यभेषी तिनिकी भक्तिसंयुक्त है बहुरि जो निंद्य मिथ्याधर्म सेवै मिथ्यादृष्टीनिकी भक्ति करै मिथ्या अज्ञानतप करै सो दुर्गतिहि पावै तातैं मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है ॥ १४० ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते संते ऐसैं कहै हैं जो ऐसैं मिथ्यात्व करि मोह्या जीव संसारमैं भ्रम्या;—

इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो।
भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ॥ १४१ ॥

इति मिथ्यात्वावासे कुनयकुशास्त्रैः मोहितः जीवः।
भ्रमितः अनादिकालं संसारे धीर! चिन्तय ॥ १४१ ॥

अर्थ—इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्वका आवास ठिकाणां जो यह मिथ्यादृष्टीनिका संसार ताविषैं कुनय जो सर्वथा एकान्त तिनिसहित जे कुशास्त्र तिनिकरि मोह्या बेचेत भया जो यह जीव सो अनादिकालतैं लगाय संसारविषैं भ्रम्या, ऐसैं हे धीर! मुने! तू विचारि ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि कुवादिनिकरि सर्वथा एकांतपक्षरूप कुनयकरि रचे शास्त्र तिनिकरि मोहित भया यह जीव संसारविषैं अनादितैं भ्रमै है, सो हे धीरमुनि! अब ऐसे कुवादिनिकी संगति भी मति करै यह उपदेश है ॥ १४१ ॥

आगैं कहै हैं जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि पाषंडीनिका मार्ग छोडि जिनमार्गविषैं मन लगावो;—

पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठिभेया उमग्ग मुत्तूण।
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४२

पाषण्डिनः त्रीणि शतानि त्रिषष्टिभेदाः उन्मार्गं मुक्त्वा ।
रुन्द्धि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना ॥ १४२ ॥

अर्थ—हे जीव ! तीनसौ तरेसठि पाषडी कहे तिनिका मार्गकूं छोडि अर जिनमार्गविषैं अपनें मनकूं थामि यह संक्षेप है, और निरर्थक प्रलापरूप कहनेंकरि कहा ? ॥

भावार्थ—ऐसैं मिथ्यात्वका निरूपण किया तहां आचार्य कहै हैं जो-बहुत निरर्थक वचनालापकरि कहा ? एता ही संक्षेप करि कहै हैं-जो तीनसौ तरेसठि कुवादि पाषडी कहे तिनिका मार्ग छोड़िकरि जिनमार्गविषैं मनकूं थांभनां, अन्यत्र जानें न देना। इहां इतना विशेष और जाननां जो-कालदोषतैं इस पंचमकालमैं अनेक पक्षपातकरि मतांतर भये हैं तिनिकूं भी मिथ्या जाणि तिनिका प्रसग न करनां, सर्वथा एकान्तका पक्षपात छोड़ि अनेकान्तरूप जिनवचनका शरण लेणां ॥ १४२ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनका निरूपण करै हैं, तहां कहै हैं—जो सम्यग्दर्शन रहित प्राणी है सो चालता मृतक है,—

जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ ।
सवओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसवओ ॥१४३॥

जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तश्च भवति चलशवः ।
शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः ॥ १४३ ॥

अर्थ—लोकविषैं जीवकरि रहित होय ताकूं शव कहिये, मृतक मुरदा कहिये है तैसैंही जो सम्यग्दर्शनकरि रहित पुरुष है सो चालता मृतक है, बहुरि मृतक तौ लोकविषैं अपूज्य है अग्निकरि दग्ध कीजिये है तथा पृथ्वीमैं गाडिये है अर दर्शनरहित चालता मुरदा है सो लोकोत्तर जे मुनि सम्यग्दृष्टी तिनिकै विषैं अपूज्य है ते ताकूं वदनादिक नांही करैं हैं, मुनिभेष धरैं तौऊ संघवाह्य राखैं हैं अथवा परलोकमैं निंद्यगति पाय अपूज्य होय हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना पुरुष मृतकतुल्य है ॥ १४३ ॥

आगैं सम्यक्त्वका महानपणां कहै हैं,—

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं ।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ॥१४४॥

यथा तारकाणां चन्द्रः मृगराजः मृगकुलानां सर्वेषाम् ।
अधिकः तथा सम्यक्त्वं ऋषिश्रावकद्विविधधर्माणाम् ॥१४४॥

अर्थ—जैसें तारानिके समूहविषैं चंद्रमा अधिक है बहुरि मृगकुल कहिये पशुनिके समूहविषैं मृगराज कहिये सिंह सो अधिक है तैसें ऋषि कहिये मुनि अर श्रावक ऐसैं दोय प्रकार धर्मनिविषैं सम्यक्त्व है सो अधिक है ॥

भावार्थ—व्यवहारधर्मकी जेती प्रवृत्ति हैं तिनिमैं सम्यक्त्व अधिक है या विना सर्व संसारमार्ग बंधका कारण है ॥ १४४ ॥

फेरि कहै हैं;—

जह फणिराओ सोहइ[1] फणमणिमाणिक्किरणविप्फुरिओ ।
तह विमलदंसणधरो जिण[2]भत्तीपवयणे जीवो ॥ १४५ ॥

यथा फणिराजः शोभते फणमणिमाणिक्यकिरणविस्फुरितः ।
तथा विमलदर्शनधरः जिनभक्तिः प्रवचने जीवः ॥ १४५ ॥

अर्थ—जैसें फणिराज कहिये धरणेंद्र है सो फण जो सहस्र फण तिनिमैं जे मणि तिनके मध्य जे रक्त माणिक्य ताकी किरणनिकरि

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'रेहइ' ऐसा पाठ है जिसका 'राजते' संस्कृत है ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'जिणभत्तीपवयणो' ऐसा एकपदरूप पद है जिसकी संस्कृत "जिनभक्तिप्रवचन" है । यह पाठ यतिभंग सा मालूम होता है ।

विस्फुरित कहिये दैदीप्यमान सोहै है तैसैं निर्मल सम्यग्दर्शनका धारक जीव है सो जिनभक्तिसहित है यातैं प्रवचन जो मोक्षमार्गका प्ररूपण ताविषैं सोहै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वसहित जीवकी जिन प्रवचनविषैं बड़ी अधिकता है जहां तहा शास्त्रविषैं सम्यक्त्वकी ही प्रधानता कही है ॥ १४५ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनसहित लिंग है ताकी महिमा कहै हैं;—

जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले।
भाविय तंवयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

यथा तारागणसहितं शशधरबिंबं खमंडले विमले।
भावितं तपोव्रतविमलं जिनलिंगं दर्शनविशुद्धम् ॥१४६॥

अर्थ—जैसें निर्मल आकाशमंडलविषैं तारानिके समूह सहित चद्रमाका बिंब सोहै है तैसैंही जिनशासनविषैं दर्शनकरि विशुद्ध अर भावित किये जे तप अर व्रत तिनिकरि निर्मल जिनलिंग है सो सोहै है ॥

भावार्थ—जिनलिंग कहिये निर्ग्रन्थ मुनिभेष है सो यद्यपि तपव्रतनिकरि सहित निर्मल है तौऊ सम्यग्दर्शन विना सोहै नहीं, या सहित होय तब अत्यत शोभायमान होय है ॥ १४६ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं जाणिकरि दर्शनरत्नकूं धारो, ऐसैं उपदेश करै हैं,—

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥१४७॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'तह वयविमलं' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'तथा व्रतविमलं' है। २ इस गाथाका चतुर्थ पाद यतिभंग है। इसकी जगह पर 'जिणलिंगं दंसणेण सुविसुद्ध' होना ठीक जंचता है।

इति ज्ञात्वा गुणदोषं दर्शनरत्नं धरतभावेन ।
सारं गुणरत्नानां सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥१४७॥

अर्थ—हे मुने ! तू इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके तौ गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनहिं जाणिकरि सम्यक्त्वरूप रत्न है ताहि भावकरि धारि, कैसा है सम्यक्त्वरत्न–गुणरूप जे रत्न हैं तिनिमैं सार है उत्तम है, बहुरि कैसा है—मोक्षरूप मंदिरका प्रथम सोपान है चढ़नेकी पहली पैडी है ॥

भावार्थ—जेते व्यवहार मोक्षमार्गके अंग हैं गृहस्थके तौ दानपूजादिक अर मुनिकै महाव्रत शीलसंयमादिक, तिनिमैं सर्वमैं सार सम्यग्दर्शन है यातैं सर्व सफल है, तातैं मिथ्यात्वकूं छोड़ि सम्यग्दर्शन अंगीकार करना यह प्रधान उपदेश है ॥ १४७ ॥

आगैं कहै है जो सम्यग्दर्शन होय है सो जीव पदार्थका स्वरूप जांनि याकी भावना करै ताका श्रद्धानकरि अर आपकूं जीव पदार्थ जानि अनुभवकरि प्रतीति करै ताकै होय है सो यह जीव पदार्थ कैसा है ताका स्वरूप कहै हैं;—

कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य ।
दंसणणाणुवओगो णिहिट्ठो जिणवरिंदेहिं ॥ १४८ ॥

कर्त्ता भोक्ता अमूर्त्तः शरीरमात्रः अनादिनिधनः च ।
दर्शनज्ञानोपयोगः जीवः निर्दिष्टः जिनवरेन्द्रैः ॥१४८॥

अर्थ—जीवनामा पदार्थ है सो कैसा है—कर्त्ता है, भोगी है अमूर्त्तीक है, शरीर प्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन ज्ञान है उपयोग जाकै ऐसा है सो जिनवरेन्द्र जो सर्वज्ञदेव वीतराग तिसनैं कह्या है ॥

भावार्थ—इहां जीवनामा पदार्थके छह विशेषण कहै तिनिका आशय ऐसा जो—कर्त्ता कह्या सो निश्चयनयकरि तौ अपनां अशुद्ध राग-

दिक भाव तिनिका अज्ञान अवस्थामैं आप कर्त्ता है अर व्यवहारनयकरि पुद्गल कर्म जे ज्ञानावरण आदि तिनिका कर्त्ता है अर शुद्धनयकरि अपनें शुद्धभावका कर्त्ता है। बहुरि भोगी कह्या सो निश्चयनयकरि तौ अपनां ज्ञानदर्शन मयी चेतनांभावका भोक्ता है, अर व्यवहारनयकरि पुद्गलकर्मका फल जो सुख दु.ख आदिक ताका भोक्ता है। बहुरि अमूर्त्तीक कह्या सो निश्चयकरि तौ स्पर्श रस गधवर्ण शब्द ये पुद्गलके गुण पर्याय है तिनिकरि रहित अमूर्त्तीक है अर व्यवहारकरि जेतैं पुद्गलकर्मतैं बध्या है तेतैं मूर्त्तीक भी कहिये है। बहुरि शरीर परिमाण कह्या सो निश्चयनयकरि तौ असख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है परन्तु सकोच विस्तारशक्तिकरि शरीरतै कछू घाटि प्रदेश प्रमाण आकार रहै है। बहुरि अनादिनिधन कह्या सो पर्यायदृष्टिकरि देखिये तब तौ उपजे विनसै है तौऊ द्रव्यदृष्टिकरि देखिये तब अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है। बहुरि दर्शन ज्ञान उपयोगसहित कह्या सो देखनां जानना-रूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है। बहुरि इनि विशेषणनिकरि अन्यमती अन्यप्रकार सर्वथा एकान्तकरि मानैं है तिनिका निषेध भी जाननां, सो कैसैं ? कर्त्ताविशेषणकरि तौ सांख्यमती सर्वथा अकर्त्ता मानै है ताका निषेध है। बहुरि भोक्ता विशेषणकरि बौद्धमती क्षणिक मानि कहै हैं कर्मकू करै और, अर भोगवै और है, ताका निषेध है, जो जीव कर्म करै है ताका फल सो ही जीव भोगवै है ऐसैं बौद्धमतीके कहनेंका निषेध है। बहुरि अमूर्त्तीक कहनेंतैं मीमासक आदिक इस शरीरसहित मूर्त्तीक ही मानै है ताका निषेध है। बहुरि शरीरप्रमाण कहनेंतैं नैयायिक वैशेषिक वेदान्ती आदि सर्वथा सर्वव्यापक मानै हैं ताका निषेध है। बहुरि अनादिनिधन कहनेंतैं बौद्धमती सर्वथा क्षणस्थायी मानै है ताका निषेध है। बहुरि दर्शनज्ञानउपयोगमयी कहनेंतैं साख्यमती तो ज्ञानरहित चेतनामात्र मानै है, अर नैयायिक वैशेषिक गुणगुणीकै सर्वथा भेद मानि ज्ञान अर जीवकै सर्वथा भेद मानैं है, अर बौद्धमतका विशेष विज्ञानाद्वैतवादी ज्ञानमात्रही मानै है, अर वेदान्ती ज्ञानका कछू निरूपण न करै

है, तिनिका निषेध है। ऐसैं सर्वज्ञका कह्या जीवका स्वरूप जाणि आपकूं ऐसा मानि श्रद्धा रुचि प्रतीति करणीं। बहुरि जीव कहनेहीमैं अजीव पदार्थ जान्या जाय है, अजीव न होय तौ जीव नाम कैसैं कहता तातैं अजीवका स्वरूप कह्या है तैसा ताका श्रद्धान आगम अनुसार करनां। ऐसैं अजीव पदार्थका स्वरूप जाणि अर इनि दोऊनिके संयोगतैं अन्य आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष इनि भावनिकी प्रवृत्ति होय है, तिनिका आगमअनुसार स्वरूप जाणि श्रद्धान किये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है, ऐसैं जानना ॥ १४८ ॥

आगै कहै हैं जो-यह जीव ज्ञान दर्शन उपयोगमयी है तोऊ अनादि पुद्गल कर्म संयोगतैं याकै ज्ञान दर्शनकी पूर्णता न होय है तातैं अल्प ज्ञानदर्शन अनुभवमैं आवै है, अर तिनिमैं भी अज्ञानके निमित्ततैं इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष मोहभावकरि ज्ञान दर्शनमैं कलुषतारूप सुख दुःखादिक भाव अनुभवन मैं आवै है, यह जीव निजभावनारूप सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होय है तब ज्ञानदर्शन सुख वीर्यके घातक कर्मनिका नाश करै है, ऐसा दिखावै है.—

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तोः ॥१४९॥

दर्शनज्ञानावरणं मोहनीयं अन्तरायकं कर्म।
निष्ठापयति भव्यजीवः सम्यक् जिनभावनायुक्तः ॥१४९॥

अर्थ-सम्यक् प्रकार जिनभावनाकरि युक्त भव्य जीव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये च्यार घातिकर्म हैं तिनिकूं निष्ठापन करै है संपूर्ण अभाव करै है।

भावार्थ—दर्शनका घातक तौ दर्शनावरण कर्म है, ज्ञानका घातक ज्ञानावरण कर्म है, सुखका घातक मोहनीय कर्म है, वीर्यका घातक अंतरायकर्म है, तिनिका नाशकूं सम्यक् प्रकार जिनभावना कहिये जिन

आज्ञा मानि जीव अजीव आदि तत्त्वका यथार्थ निश्चयकरि श्रद्धावान भया होय सो जीव करै है, तातैं जिन आज्ञा मानि यथार्थ श्रद्धान करना यह उपदेश है ।। १४८ ।।

आगैं कहै हैं इनि घाति कर्मनिका नाश भये अनंतचतुष्टय प्रकट होय हैं;—

बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पायडा गुणा होंति ।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ।। १५० ।।

बलसौख्यज्ञानदर्शनानि चत्वारोऽपि प्रकटा गुणा भवंति ।
नष्टे घातिचतुष्के लोकालोकं प्रकाशयति ।। १५० ।।

अर्थ—पूर्वोक्त घातिकर्मका चतुष्क ताका नाश भये बल सुख ज्ञान दर्शन ये च्यार गुण प्रगट होय हैं, बहुरि जीवके ये गुण प्रकट होय तब लोकालोककूं प्रकाशै है ।।

भावार्थ—घातिकर्मका नाश भये अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य ये अनंतचतुष्टय प्रकट होय है । तहां अनंत दर्शनज्ञानतैं तौ षट्द्रव्यकरि भऱ्या जो यह लोक तामैं जीव अनतानत अर पुद्गल तिनितैंभी अनंतानंत गुणें अर धर्म अधर्म आकाश ये तीन द्रव्य अर असंख्याते लोकाणू इनि सर्व द्रव्यनिके अतीत अनागत वर्त्तमान काल सबधी अनतपर्याय न्यारे न्यारेकूं एकैं काल देखै है अर जानै है, अर अनतसुखकरि अत्यंततृप्तिरूप है, अर अनन्तशक्तिकरि अब काहू निमित्तकरि अवस्था पलटै नाही है । ऐसैं अनतचतुष्टयरूप जीवका निजस्वभाव प्रगट होय है तातैं जीवके स्वरूपका ऐसा परमार्थकरि श्रद्धान करना सो ही सम्यग्दर्शन है ।। १५० ।।

आगैं जाकै अनतचतुष्टय प्रगट होय ताकूं परमात्मा कहिये है ताके अनेक नाम हैं तिनिमैं केतेक प्रगटकरि कहियें है;—

णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो ।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं ॥१५१॥
ज्ञानी शिवः परमेष्ठी सर्वज्ञः विष्णुः चतुर्मुखः बुद्धः ।
आत्मा अपि च परमात्मा कर्मविमुक्तः च भवति स्फुटम् ॥

अर्थ—परमात्मा है सो ऐसा है-ज्ञानी है, शिव है, परमेष्ठी है, सर्वज्ञ है, विष्णु है, चतुर्मुख ब्रह्मा है, बुद्ध है, आत्मा है, परमात्मा है, कर्मकरि विमुक्त कहिये रहित है, यह प्रगट जाणों ॥

भावार्थ—ज्ञानी कहनेतें तो सांख्यमती ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यरहित मानै है ताका निषेध है बहुरि शिव है सर्वकल्याणपरिपूर्ण है जैसैं सांख्यमती नैयायिक वैशेषिक मानै है तैसा नांही है, बहुरि परमेष्ठी है परम उत्कृष्ट पदविषै तिष्टै है अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है जैसें अन्यमती केई अपनां इष्ट किछू थापि ताकूं परमेष्ठी कहैं हैं तैसें नाही है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकालोककूं जाणैं है अन्य केई कोई एक प्रकरण सवधा सर्व बात जाणै ताकूं भी सर्वज्ञ कहै है तैसा नांही है, बहुरि विष्णु है जाकै ज्ञान सर्व ज्ञेयमैं व्यापक है-अन्यमती वेदान्ती आदि कहै हैं जो सर्व पदार्थनिमैं आप है सो ऐसें नाही है, बहुरि चतुर्मुख कहनेतें केवली अरहतके समवसरणमैं च्यार मुख च्यारू दिशामें दीखै है ऐसा अतिशय है तातैं चतुर्मुख कहिये है-अन्यमती ब्रह्माकूं चतुर्मुख कहैं हैं सो ऐसा ब्रह्मा कोई है नाहीं, बहुरि बुद्ध है सर्वका ज्ञाता है बौद्धमती क्षणिककूं बुद्ध कहैं हैं तैसा नाही है बहुरि आत्मा है अपनें स्वभावही विषै निरन्तर प्रवर्तै है,-अन्यमती वेदान्ती सर्व विषै प्रवर्तता आत्माकूं मानै हैं तैसा नाही है, बहुरि परमात्मा है आत्माका पूर्णरूप अनंतचतुष्टय जाकैं प्रगट भया है तातैं परमात्मा है बहुरि कर्म जे आत्माके स्वभावके घातक घातिकर्म तिनितैं रहित भया है तातैं कर्मविमुक्त है अथवा कछू करनेयोग्य कार्य न रह्या तातैं भी कर्मविप्रमुक्त है सांख्यमती नैयायिक सदाही कर्मरहित मानैं हैं तैसें नांही हैं ऐसैं परमात्माके सार्थक

नाम हैं अन्यमती अपने इष्टके नाम एकही कहै हैं तिनिका सर्वथा एकान्तका अभिप्रायकरि अर्थ विगडै है सो यथार्थ नाही। अरहंतके ये नाम नयविवक्षातै सत्यार्थ है, ऐसैं जानना ॥ १५१ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो-ऐसा देव है सो मोकूं उत्तम बोधि द्यो—

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जियो सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देऊ मम उत्तमं बोहिं ॥१५२॥

इति घातिकर्ममुक्तः अष्टादशदोषवर्जितः सकलः।
त्रिभुवनभवनप्रदीपः ददातु मह्यं उत्तमां बोधिम् ॥१५२॥

अर्थ—इति कहिये ऐसैं घाति कर्मनिकरि रहित क्षुधा तृषा आदि पूर्वोक्त अठारह दोषनिकरि वर्जित सकल कहिये शरीरसहित अर तीन भुवनरूपी भवनके प्रकाशनेकूं प्रकृष्टदीपक तुल्य देव है सो मोकूं उत्तम बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति द्यो, ऐसैं आचार्यने प्रार्थना करी है॥

भावार्थ—इहां और तौ पूर्वोक्त प्रकार जानना, अर सकल विशेषण है ताका यह आशय है जो मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके उपदेश वचनके प्रवर्तें विना न होय अर वचनकी प्रवृत्ति शरीर विना न होय तातैं अरहंतका आयुकर्मका उदयतै शरीरसहित अवस्थान रहै है, अर सुस्वर आदि नामकर्मके उदयतै वचनकी प्रवृत्ति होय है, ऐसैं अनेक जीवनिका कल्याण करनेवाला उपदेश प्रवर्तै है। अन्यमतीनिकै ऐसा अवस्थान परमात्माकै सभवै नांही तातै उपदेशकी प्रवृत्ति न बणै तब मोक्षमार्गका उपदेश भी न प्रवर्त्तै ऐसैं जानना ॥ १५२ ॥

आगै कहै हैं—जे ऐसे अरहंत जिनेश्वरके चरणनिकूं नमैं हैं ते ससारकी जन्मरूप वेलिकूं काटै हैं;—

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण ।
ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥ १५३ ॥

जिनवरचरणाम्बुरुहं नमन्ति ये परमभक्तिरागेण ।
ते जन्मवल्लीमूलं खनन्ति वरभावशस्त्रेण ॥ १५३ ॥

अर्थ—जे पुरुष परमभक्ति अनुरागकरि जिनवरके चरणकमलनिकूं नमैं हैं ते श्रेष्ठभावरूप शस्त्रकरि जन्म कहिये संसार सोई भई वेलि ताका मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म ताहि नाशैं हैं खोदि डारैं हैं ॥

भावार्थ-अपनी जो श्रद्धा रुचि प्रतीति ताकरि जिनेश्वर देवकूं नमैं है ताका सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपणाकूं जाणि भक्तिके अनुरागकरि नमस्कार करै है तब जाणिये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति ताका ये चिह्न है ता तै जाणिये याकै मिथ्यात्वका नाश भया, अब आगामी संसारकी वृद्धि याकै न होयगी—ऐसा जनाया है ॥ १५३ ॥

आगैं कहै हैं जो-जिनसम्यक्त्वकूं प्राप्त भया पुरुष है सो आगामी कर्मकरि न लिपै है;—

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ॥१५४॥

यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्रं स्वभावप्रकृत्या ।
तथा भावेन न लिप्यते कषायविषयैः सत्पुरुषः ॥१५४॥

अर्थ—जैसें कमलिनीका पत्र है सो अपनें प्रकृतिस्वभावकरि जलकरि नाहीं लिपै है, तैसें सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष है सो अपने भावकरि क्रोधादिक कषाय अर इंद्रियके विषय इनिकरि नाहीं लिपै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुषके मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीकषायका तौ सर्वथा अभावही है अन्य कषायका यथासंभव अभाव है, तहां मि-

थ्यात्व अनंतानुबंधीके अभावतै ऐसा भाव होय है। जो परद्रव्यमात्रका तौ कर्त्तापणांकी बुद्धि नाही है अर अब शेष कषायके उदयतैं कछू राग द्वेष प्रवर्तें है तिनिकूं कर्मके उदयके निमित्ततैं भये जानै है तातैं तिनि-विषैं भी कर्त्तापणांकी बुद्धि नांही है तथापि तिनि भावनिकं रोगवत् भये जांणि भले न जाणै है, ऐसे भावकरि कषाय विषयनितैं प्रीति बुद्धि नांही तातैं तिनितैं न लिपै है; जलकमलवत् निर्लेप रहै है। यातैं आगामी कर्म-का बंध न होय है संसारकी वृद्धि नांही होय है, ऐसा आशय जाननां ॥ १५४ ॥

आगैं आचार्य कहै हैं जो--जे पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष हैं ते ही सकल शील सयमादि गुणनिकरि संयुक्त हैं, अन्य नाही,—

ते वि य भणामिहं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं ।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ॥

तान् अपि च भणामि ये सकलकलाशीलसंयमगुणैः ।
बहुदोषाणामावासः सुमलिनचित्तः न श्रावकसमः सः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी पुरुष हैं अर शील संयम गुणनिकरि सकल कला कहिये संपूर्ण कलावान होय हैं, तिनिहीकूं हम मुनि कहैं हैं। बहुरि जो सम्यग्दृष्टी नाही है मलिनचित्तकरि सहित मिथ्यादृष्टी है अर बहुत दोषनिका आवास है ठिकाणां है सो तौ भेष धारै है तौऊ श्रावकसमानभी नाही है ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी है अर शील कहिये उत्तर गुण अर संयम कहिये मूलगुण तिनिकरि सहित है सो मुनि है। अर जो मिथ्यादृष्टी कहिये मिथ्यात्वकरि जाका चित्त मलिन है अर क्रोधादि विकाररूप बहुत दोष जामैं पाइये है सो तौ मुनिभेष धारै तौऊ है श्रावकसमानभी

नांही है, श्रावक सम्यग्दृष्टी होय अर गृहस्थाचारके पापनिकरि सहित होय तोऊ जिस बराबरि केवल भेषी मुनि नांही है. ऐसैं आचार्य कहै हैं ॥ १५५ ॥

आगैं कहै हैं जो—सम्यग्दृष्टी होयकरि जिनिनैं कपायरूप सुभट जीते तेही धीर वीर हैं.—

ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण ।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ॥१५६॥

ते धीरवीरपुरुषाः क्षमादमखड्गेण विस्फुरता ।
दुर्जयप्रबलबलोद्धतकषायभटाः निर्जिता यैः ॥ १५६ ॥

अर्थ—ज्यां पुरुषां क्षमा अर इन्द्रियनिका दमन सो ही भया विस्फुरता कहिये सवाग्या हूवा मलिनता रहित उज्ज्वल तीक्ष्ण खड्ग ताकरि जिनिका जीतनां कठिन ऐसे दुर्जय अर प्रबल बलकरि उद्धत ऐसे कषाय रूप सुभटनिकूं जीतें ते धीरवीर सुभट हैं, अन्य संग्रामादिकमैं जीतैं ते कहवेके सुभट हैं ॥

भावार्थ—युद्धमैं जीतनेवाले शूरवीर तो लोकमैं बहुत हैं अर जे कषायनिकूं जीतैं हैं ते विरले हैं ते मुनिप्रधान हैं ते ही शूरवीरनिमैं प्रधान हैं, जे सम्यग्दृष्टी होय कषायनिकूं जीति चारित्रवान होय हैं ते मोक्ष पावैं हैं; यह आशय है ॥ १५६ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे आप दर्शन ज्ञान चारित्ररूप होय अन्यकूं तिनिसहित करैं ते धन्य हैं;—

धण्णा ते भयवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं ।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ॥१५७॥

ते धन्याः भगवंतः दर्शनज्ञानाग्रप्रवरहस्तैः ।
विषयमकरधरपतिताः भव्याः उत्तारिताः यैः ॥ १५७ ॥

अर्थ—ऐसा सत्पुरुषा विषयरूप मकरधर जो समुद्र ताविषैं पडया जे भव्यजीव तिनिकूं पार उतारया, काहेकरि दर्शन अर ज्ञान तेही भये अग्र मुख्य दोय हाथ तिनिकरि उतारे, ते मुनि प्रधान भगवान इंद्रादिककरि पूज्य ज्ञानी धन्य हैं ॥

भावार्थ—इस संसार समुद्रतैं आप तिरैं अन्यकूं त्यारैं ते मुनि धन्य हैं। धनादिक सामग्रीसहितकूं धन्य कहिये हैं ते कहवेके धन्य है ॥ १५७ ॥

आगैं फेरि ऐसे मुनिनिकी महिमा करै हैं,—

मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं १५८

मायवल्लीं अशेषां मोहमहातरुवरे आरूढाम्।
विषयविषपुष्पपुष्पितां लुनंति मुनयः ज्ञानशस्त्रैः ॥ १५८ ॥

अर्थ—मुनि हैं ते माया कहिये कपटरूपी वेलि है ताहि ज्ञानरूपी शस्त्रकरि समस्तकूं काटै हैं, कैसी है मायावेलि मोह रूपी जो महा बडा वृक्ष तापरि आरूढ है चढ़ी है, बहुरि कैसी है विषयरूपी विषके पुष्पनिकरि फूलि रही है ॥

भावार्थ—यह मायाकषाय है सो गूढ है याका विस्तार भी बहुत है मुनिनि ताईं फैलै है तातैं जे मुनि ज्ञानकरि याकूं काटैं हैं ते सांचे मुनि हैं, तेही मोक्ष पावै हैं ॥ १५८ ॥

आगैं फेरि तिनि मुनिनिका सामर्थ्यकूं कहै हैं,—

मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण ॥१५९॥

मोहमदगारवैः च मुक्ताः ये करुणाभावसंयुक्ताः।
ते सर्वदुरितस्तंभं घ्नंति चारित्रखड्गेन ॥ १५९ ॥

अर्थ—जे मुनि मोह मद गौरव इनिकरि रहित हैं अर करुणा भावकरि सहित हैं चारित्ररूपी खड्गकरि पापरूपी स्तंभ है ताहि हणैं हैं, मूलतैं काटैं हैं ॥

भावार्थ—मोह तौ परद्रव्यसूं ममत्व भाव सो कहिये, मद जात्यादिक परद्रव्यादिक सम्बन्धतैं गर्व होय ताकूं कहिये गौरव तीन प्रकार है—ऋद्धिगौरव अर सातगौरव अर रसगौरव, तहां ऋद्धिगौरव जो कछू तपोबलकरि अपनी महंतता लोकमैं होय ताका आपका मद आवै तामैं हर्ष मानैं, बहुरि सातगौरव जो अपने शरीरमैं रोगादिक न उपजै तब सुख मानैं प्रमादयुक्त होय अपना महंतपणा मानैं बहुरि रसगौरव जो मिष्ट पुष्ट रसीला आहारादिक मिलै ताके निमित्ततैं प्रमत्त होय शयनादिक करैं। ऐसा गौरव इनिकरि तौ रहित हैं अर परजीवनिकी करुणाकरि युक्त हैं—ऐसा नाहीं जो परजीवसूं मोहममत्व नांही है यातैं निर्दय होय तिनिकूं हणैं, जेतैं राग अंश रहै तेतैं परजीवनिकी करुणाही करै उपकारबुद्धि रहै। ऐसे ज्ञानीमुनि पाप जो अशुभकर्म ताकूं चारित्रके बलतैं नाश करैं हैं ॥ १५९ ॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसे मूलगुण अर उत्तरगुणनिकरि सहित मुनि हैं ते जिनमतमैं शोभैं हैं;—

गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो ।
तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइंदुव्व पवणपहे ॥१६०॥

गुणगणमणिमालया जिनमतगगने निशाकरमुनींद्रः ।
तारावलीपरिकरितः पूर्णिमेन्दुरिव पवनपथे ॥ १६० ॥

अर्थ—जैसैं पवनपथ जो आकाश ताविषैं तारानिकी पंक्तिकरि परिवारतैं वेष्टित पूर्णमासीका चन्द्रमा सोभै है तैसैं जिनमतरूप आकाशविषैं गुणनिके समूह सो ही भई मणिनिकी माला ताकरि मुनीन्द्ररूप चन्द्रमा शोभै है।

भावार्थ—अट्ठाईस मूलगुण दशलक्षण धर्म तीन गुप्ति चौरासीलाख उत्तरगुण इत्यादिक गुणनिकी मालाकरि सहित मुनि है सो जिनमतमैं चन्द्रमावत् सोभै है ऐसे मुनि अन्यमतमैं नांही ॥ १६० ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं जिनिकैं विशुद्ध भाव हैं ते सत्पुरुष तीर्थंकर आदिक पदका सुखनिकूं पावैं हैं;—

चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं ।
चारणमुणिरिद्धीओ विशुद्धभावा णरा पत्ता ॥ १६१ ॥

चक्रधररामकेशवसुरवरजिनगणधरादिसौख्यानि ।
चारणमुन्यर्द्धीः विशुद्धभावा नराः प्राप्ताः ॥ १६१ ॥

अर्थ—विशुद्ध हैं भाव जिनके ऐसे नर मुनि हैं ते चक्रधर कहिये चक्रवर्त्ती षट् खडका राजेन्द्र, राम कहिये बलभद्र, केशव कहिये नारायण अर्द्धचक्री, सुरवर कहिये देवनिका इन्द्र, जिन कहिये तीर्थंकर पंच कल्याण करि सहित तीनलोक करि पूज्य पदवी, गणधर कहिये च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक मुनि, इनिके सुखनिकूं; बहुरि चारणमुनि कहिये आकाशगामिनी आदिऋद्धि जिनिकै पाइये तिनिकी ऋद्धि इनिकूं प्राप्त भये ॥

भावार्थ-पूर्वैं ऐसे निर्मल भावके धारक पुरुष भये ते ऐसी पदवीके सुखनिकूं प्राप्त भये, अब ते ऐसे होहिगे ते पावैंगे, ऐसैं जाननां ॥१६१॥

आगैं कहै हैं मुक्तका सुखभी ऐसे ही पावैं हैं;—

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमंपरमविमलमतुलं ।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

शिवमजरामरलिंगं अनुपममुत्तमं परमविमलमतुलम् ।
प्राप्तो वरसिद्धिसुखं जिनभावनाभाविता जीवाः ॥ १६२ ॥

अर्थ—जे जिनभावनाकरि भावित सहित जीवहैं तेही सिद्धि कहिये मोक्ष ताके सुखकूं पावैं हैं, कैसा है सिद्धिसुख-शिव है कल्याणरूप है काहू प्रकार उपद्रवसहित नांही है, बहुरि कैसा है-अजरामरलिंग है वृद्ध होनां अर मरना इनि दोऊनिवैं रहित है लिंग कहिये चिह्न जाका बहुरि कैसा है अनुपम है जाकै संसारीक सुखकी उपमा लागै नांही, बहुरि कैसा है उत्तम कहिये सर्वोत्तम है बहुरि परम कहिये सर्वोत्कृष्ट है बहुरि कैसा है-महार्घ्य है महान् अर्घ्य पूज्य प्रशंसायोग्य है, बहुरि कैसा है विमल है कर्मके मल तथा रागादिकमलकरि रहित है, बहुरि कैसा है अतुल है याकी बराबर सांसारिक सुख नांही; ऐसा सुखकूं जिनभक्त पावै है अन्यका भक्त न पावै है ॥ १६२ ॥

आगैं आचार्य प्रार्थना करै हैं जो ऐसे सिद्धसुखकूं प्राप्त भये सिद्ध भगवान ते मोकूं भावकी शुद्धताकूं द्यो,

ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिच्चा ।
दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य ॥ १६३ ॥

ते मे त्रिभुवनमहिताः सिद्धाः शुद्धाः निरंजनाः नित्याः ।
ददतु वरभावशुद्धिं दर्शने ज्ञाने चारित्रे च ॥ १६३ ॥

अर्थ—सिद्ध भगवान हैं ते मोकूं दर्शन ज्ञान विषैं अर चारित्रविषैं श्रेष्ठ उत्तमभावकी शुद्धता द्यो, कैसे हैं सिद्ध भगवान तीन भवनकरि पूजनीक हैं, बहुरि कैसे हैं—शुद्ध हैं द्रव्यकर्म नोकर्मरूप मलकरि रहित हैं, बहुरि कैसे हैं—निरंजन हैं रागादिकर्म करि रहित हैं, बहुरि जिनकै कर्मका उपजना नांही है, बहुरि कैसे हैं नित्य हैं पाये स्वभावका फेरि नाश नाहीं है।

भावार्थ—आचार्य शुद्धभावका फल सिद्ध अवस्था, अर जे निश्चयकरि इस फलकूं प्राप्त भये सिद्ध, तिनितैं यही प्रार्थना करी है जो शुद्ध भावकी पूर्णता हमारैं होहु ॥ १६३ ॥

आगैं भावके कथनकूं संकोचै हैं;—

किं जंपिएण बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो य।
अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ॥१६४॥

किं जल्पितेन बहुना अर्थः धर्मः च काममोक्षः च।
अन्ये अपि च व्यापाराः भावे परिस्थिताः सर्वे ॥१६४॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो बहुत कहनें करि कहा? धर्म अर्थ काम मोक्ष वहुरि अन्य जो किछू व्यापार है सो सर्वही शुद्धभावके विषैं समस्तपणांकरि तिष्ठया है ॥

भावार्थ—पुरुषके च्यार प्रयोजन प्रधान हैं-धर्म, अर्थ, काम मोक्ष। वहुरि अन्यभी जो किछू मंत्रसाधनादिक व्यापार हैं ते आत्माके शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भावविषैं तिष्ठैं हैं, शुद्धभावतैं सर्व सिद्धि है ऐसा संक्षेपकरि कहनां जाणौं, वहुत कहा कहना? ॥ १६४ ॥

आगैं इस भावपाहुडकूं पूर्ण करै हैं ताका पढनें सुनने भावनें का उपदेश करै हैं;—

इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचल ठाणं ॥१६५॥

इति भावप्राभृतमिदं सर्वबुद्धैः देशितं सम्यक्।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति अविचलं स्थानम् ॥१६५

अर्थ-इति कहिये या प्रकार या भावपाहुडकूं सर्वबुद्ध जे सर्वज्ञदेव तिनिनैं उपदेश्या है सो याकूं जो भव्यजीव सम्यक् प्रकार पढ़ै सुनैं याकूं भावै सो शाश्वता सुखका स्थानक जो मोक्ष ताहि पावै है ॥

भावार्थ—यह भावपाहुड ग्रंथ है सो सर्वज्ञकी परंपराकरि अर्थ लेय आचार्यनें कह्या है तातैं सर्वज्ञहीका उपदेश्या है, केवल छद्मस्थहीका

कह्या नांही है तातैं आचार्य अपनां कर्त्तव्य प्रधानकरि न कह्या है। अर याके पढनें सुननेंका फल मोक्ष कह्या सो युक्तही है शुद्धभावतैं मोक्ष होय है अर याके पढे शुद्धभाव होय हैं, ऐसैं परपरा मोक्षका कारण याका पढना सुनना धारणां भावना करना है। तातैं भव्यजीव हैं ते या भावपाहुडकूं पढौ सुनौ सुनावौ भावौ निरंतर अभ्यास करौ ज्यौ शुद्धभाव होय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्णताकूं पाय मोक्ष पावौ तहां परमानंदरूप शाश्वतसुखकू भोगवौ ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्दनामा आचार्य भावपाहुडग्रंथ पूर्ण किया।

याका सक्षेप ऐसा है जो-जीवनामा वस्तुका एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतनास्वभाव है। ताकी शुद्ध अशुद्ध दोय परिणति हैं-तहा शुद्धदर्शनज्ञानोपयोगरूप परिणमना सो तौ शुद्ध परिणति है याकूं शुद्ध भाव कहिये है। वहुरि कर्मके निमित्ततैं राग द्वेप मोहादिक विभावरूप परिणमना सो अशुद्धपरणति है याकूं अशुद्ध भाव कहिये। तहा कर्मका निमित्त अनादितैं है तातैं अशुद्धभावरूप अनादिहीतै परिणमै है, तिस भावतैं शुभ अशुभ कर्मका वध होय है तिस वंधके उदयतैं फेरि अशुभभावरूप परिणमै है अनादि सतान चल्या आवै है। तहां जव इष्टदेवतादिककी भक्ति जीवनिकी दया उपकार मंदकषायरूप परिणमै तब तौ शुभकर्मका वध करै है, ताके निमित्ततैं देवादिक पर्याय पाय किछू सुखी होय है। वहुरि तव विषय कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमै तब पापका वध करै है, ताकै उदयतैं नरकादिक पर्याय पाय दु खी होय है। ऐसैं ससारमैं अशुद्धभावतैं अनादितैं यह जीव भ्रमै है, वहुरि जव कोई काल ऐसा आवै जामैं जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ वीतरागका उपदेशकी प्राप्ति होय अर ताका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करै तब अपनां अर परका भेदज्ञानकरि शुद्ध अशुद्ध भावका स्वरूप जांणि अपना हित अहितका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण होय तब शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्धचेतना परिणमनकूं तौ हित जानैं ताका फल संसारकी निवृत्ति है ताकूं

जानैं, अर अशुद्धभावका फल संसार है ताकूं जानैं, तब शुद्धभावका अङ्गीकार अर अशुद्ध भावका त्यागका उपाय करै। तहां उपायका स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतरागके आगममैं कह्या है तैसें करै— तहां ताका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र-स्वरूप मोक्षमार्ग कह्या है। तहां निश्चय तौ शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान ज्ञान चारित्रकूं कह्या है अर व्यवहार जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा ताके वचन तथा तिनि वचननिकै अनुसार प्रवर्त्तनेंवाले मुनि श्रावक तिनिकी भक्ति वन्दनां विनय वैयावृत्त्य करै, सो है, जातैं ये मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तावनेंकूं उपकारी हैं उपकारीका मानना न्याय है उपकार लोपनां अन्याय है। बहुरि स्वरूपके साधक अहिंसा आदि महाव्रत अर रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति समिति गुप्तिरूप प्रवर्त्तना, अर इनिविषैं दोप लगे अपनी निन्दा गर्हादिक करना, गुरुनिका दिया प्रायश्चित लेनां, शक्ति-सारू तप करनां, परीषह सहनां, दशलक्षण धर्म विषैं प्रवर्त्तनां इत्यादि शुद्धात्माके अनुकूल क्रियारूप प्रवर्त्तनां, इनिमैं किछू रागका अंश रहै जैतैं शुभकर्मका बंध होय है तौऊ सो प्रधान नांही जातैं इनिमैं प्रवर्त्तनें वालेकै शुभकर्मके फलकी इच्छा नांही है तातै अबंधतुल्य है; इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त व्यवहार मोक्षमार्ग है यामैं प्रवृत्तिरूप परिणामैं है तौऊ निवृत्तिप्रधान है तातैं निश्चय मोक्षमार्गमैं विरोध नांही है। ऐसैं निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्गका संक्षेप है, याहीकूं शुद्ध भाव कह्या है तहां भी यामैं-सम्यग्दर्शन प्रधानकरि कह्या है जातैं सम्यग्दर्शनविना सर्व व्यवहार मोक्षका कारण नांही, अर सम्यग्दर्शनका व्यवहारमैं जिनदेवकी भक्ति प्रधान है, यह सम्यग्दर्शनके जनावनेकूं मुख्य चिह्न है तातैं जिन-भक्ति निरन्तर करनीं, अर जिनआज्ञा मांनि आगमोक्त मार्गमैं प्रवर्त्तनां यह श्रीगुरुनिका उपदेश है, अन्य जिन आज्ञा सिवाय सर्व कुमार्ग हैं तिनिका प्रसंग छोडनां, ऐसैं करे आत्मकल्याण होय है ॥

छप्पय ।

जीव सदा चिद्भाव एक अविनाशी धारै।
कर्म निमितकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै ॥
कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै ।
पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै ॥
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब ।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब ॥

दोहा ।

मंगलमय परमातमा शुद्धभाव अविकार ।
नमूं पाय पाऊं स्वपद जाचूं यहै करार ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित भावप्राभृतकी
जयपुरनिवासी पं० जयचन्द्रजी छावड़ा कृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ५ ॥

अथ मोक्षपाहुड

—६—

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ मोक्षपाहुडकी वचनिका लिख्यते।

तहां प्रथमही मंगलकै अर्थि सिद्धनिकू नमस्कार करै हैं,—

दोहा।

अष्ट कर्मको नाश करि शुद्ध अष्ट गुण पाय।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं नमूं मोक्षसुखदाय॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकै अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कारकरि अर श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत मोक्षपाहुडग्रंथ प्राकृत गाथाबध है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहा प्रथम ही आचार्य मंगलकै अर्थि परमात्माकूं नमस्कार करै हैं,—

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स॥ १ ॥

ज्ञानमय आत्मा उपलब्धः येन क्षरितकर्मणा।
त्यक्त्वा च परद्रव्यं नमो नमस्तस्मै देवाय॥ १ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-जानैं परद्रव्यकूं छोडिकरि झटितकर्म कहिये खिरै हैं द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म जाकै ऐसा होयकरि अर ज्ञान-

मयी आत्माकूं पाया, ऐसे देवके अर्थि हमारा नमस्कार होहू नमस्कार होहू। दोय बार कहनेसैं अतिप्रीतियुक्त भाव जनाये हैं ॥

भावार्थ—इहा मोक्षपाहुडका प्रारभ है तहा जिननैं समस्त परद्रव्यकूं छोडि कर्मका अभावकरि केवलज्ञानानद स्वरूप मोक्षपद पाया तिम देवकूं मगलकै अर्थि नमस्कार किया सो यह युक्त है, जहा जैसा प्रकरण तहा तैसी योग्यता। इहा भावमोक्ष तौ अरहंतकै,अर द्रव्यभावकरि दोऊ प्रकार सिद्ध परमेष्ठीकै है यातै दोउकूं नमस्कार जाननां ॥ १ ॥

आगैं ऐसै नमस्कार करि ग्रथ करनेंकी प्रतिज्ञा करै हैं,—

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं ।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं ॥ २ ॥

नत्वा च तं देवं अनंतवरज्ञानदर्शनं शुद्धम् ।
वक्ष्ये परमात्मानं परमपदं परमयोगिनाम् ॥ २ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—तिस पूर्वोक्त देवकूं नमस्कारकरि अर परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा ताहि परम योगीश्वर जे उत्कृष्ट योग्य ध्यानके धरनहारे मुनिराज तिनि प्रति कहूगा, कैसा है पूर्वोक्त देव—अनंत,अर श्रेष्ठ जो ज्ञानदर्शन ते जाकै पाइये है, बहुरि विशुद्ध है कर्ममलकरि रहित है, अथवा कैसा है परमात्मा अनंत है वर कहिये श्रेष्ठ है ज्ञान अर दर्शन जामै, बहुरि कैसा है—परम उत्कृष्ट है पद जाका ॥

भावार्थ—इस ग्रथमैं मोक्षकू जिस कारणतैं पावै अर जैसा मोक्षपद है तैसाका वर्णन करियेगा, तिस रीति तिसहीकी प्रतिज्ञा करी है। बहुरि योगीश्वरनिप्रति कहियेगा, याका आशय यह है जो—ऐसे मोक्षपदकूं शुद्ध परमात्माका ध्यानतैं पाइये है, तहां तिस ध्यानकी योग्यता योगीश्वरनिकै ही प्रधान है, गृहस्थनिकै यह ध्यान प्रधान नाही ॥ २ ॥

आगैं कहै हैं जो-जिस परमात्माकूं कहनेंकी प्रतिज्ञा करी है तिसकं योगी ध्यानी मुनि जाणि तिसकूं ध्याय परम पद पावै है;—

जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं ।
अव्वावाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं ॥ ३ ॥

यत् ज्ञात्वा योगी योगस्थः दृष्ट्वा अनवरतम् ।
अव्याबाधमनंतं अनुपमं लभते निर्वाणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—आगैं कहैंगे जो परमात्मा ताकूं जांनिकरि योगी जो मुनि सो योग जो ध्यान ताविषैं तिष्ठ्या हूवा निरन्तर तिस परमात्माकूं अनुभव गोचरकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है, कैसा है निर्वाण—अव्याबाध है जहां काहू प्रकारकी बाधा नांही है, बहुरि कैसा है—अनंत है जाका नाश नांही है, बहुरि कैसा है—अनुपम है जाकूं काहूकी उपमा लागै नांही ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं ऐसे परमात्माकूं आगैं कहियेगा तिसकूं ध्यानविषैं मुनि निरन्तर अनुभवन करि अर केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं पावै । इहां यह तात्पर्य है–जो परमात्माका ध्यानतैं मोक्ष होय है ॥ ३ ॥

आगैं परमात्मा कैसा है–ऐसैं जनावनेंकै अर्थि आत्माकूं तीन प्रकार करि दिखावै हैं;—

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु[1] देहीणं ।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा ॥ ४ ॥

त्रिप्रकारः स आत्मा परमन्तः बहिः स्फुटं देहिनाम् ।
तत्र परं ध्यायते अन्तरुपायेन त्यज बहिरात्मानं ॥४॥

अर्थ—सो आत्मा प्राणीनिकै तीन प्रकार है–अंतरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा, ऐसैं । तहां अन्तरात्माके उपायकरि बहिरात्माकूं छोडिकरि परमात्माकूं ध्यायजे ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'हु हेऊण' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'तु हित्वा' की है ।

भावार्थ—बहिरात्माकूं छोडि अंतरात्मारूप होय परमात्माकूं ध्यावनां, यातैं मोक्ष होय है ॥ ४ ॥

आगैं तीन प्रकार आत्माका स्वरूप दिखावै हैं;—

अक्खाणि वाहिरप्पा अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो ।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो ॥ ५ ॥

अक्षाणि बहिरात्मा अन्तरात्मा स्फुटं आत्मसंकल्पः ।
कर्मकलंकविमुक्तः परमात्मा भण्यते देवः ॥ ५ ॥

अर्थ—अक्ष जे इंद्रिय स्पर्शनादिक तेतौ बाह्य आत्मा हैं जातैं इंद्रियनिकरि स्पर्श आदि विषयनिका ज्ञान होय तब लोक कहै ऐसैं ही जो इंद्रिय है सो ही आत्मा है, ऐसैं जो इंद्रियनिकूं बाह्य आत्मा कहिये। बहुरि अंतरात्मा है सो अन्तरंगविषैं आत्माका प्रगट अनुभवगोचर सकल्प है, शरीर इंद्रियनितैं न्यारा मनकै द्वारैं देखनें जाननेंवाला है सो मैं हूं, ऐसैं स्वसंवेदनगोचर संकल्प सो ही अन्तरात्मा है। बहुरि कर्म जो द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक अर भावकर्म राग द्वेष मोहादिक नोकर्म शरीरादिक सो ही भया कलंकमल तिसकरि विमुक्त रहित अनंतज्ञानादिकगुणसहित सो ही परमात्मा है, सो ही देव है, अन्यकूं देव कहना उपचार है ॥

भावार्थ—बाह्य आत्मा तौ इंद्रियनिकूं कह्या, अर अतरात्मा देहमै तिष्ठता देखनां जानना जाकै पाइये ऐसा मनकै द्वारैं संकल्प सो है, बहुरि परमात्मा कर्मकलकसूं रहित कह्या। सो इहां ऐसा जनाया है जो—यह जीवही जेतैं बाह्य शरीरादिकहीकूं आत्मा जानै है तेतैं तौ बहिरात्मा है संसारी है, बहुरि जब येही जीव अंतरंगविषैं आत्माकूं जानै है तब यह सम्यग्दृष्टी होय है तब अंतरात्मा है, अर यह जीव जब परमात्माका ध्यान करि कर्मकलकसूं रहित होय तब पहलै तौ केवलज्ञान उपजाय अरहंत होय है, पीछैं सिद्धपदकूं पावै है, इनि दोऊहीकूं परमात्मा

कहिये है। अरहत तौ भावकलंकरहित हैं अर सिद्ध द्रव्यभावरूप दोऊ प्रकार कलंक रहित हैं, ऐसैं जाननां ॥ ५ ॥

आगैं तिस परमात्माका विशेषणकरि स्वरूप कहै हैं,—

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥ ६ ॥

मलरहितः कलत्यक्तः अनिंद्रियः केवलः विशुद्धात्मा।
परमेष्ठी परमजिनः शिवंकरः शाश्वतः सिद्धः ॥ ६ ॥

अर्थ—परमात्मा ऐसा है-प्रथम तौ मलरहित है द्रव्यकर्म भावकर्मरूप मलकरि रहित है, बहुरि कलत्यक्त कहिये शरीरकरि रहित है, बहुरि अनिंद्रिय कहिये इन्द्रियनिकरि रहित है अथवा अनिंदित कहिये-काहू प्रकार निंदायुक्त नाहीं है सर्व प्रकार प्रशंसा योग्य है, बहुरि केवल कहिये केवलज्ञानमयी है, बहुरि विशुद्धात्मा कहिये विशेष करि शुद्ध है आत्मा स्वरूप जाका, ज्ञानमैं ज्ञेयके आकार प्रतिभासै है तौहू तिनिस्वरूप न हो है तथापि तिनितैं रागद्वेष नाहीं है, बहुरि परमेष्ठी है परमपदविषैं तिष्ठै है, बहुरि परम जिन है सर्व कर्मकूं जीतै है, बहुरि शिवकर है भव्य जीवनिकै परम मंगल तथा मोक्षकू करै है, बहुरि शाश्वता है अविनाशी है, बहुरि सिद्ध है अपनें स्वरूपकी सिद्धिकरि निर्वाणपदकूं प्राप्त भये हैं ॥

भावार्थ—ऐसा परमात्मा है, ऐसे परमात्माका ध्यान करै सो ऐसाही होय है ॥ ६ ॥

आगैं सो ही उपदेश करै हैं;—

आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ ७ ॥

आरुह्य अंतरात्मानं बहिरात्मानं त्यक्त्वा त्रिविधेन।
ध्यायते परमात्मा उपदिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥ ७ ॥

अर्थ—वहिरात्माकूं मन वचन कायकरि छोडि अन्तरात्माका आश्रय लेयकरि परमात्माकूं ध्यायजे, यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेवनिनैं उपदेश्या है॥

भावार्थ—परमात्माका ध्यान करनेका उपदेश प्रधान करि कह्या है यातैं मोक्ष पावै है॥ ७॥

आगै वहिरात्माकी प्रवृत्ति कहै हैं,—

वहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचओ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ॥ ८॥

वहिरर्थे स्फुरितमनाः इन्द्रियद्वारेण निजस्वरूपच्युतः।
निजदेहं आत्मानं अध्यवस्यति मूढदृष्टिस्तु॥ ८॥

अर्थ—मूढदृष्टी अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टी है सो वाह्य पदार्थ जे धन धान्य कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थ तिनिविषैं स्फुरित है तत्पर है मन जाका, वहुरि इन्द्रियका द्वार करि अपनें स्वरूपतैं च्युत है इन्द्रियनिकूं ही आत्मा जानै है, ऐसा भया सता अपनां देह है ताहीकूं आत्मा जानै है निश्चय करै है; ऐसा मिथ्यादृष्टी वहिरात्मा है॥

भावार्थ—ऐसा वहिरात्माका भाव है ताकूं छोडनां॥ ८॥

आगै कहै हैं जो—मिथ्यादृष्टी आपनां देह सारिखा पर देहकूं देखि तिसकूं परका आत्मा मानै है;—

णियदेहसरित्थं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएण॥ ९॥

निजदेहसदृशं दृष्ट्वा परविग्रहं प्रयत्नेन।
अचेतनं अपि गृहीतं ध्यायते परमभावेन॥ ९॥

अर्थ— मिथ्यादृष्टी पुरुष अपनां देह सारिखा परका देहकूं देखि-

करि यह देह अचेतन है तौऊ मिथ्याभावकरि आत्मभावकरि बडा यत्न करि परका आत्मा ध्यावै है।

भावार्थ—बहिरात्मा मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वकर्मका उदयकरि मिथ्याभाव है सो आपना देहकूं आपा जानै है तैसैंही परका देह अचेतन है तौऊ ताकूं परकूं आत्मा जानि ध्यावै है मानै है तामैं बडा यत्न करै है यातैं ऐसे भावकूं छोडनां यह तात्पर्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो ऐसीही मांनितैं पर मनुष्यादिविषैं मोह प्रवर्तै है;—

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो ॥ १० ॥

स्वपराध्यवसायेन देहेषु च अविदितार्थमात्मानम्।
सुतदारादिविषये मनुजानां वर्द्धते मोहः ॥ १० ॥

अर्थ—ऐसे देहविषैं स्वपरका अध्यवसाय कहिये निश्चय ताकरि मनुष्यनिकै सुत दारादिक जीवनिविषैं मोह प्रवर्तै है, कैसे हैं मनुष्य—अविदित कहिये नांही जान्यां है अर्थ कहिये पदार्थ ताका आत्मा कहिये स्वरूप ज्यां ॥

भावार्थ—जिनि मनुष्यनिनैं जीव अजीव पदार्थका स्वरूप यथार्थ न जाण्यां तिनिकै देहविषैं स्वपराध्यवसाय है अपनां देहकूं आपका आत्मा जानैं हैं अर परका देहकूं परका आत्मा जानैं है तिनिकै पुत्र स्त्री आदि कुटुम्बविषैं मोह ममत्व होय है, जब जीव अजीवका स्वरूप जानैं तब देहकूं अजीव मानैं, आत्मकूं अमूर्तीक चेतन जानैं आपनां आत्माकूं आपा मानैं परका आत्माकूं पर जानैं, तब परविषैं ममत्व नांही होय। यातैं जीवादिक पदार्थका स्वरूप नीकैं जांनि मोह न करनां यह जनाया है ॥ १० ॥

आगे कहै है जो-मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञान अर मिथ्याभाव होय है ताकरि आगामी भवविषैं भी यह मनुष्य देहकूं चाहै है;—

मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं सम्मण्णए[1] मणुओ ॥ ११ ॥

मिथ्याज्ञानेषु रतः मिथ्याभावेन भावितः सन्।
मोहोदयेन पुनरपि अंगं मन्यते मनुजः ॥ ११ ॥

अर्थ—यह मनुष्य है सो मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञानकरि मिथ्याभावकरि भाया संता फेरि भी आगामी जन्मविषैं इस अंगकूं देहकू सन्मानैं है भला मांनि चाहै है ॥

भावार्थ—मोहकर्मकी प्रकृति जो मिथ्यात्व ताके उदयकरि ज्ञानभी मिथ्या होय है परद्रव्यकूं अपनां जानैं है, बहुरि तिस मिथ्यात्वहीकरि मिथ्या श्रद्धान होय है ताकरि निरन्तर परद्रव्यविषैं यह भावना रहै है जो-यह मेरै सदा प्राप्त होहू, यातैं यह प्राणी आगामी देहकूं भला जाणि चाहै है ॥ ११ ॥

आगैं कहै हैं-जो मुनि देहविषैं निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै हैं यामैं ममत्व न करै हैं सो निर्वाणकूं पावै है,—

जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥ १२ ॥

यः देहे निरपेक्षः निर्द्वन्द्वः निर्ममः निरारंभः।
आत्मस्वभावे सुरतः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥१२॥

१—मुद्रित सं. प्रतिमें 'स मण्णए' ऐसा प्राकृतपाठ जिसका 'स्व मन्यते' ऐसा संस्कृत पाठ है।

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि, देहविषै निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै है उदासीन है, बहुरि निर्द्वंद है राग द्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मानितैं रहित है, बहुरि निर्ममत्त्व है देहादिक विषैं 'यह मेरा' ऐसो बुद्धितैं रहित है, बहुरि निरारंभ है या देहकै अर्थि तथा अन्य लौकिक प्रयोजनकै अर्थि आरंभतैं रहित है, बहुरि आत्मस्वभाव विषैं रत है लीन है निरन्तर स्वभावकी भावना सहित है सो मुनि निर्वाणकूं पावै है॥

भावार्थ—जो बहिरात्माके भावकूं छोडि अन्तरात्मा होय परमात्मा मैं लीन होय है सो मोक्ष पावै है। यह उपदेश जनाया है॥ १२॥

आगैं बंधका अर मोक्षका कारणका संक्षेपरूप आगमका वचन कहै हैं,—

परदव्वरओ वज्झदि विरओ मुच्चइ विविहकम्मेहिं।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स॥ १३॥

परद्रव्यरतः बध्यते विरतः मुच्यते विविधकर्मभिः।
एषः जिनोपदेशः समासतः बंधमोक्षस्य॥ १३॥

अर्थ—जो जीव परद्रव्यविषैं रत है रागी है सो तौ अनेक प्रकारके कर्मनिकरि बधै है कर्मनिका बंध करै है, बहुरि जो परद्रव्यविषै विरत है रागी नाही है सो अनेक प्रकारके कर्मनितै छूटै है, यह बंधका अर मोक्षका संक्षेपकरि जिनदेवका उपदेश है॥

भावार्थ—बंध मोक्षके कारणकी कथनी अनेक प्रकार करि है ताका यह संक्षेप है—जो परद्रव्यसूं रागभाव सो तौ बंधका कारण अर विरागभाव सो मोक्षका कारण है, ऐसा संक्षेपकरि जिनेन्द्रका उपदेश है॥ १३॥

आगैं कहै है जो स्वद्रव्यविषैं रत है सो सम्यग्दृष्टी होय है अर कर्मका नाश करै है;—

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ सो साहू ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ [2]दुट्ठट्ठकम्माइं ॥१४॥

स्वद्रव्यरतः श्रमणः सम्यग्दृष्टिः भवति सः साधुः ।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः [3]क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि ॥ १४ ॥

अर्थ—जो मुनि स्वद्रव्य जो अपनां आत्मा ताविषैं रत है रुचि सहित है सो नियमकरि सम्यग्दृष्टी है, बहुरि सो ही सम्यक्त्व भावरूप परिणम्या संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिकूं क्षेपै है, नाश करै है।

भावार्थ—यह भी कर्मके नाश करनेका कारणका संक्षेप कथन है जो अपनां स्वरूपकी श्रद्धा रुचि प्रतीति आचरणकरि युक्त है सो नियमकरि सम्यग्दृष्टी है, इस सम्यक्त्वभाव करि परिणम्या मुनि आठ कर्मका नाश करि निर्वाण पावै है ॥ १४ ॥

आगैं कहै हैं जो परद्रव्यविषैं रत है सो मिथ्यादृष्टी भया कर्मकूं बांधै है,—

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू ।
मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं ॥ १५ ॥

यः पुनः परद्रव्यरतः मिथ्यादृष्टिः भवति सः साधुः ।
मिथ्यात्वपरिणतः पुनः बध्यते दुष्टाष्टकर्मभिः ॥ १५ ॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जो साधु परद्रव्यविषैं रत है रागी है सो मिथ्यादृष्टी होय है; बहुरि सो मिथ्यात्वभावरूप परिणम्यां संता दुष्ट जे अष्ट कर्म तिनिकरि बंधै है ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सो साहू के स्थानमें णियमेण' ऐसा पाठ है।
२—मु. सं. प्रतिमें 'दुट्ठट्ठकम्माणि' ऐसा पाठ है।
३—मु सं. प्रतिमें 'क्षिपते' ऐसा पाठ है।

भावार्थ—यह बंधके कारणका संक्षेप है तहां साधु कहनें तैं ऐसा जनाया है जो बाह्य परिग्रह छोडि निर्ग्रंथ होय तौ हू मिथ्यादृष्टी भया संता दुष्ट जे संसारके दुःख देनेंवाले अष्ट कर्म तिनिकरि बंधै है ॥१५॥

आगैं कहै हैं जो—परद्रव्यहीतैं दुर्गति होय है अर स्वद्रव्यहीतैं सुगति होय है;—

परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सग्गई होई ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरय इयरम्मि ॥१६॥

परद्रव्यात् दुर्गतिः स्वद्रव्यात् स्फुटं सुगतिः भवति ।
इति ज्ञात्वा स्वद्रव्ये कुरुत रतिं विरतिं इतरस्मिन् ॥ १६ ॥

अर्थ परद्रव्यतैं तौ दुर्गति होय है, बहुरि स्वद्रव्यतैं सुगति होय है यह प्रगट जाणौं, जातैं हे भव्य जीव हौ ? तुम ऐसैं जाणिकरि स्वद्रव्यविषै रति करो अर इतर जो परद्रव्य तातैं विरति करौ ॥

भावार्थ—लोकमैं भी यह रीति है अपनें द्रव्यसूं रति करि अपनां ही भोगवै है सो सुख पावै है ताकूं कछू आपदा न आवै है, बहुरि परद्रव्यसूं प्रीतिकरि जैसैं तैसैं लेकरि भोगवै है ताके दुःख होय है आपदा आवै है। तातैं आचार्य संक्षेपकरि उपदेश किया जो—अपनां आत्मस्वभावविषैं तौ रति करौ यातैं सुगति है स्वर्गादिक भी याहीतैं होय है अर मोक्षभी याहीतैं होय है, बहुरि परद्रव्यतैं प्रीति मति करौ यातैं दुर्गति होय है संसारमैं भ्रमण होय है। इहां कोई कहै जो—स्वद्रव्यमैं लीन भये मोक्ष होय है अर सुगति दुर्गति तौ परद्रव्यकी प्रीतितैं होय है ? ताकूं कहिये जो—यह सत्य है परन्तु इहा आशयतैं कह्या है जो—परद्रव्यतैं विरक्त होय स्वद्रव्यमैं लीन होय तब विशुद्धता बहुत होय है, तिस विशुद्धताके निमित्ततैं शुभकर्मभी बंधै है अर अत्यंत विशुद्धता होय तब कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है तातैं सुगति दुर्गतिका होनां कह्या तैसैं युक्त है, ऐसैं जाननां ॥ १६ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—परद्रव्य कैसा है? ताका उत्तर आचार्य कहै हैं,—

आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवइ ।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरसीहिं ॥ १७ ॥

आत्मस्वभावादन्यत् सचित्ताचित्तमिश्रितं भवति ।
तत् परद्रव्यं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥ १७ ॥

अर्थ—आत्मस्वभावतैं अन्य जो किछू सचित्त तो स्त्री पुत्रादिक जीवसहित वस्तु बहुरि अचित्त धन धान्य हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु बहुरि मिश्र आभूषणादिसहित मनुष्य तथा कुटुम्बसहित गृहादिक ये सर्व परद्रव्य हैं, ऐसैं जानैं जीवादिक पदार्थका स्वरूप न जाण्या ताके जनावनेंके अर्थि सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवाननैं कह्या है अथवा 'अवितथ' कहिये सत्यार्थ कह्या है ॥

भावार्थ—अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय अन्य अचेतन मिश्र वस्तु हैं ते सर्वही परद्रव्य हैं ऐसैं अज्ञानीके जनावनेंकूं सर्वज्ञदेवने कह्या है ॥ १७ ॥

आगे कहै हैं जो—आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कह्या सो ऐसा है;—

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं ।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवइ सद्दव्वं ॥ १८ ॥

दुष्टाष्टकर्मरहितं अनुपमं ज्ञानविग्रहं नित्यम् ।
शुद्धं जिनैः भणितं आत्मा भवति स्वद्रव्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ—दुष्ट जे संसारके दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म तिनिकरि रहित अर जाकूं काहूकी उपमा नांही ऐसा अनुपम अर ज्ञान ही है विग्रह कहिये शरीर जाकै ऐसा अर नित्य जाका नाश नांही अवि-

नाशी अर शुद्ध कहिये विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिनै भगवान सर्वज्ञनैं कह्या सो स्वद्रव्य है ॥

भावार्थ—ज्ञानानन्दमय अमूर्तीक ज्ञानमूर्ति अपनां आत्मा है सो ही एक स्वद्रव्य है अन्य सर्व चेतन अचेतन मिश्र परद्रव्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे ऐसे निजद्रव्यकूं ध्यावैं हैं ते निर्वाण पावैं हैं;—

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा हु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं ॥१९॥

ये ध्यायंति स्वद्रव्यं परद्रव्यपराङ्मुखास्तु सुचरित्राः।
ते जिनवराणां मार्गे अनुलग्नाः लभंते निर्वाणम् ॥१९॥

अर्थ—जे मुनि परद्रव्यतैं पराङ्मुख भये संते स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य ताहि ध्यावैं हैं ते प्रगट सुचरित्रा कहिये निर्दोष चारित्रयुक्त भये सते जिनवर तीर्थंकरनिके मार्गकूं अनुलग्न भये लागे सते निर्वाणकूं पावैं हैं ॥

भावार्थ—परद्रव्यका त्यागकरि जे अपनां स्वरूपकूं ध्यावैं हैं ते निश्चयचारित्ररूप होय जिनमार्गमैं लागे ते मोक्ष पावैं हैं ॥ १९ ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनमार्गमैं लग्या योगी शुद्धात्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ कहा ताकरि स्वर्ग नहीं पावै ? पावैही पावै,—

जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥२०॥

जिनवरमतेन योगी ध्याने ध्यायति शुद्धमात्मानम्।
येन लभते निर्वाणं न लभते किं तेन सुरलोकम् ॥२०॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो जिनवर भगवानके मतकरि शुद्ध आत्माकूं ध्यानविषै ध्यावै है ताकरि निर्वाणकूं पावै है तौ ताकरि कहा स्वर्ग लोक न पावै ? पावैही पावै ॥ २० ॥

भावार्थ—कोई जानैंगा जो जिनमार्गमैं लागि आत्माकूं ध्यावै सो मोक्ष पावै अर स्वर्ग तौ यातैं होय नांही, ताकूं कहा है जो जिनमार्गमैं प्रवर्त्तनें वाला शुद्ध आत्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ ताकरि स्वर्गलोक कहा कठिन है ? यह तौ ताके मार्गमैं ही है ॥ २० ॥

आगैं या अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै हैं,

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेइ गुरुभारं ।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाहु भुवणयले ॥२१॥

यः याति योजनशतं दिवसेनैकेन लात्वा गुरुभारम् ।
स किं क्रोशार्द्धमपि स्फुटं न शक्नोति यातुं भुवनतले ॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष बडा भार लेय एक दिनकरि सौ योजन जाय सो या भुवनतलविषैं आध कोश कहा न जाय ? यह प्रगट जाणो ॥

भावार्थ—जो पुरुष बड़ा भार लेय एक दिनमैं सौ योजन चालै ताकै आधकोश चालनां तौ अत्यत सुगम भया, तैसैंही जिनमार्गतैं मोक्ष पावै तौ स्वर्ग पावना तौ अत्यंत सुगम है ॥ २१ ॥

आगैं याही अर्थका अन्य दृष्टान्त कहै हैं,—

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं ।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो ॥ २२ ॥

यः कोट्या न जीयते सुभटः संग्रामकैः सर्वैः ।
स किं जीयते एकेन नरेण संग्रामे सुभटः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो कोई सुभट संग्राममैं सर्वही संग्रामके करनेवालेनिकरि सहित कोडि नरनिकूं सुगमताकरि जीतै सो सुभट एक नरकूं कहा न जीतै ? जीतैही ॥

भावार्थ—जो जिनमार्गमैं प्रवर्त्तै सो कर्मका नाश करै तौ कहा स्वर्गका रोकनेवाला एक पापकर्म ताका नाश न करै ? करैही करै ॥२२॥

आगैं कहै हैं जो—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है परन्तु ध्यानका योगकरि स्वर्ग पावै है सो तिस ध्यानके योगकरि मोक्ष भी पावै है,—

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए किंतु झाणजोएण ।
जो पावइ सो पावइ परलोये सासयं सोक्खं ॥ २३ ॥

स्वर्गं तपसा सर्वः अपि प्राप्नोति किन्तु ध्यानयोगेन ।
यः प्राप्नोति सः प्राप्नोति परलोके शाश्वतं सौख्यम् ॥२३॥

अर्थ—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है तथापि जो ध्यानके योगकरि स्वर्ग पावै है सो ही ध्यानके योगकरि परलोकविषैं शाश्वता सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—कायक्लेशादिक तप तौ सर्वही मतके धारक करैं हैं ते तपस्वी मंदकषायके निमित्ततै सर्वही स्वर्गकूं पावैं हैं, बहुरि जो ध्यानकरि स्वर्ग पावै है सो जिनमार्गविषैं कहा तैसा ध्यानके योगकरि परलोकविषैं शाश्वता है सुख जाविषैं ऐसा निर्वाणकूं पावै है ॥ २३ ॥

आगैं ध्यानके योगकरि मोक्षकूं पावै है ताकूं दृष्टान्त दार्ष्टान्तकरि दृढ करै हैं;—

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य ।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥ २४ ॥

अतिशोभनयोगेन शुद्धं हेम भवति यथा तथा च ।
कालादिलब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसें सुवर्ण पाषाण है सो सोधनेंकी सामग्रीके संबंधकरि शुद्ध सुवर्ण होय है तेसें काल आदि लब्धि जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप सामग्रीकी प्राप्ति ताकरि यहु आत्मा कर्मके संयोगकरि अशुद्ध है सो ही परमात्मा होय है ॥ २४ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ २४ ॥

आगें कहै हैं जो—संसारविषें व्रत तपकरि स्वर्ग होय है सो व्रत तप भला है अव्रतादिकरि नरकादिक गति होय है सो अव्रतादिक श्रेष्ठ नांही;—

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं ।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥ २५ ॥

वरं व्रततपोभिः स्वर्गः मा दुःखं भवतु नरके इतरैः ।
छायातपस्थितानां प्रतिपालयतां गुरुभेदः ॥ २५ ॥

अर्थ–व्रत अर तपकरि स्वर्ग होय है सो श्रेष्ठ है, बहुरि इतर जो अव्रत अर अतप तिनिकरि प्राणीकै नरकगतिविषैं दुःख होय है सो मति होहु, श्रेष्ट नाही। छाया अर आतपकै विषैं तिष्ठनेंवालेके जे प्रतिपालक कारण हैं तिनिकै बड़ा भेद है ॥

भावार्थ—जैसें छायाका कारण तौ वृक्षादिक है, तिनिकरि छाया कोई बैठै सो सुख पावै, बहुरि आतापका कारण सूर्य अग्नि आदिक है तिनिके निमित्ततैं आताप होय ताविषैं बैठै सो दुःख पावै ऐसें इनिमैं बडा भेद है; तैसै जो व्रत तपकूं आचरै सो स्वर्गका सुख पावै अर इनिकूं न आचरै विषय कषायादिककूं सेवै सो नरकके दुःख पावै, ऐसें इनिमैं बडा भेद है। तातैं इहां कहनेका यह आशय है जो जेतैं निर्वाण न होय तेतैं व्रत तप आदिकमैं प्रवर्त्तनां श्रेष्ठ है यातैं सासारिक सुखकी प्राप्ति है अर निर्वाणके साधनें विषैं भी ये सहकारी हैं। विषय कषायादिककी प्रवृत्तिका फल तौ केवल नरकादिकके दुःख हैं सो तिनि दुःख-

निके कारणनिकूं सेवना यह तौ वडी भूलि है, ऐसैं जाननां ॥ २५ ॥

आगैं कहै है जो-संसारमै रहै जेतैं व्रत तप पालनां श्रेष्ठ कह्या परन्तु जो संसारतैं नीसरया चाहै है सो आत्माकूं ध्यावो,—

जो इच्छइ णिस्सरिहुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ[१] ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ॥ २६ ॥

यः इच्छति निःसर्तुं संसारमहार्णवात् रुद्रात् ।
कर्मेन्धनानां दहनं सः ध्यायति आत्मानं शुद्धम् ॥२६॥

अर्थ—जो जीव रुद्र कहिये बडा विस्ताररूप जो संसाररूप समुद्र तातैं नीसरणेकूं चाहै है सो जीव कर्मरूप ईंधनका दहन करनेवाला जो शुद्ध आत्मा ताहि ध्यावै है ॥

भावार्थ—निर्वाणकी प्राप्ति कर्मका नाश होय तब होय है अर कर्मका नाश शुद्धात्माके ध्यानतैं होय है सो संसारतै नीसरि मोक्षकूं चाहै है सो शुद्ध आत्मा जो कर्ममलतैं रहित अनंत चतुष्टयसहित परमात्माकूं ध्यावै है, मोक्षका उपाय या विना अन्य नांही है ॥ २६ ॥

आगै आत्माकूं कैसे ध्यावै ताकी विधि दिखावै हैं;—

सव्वे कसाय मुत्तं गारवमयरायदोसवामोहं ।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएइ झाणत्थो ॥ २७ ॥

सर्वान् कषायान् मुक्त्वा गारवमदरागदोषव्यामोहम् ।
लोकव्यवहारविरतः आत्मानं ध्यायति ध्यानस्थः ॥२७॥

अर्थ—मुनि है सो सर्व कषायनिकूं छोडि तथा गारव मद राग द्वेष तथा मोह इनिकूं छोडिकरि अर लोकव्यवहारतैं विरक्त भया ध्यान

१—मुद्रित स. प्रतिमें 'संसारमहण्णवस्स रुद्दस्स' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'ससारमहार्णवस्य रुद्रस्य' ऐसी है ।

विषैं तिष्ठ्या आत्माकूं ध्यावै है ॥ २७ ॥

भावार्थ—मुनि आत्माकूं ध्यावै सो ऐसा भया ध्यावै—प्रथम तौ क्रोध मान माया लोभ ये कषाय हैं इनि सर्वनिकूं छोडै, बहुरि गारवकूं छोडै, बहुरि मद जाति आदिका भेद आठ प्रकार है ताकूं छोडै बहुरि राग द्वेषकूं छोडै बहुरि लोकव्यवहार जो संघमैं रहनेंमैं परस्पर विनयाचार वैयावृत्त्य धर्मोपदेश पढना पढावना है ताकूं भी छोडै ध्यानविषै तिष्ठै ऐसै आत्माकूं ध्यावै ॥

इहां कोई पूछै—सर्व कषायका छोडनां कह्या है तामैं तौ सर्व गारव मदादिक आय गये न्यारे काहेकूं कहे? ताका समाधान ऐसैं जो—सर्व कषायनिमैं गर्भित हैं तौऊ विशेष जनावनेंकूं न्यारे कहे हैं तहां कषायकी प्रवृत्ति तौ ऐसे है जो—आपके अनिष्ट होय तासू क्रोध करै अन्यकूं नीचा मानि मान करै काहू कार्यनिमित्त कपट करै आहारादिविषैं लोभ करै,बहुरि यह गारव है सो—रस, ऋद्धि, सात, ऐसै तीन प्रकार है सो ये यद्यपि मानकषायमैं गर्भित है तौऊ प्रमादकी बहुलता इनिमैं है तातैं न्यारे कहे हैं। बहुरि मद जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका होय है सो न करै। बहुरि राग द्वेष प्रीति-अप्रीतिकूं कहिये है, काहूसू प्रीति करनां काहूसू अप्रीति करना, ऐसैं लक्षणके विशेषतैं भेद करि कह्या। बहुरि मोह नाम परसू ममत्व भावका है, संसारका ममत्व तौ मुनिकै है ही नाही अर धर्मानुरागतैं शिष्य आदिविषैं ममत्वका व्यवहार है सो ये भी छोडै। ऐसैं भेदविवक्षाकरि न्यारे कहे हैं, ये ध्यानके घातक भाव हैं इनिकूं छोडे विना ध्यान होय नांही, जातैं जैसैं ध्यान होय तैसैं करै ॥ २७ ॥

आगैं याहीकूं विशेष करि कहै हैं,—

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण ।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा ॥ २८ ॥

मिथ्यात्वं अज्ञानं पापं पुण्यं त्यक्त्वा त्रिविधेन ।
मौनव्रतेन योगी योगस्थः द्योतयति आत्मानम् ॥२८॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो मिथ्यात्व अज्ञान पाप पुण्य इनिकूं मन वचन कायकरि छोडि मौनव्रतकरि ध्यानविषैं तिष्ठ्या आत्माकूं ध्यावै है ॥

भावार्थ—केई अन्यमती योगी ध्यानी कहावैं है तातैं जैनलिंगी भी कोई द्रव्यलिंग धारे होय ताके निषेध निमित्त ऐसैं कह्या है जो—मिथ्यात्व अर अज्ञानकूं छोडि आत्माका स्वरूप यथार्थ जांनि श्रद्धान जानैं न किया ताकै मिथ्यात्व अज्ञान तौ लग्या रह्या तब ध्यान काहेका होय, बहुरि पुण्य पाप दोऊ बधस्वरूप हैं इनि विषैं प्रीति अप्रीति रहै जेतैं मोक्षका स्वरूप जान्यां नांही तब ध्यान काहेका होय, बहुरि मन वचनकी प्रवृत्ति छोडि मौन न करै तौ एकाग्रता कैसै होय। तातैं मिथ्यात्व अज्ञान पुण्य पाप मन वचन कायकी प्रवृत्ति छोडना ध्यानविषैं युक्त कह्या है ऐसैं आत्माकूं ध्याये मोक्ष होय है ॥ २८ ॥

आगैं ध्यान करनेंवाला मौन करि तिष्ठै है सो कहा विचारि करि तिष्ठै है, सो कहै हैं,—

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा ।
जाणगं दिस्सदे णंतं[1] तम्हा जंपेमि केण हं ॥ २९ ॥

यत् मया दृश्यते रूपं तत् न जानाति सर्वथा ।
ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम् ॥२९॥

अर्थ—जा रूपकूं मैं देखूं हू सो रूप मूर्त्तीक वस्तु है जड है अचेतन है सर्वप्रकार करि कछू ही जाणै नांही है, अर मैं ज्ञायक हूं सो

1—मु. सं प्रतिमें 'णंतं' इसकी संस्कृत 'अनन्त.' की है।

अमूर्तीकहूं यह जड अचेतन है सर्व प्रकार करि कछूही जाणैं नाही है, तातैं मैं कौनसूं बोलूं ॥

भावार्थ—जो दूजा कोऊ परस्पर बात करनें वाला होय तब परस्पर बोलनां संभवै, सो आत्मा तौ अमूर्तीक—ताकै वचन बोलना नाही, अर जो रूपी पुद्गल है सो अचेतन है ककू जाणैं नाही देखै नाही। तातैं ध्यान करनेवाला कहै है—मै कौनसू बोलूं तातैं मेरै मौन है ॥ २९ ॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसैं ध्यान करतैं सर्व कर्मके आस्रवका निरोध करि संचित कर्मका नाश करै है;—

सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवइ संचियं ।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं ॥ ३० ॥

सर्वास्रवनिरोधेन कर्म क्षपयति संचितम् ।
योगस्थः जानाति योगी जिनदेवेन भाषितम् ॥ ३० ॥

अर्थ—योग ध्यानविषैं तिष्ठ्या योगी मुनि है सो सर्व कर्मके आस्रवका निरोधकरि संवरयुक्त भया पूर्वैं बांधे जे कर्म ते संचयरूप हैं तिनिका क्षय करै है ऐसैं जिनदेवनै कह्या है सो जाणिये ॥

भावार्थ—ध्यानकरि कर्मका आस्रव रुकै यातैं आगामी बंध होय नांही अर पूर्व संचे कर्मकी निर्जरा होय है तब केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है, यह आत्माके ध्यानका माहात्म्य है ॥ ३० ॥

आगैं कहै हैं जो व्यवहारमैं तत्पर है ताकै यह ध्यान नांही,—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥ ३१ ॥

यः सुप्तः व्यवहारे सः योगी जागर्ति स्वकार्ये ।
यः जागर्ति व्यवहारे सः सुप्तः आत्मनः कार्ये ॥३१॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहारमैं सूता है सो अपनां स्वरूपका कार्यविषैं जागै है, बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है सो अपना आत्मकार्यविषैं सूता है ॥

भावार्थ—मुनिकै संसारी व्यवहार तौ कछू है नांही, अर जो है तौ मुनि काहेका ? पाखडी है । बहुरि धर्मका व्यवहार संघमै रहना महाव्रतादिक पालना ऐसे व्यवहारमैं भी तत्पर नांही है, सर्व प्रवृत्तिकी निवृत्ति करि ध्यान करैं हैं, सो व्यवहारमैं सूता कहिये, अर अपनें आत्मस्वरूपमैं लीन भया देखै है जाणैं है सो अपनें आत्मकार्यविषैं जागै है । बहुरि जो इस व्यवहारमैं तत्पर है सावधान है स्वरूपकी दृष्टि नांही है सो व्यवहारमै जागता कहिये ॥ ३१ ॥

आगैं यह कहै हैं जो—योगी पूर्वोक्त कथनकूं जाणि व्यवहारकूं छोडि आत्मकार्य करै है;—

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं ॥ ३२ ॥

इति ज्ञात्वा योगी व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वम् ।
ध्यायति परमात्मानं यथा भणितं जिनवरेन्द्रैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त कथनकूं जाणिकरि योगी ध्यानी मुनि है सो व्यवहार सर्व प्रकार ही छोडै है अर परमात्माकूं ध्यावै है, कैसे ध्यावै है—जैसैं जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है तैसैं ध्यावै है ॥

भावार्थ—सर्वथा सर्व व्यवहारकूं छोडनां कह्या, ताका तौ आशय यह जो—लोकव्यवहार तथा धर्मव्यवहार सर्वही छोडे ध्यान होय है । अर जैसैं जिनदेवनैं कह्या तैसैं परमात्माका ध्यान करनां सो अन्यमती

१—मु० सं० प्रतिमें 'जिणवरिंद्रेण' ऐसा पाठ है, जिसकी संस्कृत 'जिनवरेन्द्रेण' है ।

परमात्माका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा कहै है, ताका ध्यानका भी अन्यथा उपदेश करैं है, ताका निषेध है। जिनदेवनैं परमात्माका तथा ध्यानका स्वरूप कह्या सो सत्यार्थ है प्रमाणभूत है तैसैंही योगीश्वर करैं हैं, तेई निर्वाणकूं पावैं हैं ॥ ३२ ॥

आगैं जिनदेवनैं जैसैं ध्यान अध्ययनकी प्रवृत्ति कही है तैसैं उपदेश करै है;—

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सदा कुणह ॥३३॥

पंचमहाव्रतयुक्तः पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु ।
रत्नत्रयसंयुक्तः ध्यानाध्ययनं सदा कुरु ॥ ३३ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो- पाच महाव्रतकरियुक्त भया, बहुरि पांच समिति तीन गुप्ति इनिविषैं युक्त भया, बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय तिसकरि संयुक्त भया, हे मुनिजनहो ! तुम ध्यान अर अध्ययन शास्त्रका अभ्यास ताहि करो ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग ये तौ पाच महाव्रत, अर ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना ये पाच समिति, अर मन वचन कायका निग्रहरूप तीन गुप्ति, यहु तेरह प्रकार चारित्र जिनदेवनै कह्या है तिसकरि युक्त होय, अर निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कह्या है इनिकरि युक्त होय करि ध्यान अर अध्ययन करवाका उपदेश है। तहां प्रधान तौ ध्यान है ही अर तिसमैं न थंभै तब शास्त्रका अभ्यासमैं मन लगावै यही ध्यानतुल्य है जातैं शास्त्रमैं परमात्माका स्वरूपका निर्णय है सो यह ध्यानहीका अंग है॥३३

आगैं कहै है जो रत्नत्रयकूं आराधै है सो जीव आराधक ही है,

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो ।
आराहणाविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं ॥३४॥

रत्नत्रयमाराधयन् जीवः आराधकः ज्ञातव्यः ।
आराधनाविधानं तस्य फलं केवलज्ञानम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—रत्नत्रय जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ताहि आराधता जीव है सो आराधक जानना, अर जो आराधनाका विधान है ताका फल केवलज्ञान है ॥

भावार्थ–जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं आराधै है सो केवलज्ञानकूं पावै है सो जिनमार्गमैं प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

आगैं कहै हैं जो शुद्ध आत्मा है सो केवलज्ञान है अर केवलज्ञान है सो शुद्धात्मा है,—

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरसी य ।
सो जिणवरेहिं भणियो जाण तुमं केवलं णाणं ॥३५॥

सिद्धः शुद्धः आत्मा सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।
सः जिनवरैः भणितः जानीहि त्वं केवलं ज्ञानम् ॥३५॥

अर्थ—आत्मा जिनवर सर्वज्ञदेवनैं ऐसा कह्या है, कैसा है—सिद्ध, काहूकरि निपज्या नाही है स्वयंसिद्ध है, बहुरि शुद्ध है कर्ममलतैं रहित है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकालोककूं जानै है बहुरि सर्वदर्शी है सर्व लोक अलोककूं देखै है, ऐसा आत्मा है सो मुने ! तिसहीकूं तू केवलज्ञान जाणि अथवा तिस केवलज्ञानहीकूं आत्मा जाणि । आत्मामैं अर ज्ञानमैं कछू प्रदेश भेद है नाही, गुण गुणी भेद है सो गौण है । यह आराधनाका फल पूर्वैं केवलज्ञान कह्या, सो है ॥ ३५ ॥

आगैं कहै हैं जो योगी जिनदेवके मतकरि रत्नत्रयकूं आराधै है सो आत्माकूं ध्यावै है;—

रयणत्तयं पि जोइ आराहइ जो हु जिणवरमएण ।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो ॥३६॥

रत्नत्रयमपि योगी आराधयति यः स्फुटं जिनवरमतेन ।
सः ध्यायति आत्मानं परिहरति परं न सन्देहः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेवके मतकी आज्ञाकरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं निश्चयकरि आराधै है सो प्रगटपणैं आत्माहीकूं ध्यावै है जातैं रत्नत्रय आत्माका गुण है। अर गुण गुणीमैं भेद नांही, रत्नत्रयकी आराधना है सो आत्माहीका आराधन है सो ही परद्रव्यकूं छोडै है यामैं संदेह नाही ॥ ३६ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ ३६ ॥

आगैं पूछ्या जो आत्माविषैं रत्नत्रय कैसे है ताका उत्तर आचार्य कहै हैं;—

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं ।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं ॥ ३७ ॥

यत् जानाति तत् ज्ञानं यत्पश्यति तच्च दर्शनं ज्ञेयम् ।
तत् चारित्रं भणितं परिहारः पुण्यपापानाम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो जाणैं सो ज्ञान है, जो देखै सो दर्शन है, बहुरि जो पुण्य अर पापका परिहार है सो चारित्र है; ऐसैं जानना ॥

भावार्थ—इहां जाननेंवाला अर देखनेंवाला अर त्यागनेंवाला दर्शन ज्ञान चारित्रकूं कह्या सो ये तौ गुणीके गुण हैं ते कर्त्ता होय नांही यातैं जानन देखन त्यागन क्रियाका कर्त्ता आत्मा है, यातैं ये तीनूं आत्माही

हैं, गुण गुणीमैं किछू प्रदेश भेद है नांही। ऐसै रत्नत्रय है सो आत्माही है, ऐसैं जानना ॥ ३७ ॥

आगै इसही अर्थकूं अन्य प्रकार करि कहै हैं;-

तच्चरुई सम्मत्त तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं ।
चारित्तं परिहारो पयपियं जिणवरिंदेहिं ॥३८॥

तत्वरुचिः सम्यक्त्वं तत्वग्रहणं च भवति संज्ञानम् ।
चारित्रं परिहारः प्रजल्पितं जिनवरेन्द्रैः ॥३८॥

अर्थ- तत्वरुचि है सो सम्यक्त्व है, तत्त्वका ग्रहण है सो सम्यग्ज्ञान है, परिहार है सो चारित्रहै, ऐसैं जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है॥

भावार्थ—जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा बंध मोक्ष इनि तत्वनिका श्रद्धान रुचि प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि तिनिहीका जाननां सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि परद्रव्यका परिहार तिससंबंधी क्रियाकी निवृत्ति सो चारित्र है; ऐसैं जिनेश्वरदेवनैं कह्या है, इनिकूं निश्चय व्यवहार नय करि आगमकै अनुसार साधनां ॥ ३८ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनकूं प्रधानकरि कहै हैं;--

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं ।
दंसणविहीणपुरिसो न लहइ तं इच्छियं लाहं ॥३९॥

दर्शनशुद्धः शुद्धः दर्शनशुद्धः लभते निर्वाणम् ।
दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं इष्टं लाभम् ॥३९॥

अर्थ---जो पुरुष दर्शनकरि शुद्ध है सो ही शुद्ध है जातैं दर्शन शुद्ध है सो निर्वाणकूं पावै है, बहुरि जो पुरुष सम्यग्दर्शनकरि रहित है सो पुरुष ईप्सित लाभ जो मोक्ष ताहि न पावै है ॥

भावार्थ---लोकमैं प्रसिद्ध है जो कोई पुरुष कछू वस्तु चाहै ताकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न होय तो ताकी प्राप्ति न होय यातैं सम्यग्दर्शनही निर्वाणकी प्राप्ति विषैं प्रधान है ॥ ३९ ॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसा सम्यग्दर्शनका ग्रहणका उपदेश सार है ताकूं जो मानैं है सो सम्यक्त्व है;—

इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मरणए जं तु ।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि ॥ ४० ॥

इति उपदेशं सारं जरामरणहरं स्फुटं मन्यते यत्तु ।
तत् सम्यक्त्वं भणितं श्रमणानां श्रावकाणामपि ॥४०॥

अर्थ—इति कहिये ऐसा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका उपदेश है सो सार है जरा मरणका हरणेवाला है तहां याकूं जो मानैं है श्रद्धै है सो ही सम्यक्त्व कह्या है सो मुनिनिकू तथा श्रावकनिकूं सर्वहीकूं कह्या है तातैं सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्रकूं अंगीकार करौ ॥

भावार्थ—जीवके जेते भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सार हैं उत्तम हैं जीवके हित है, बहुरि तिनिमैं भी सम्यग्दर्शन प्रधान है जातैं याबिनां ज्ञान चारित्रभी मिथ्या कहावै है, तातैं सम्यग्दर्शनकूं प्रधान जांणि पहलैं अंगीकार करनां, यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सबहीकूं है ॥ ४० ॥

आगैं सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहै हैं,—

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण ।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं ॥ ४१ ॥

जीवाजीवविभक्ति योगी जानाति जिनवरमतेन ।
तत् संज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो योगी मुनि जीव अजीव पदार्थका भेद जिनवरके मत-करि जाणैं है सो सम्यग्ज्ञान सर्वदर्शी सर्वका देखनेवाला सर्वज्ञदेवनैं कह्या है सो ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थका कह्या सत्यार्थ नाहीं असत्यार्थ है, सर्वज्ञका कह्या ही सत्यार्थ है ॥

भावार्थ---सर्वज्ञदेव जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छह द्रव्य कहे हैं तिनिमैं जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप कह्या है सो अमूर्तीक है स्पर्श रस गंध वर्ण इनितैं रहित है अर पुद्गल आदि पांच अजीव कहे हैं ते अचेतन हैं जड़ हैं। तिनिमैं पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दसहित मूर्तीक है इंद्रियगोचर है, अन्य अमूर्तीक हैं, तहां आकाशादि च्यारि तौ जैसैं हैं तैसैं तिष्ठैं हैं, अर जीव पुद्गलकै अनादिसंबंध है छद्मस्थकै इंद्रियगोचर पुद्गलस्कंध हैं तिनिकूं ग्रहणकरि रागद्वेष मोहरूप परिणमै है शरीरादिकू आपा मानै है तथा इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेषरूप होय है यातै नवीन पुद्गल कर्मरूप होय बंधकूं प्राप्त होय है, यह निमित्त नैमित्तिक भाव है, ऐसैं यह जीव अज्ञानी भया संता जीव पुद्गलका भेदकूं न जानि मिथ्याज्ञानी होय है। यातैं आचार्य कहै हैं जो जिनदेवके मततैं जीव अजीवका भेद जानि सम्यग्दर्शनका स्वरूप जानना, बहुरि यह जिनदेव कह्या सो ही सत्यार्थ है प्रमाण नयकरि ऐसैं ही सिद्ध होय है तातैं जिनदेव सर्वज्ञ है सो सर्व वस्तुकूं प्रत्यक्ष देखि-करि कह्या है। अन्यमती छद्मस्थ हैं तिनिनैं अपनी बुद्धिमैं आया तैसैं कल्पना करि कह्या है सो प्रमाणसिद्ध नांही, तिनिमैं केई वेदान्ती तौ एक ब्रह्ममात्र कहैं है अन्य किछू वस्तुभूत नांही मायारूप अवस्तु है ऐसै मानैं हैं, अर केई नैयायिक वैशेषिक जीवकूं सर्वथा नित्य सर्वगत कहैं हैं जीवकै अर ज्ञानगुणकै सर्वथा भेद मानै हैं अर अन्य कार्य-मात्र हैं तिनिकूं ईश्वर करै है ऐसैं मानै हैं, बहुरि केई सांख्यमती पुरुषकूं उदासीन चैतन्यस्वरूप मानि सर्वथा अकर्त्ता मानै हैं ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मानैं हैं, केई बौद्धमती सर्व वस्तुकूं क्षणिक मानैं हैं सर्वथा अनित्य मानैं हैं तिनिमैं भी मतभेद अनेक हैं, केई विज्ञानमात्र तत्व मानैं हैं केई सर्वथा शून्य मानैं हैं कोई अन्यप्रकार मानैं हैं, बहुरि मीमांसक कर्मकाण्डमात्रही तत्व मानैं हैं जीवकूं अणुमात्र मानैं हैं तौऊ कछू परमार्थ नित्य वस्तु नाही इत्यादि मानैं हैं, बहुरि चार्वाकमती जीवकूं तत्व मानैं नाही पंचभूततैं जीवकी उत्पत्ति मानैं हैं। इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्व मानि

परस्पर विवाद करैं हैं, सो युक्तही है—वस्तुका पूर्णरूप दीखै नांही तब जैसैं अंधे हस्तीका विवाद करैं तैसैं विवादही होय, तातैं जिनदेव सर्वज्ञ है वस्तुका पूर्णरूप देख्या है सोही कह्या है सो प्रमाण नयनिकरि अनेकान्तस्वरूप सिद्ध होय है सो इनिकी चर्चा हेतुवादके जैनके न्यायशास्त्र है तिनितैं जानी जाय है; यातैं यह उपदेश है-जिनमतमैं जीवाजीवका स्वरूप सत्यार्थ कह्या है ताकूं जानैं है सो सम्यग्ज्ञान है ऐसा जांणि जिनदेवकी आज्ञा मांनि सम्यग्ज्ञानकूं अंगीकार करना, याहीतैं सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होय है, ऐसैं जाननां ॥

आगैं सम्यक्चारित्रका स्वरूप कहै हैं,—

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं ।
तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिएहिं ॥ ४२ ॥

यत् ज्ञात्वा योगी परिहारं करोति पुण्यपापानाम् ।
तत् चारित्रं भणितं अविकल्पं कर्मरहितैः ॥ ४२ ॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो तिस पूर्वोक्त जीवका भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान ताहि जानिकरि अर पुण्य तथा पाप इनि दोऊनिका परिहार करै त्यागकरै सो चारित्र घातिकर्मतैं रहित जो सर्वज्ञ देव तानैं कह्या है, कैसा है निर्विकल्प है प्रवृत्तिरूप जे क्रियाके विकल्प तिनिकरि रहित है ॥ ४२ ॥

भावार्थ–चारित्र निश्चय व्यवहार भेदकरि दोय भेदरूप है, तहां महाव्रत-समिति गुप्तिके भेदकरि कह्या है सो तौ व्यवहार है तिनिमैं प्रवृत्तिरूप क्रिया है सो शुभकर्मरूप बंध करै है अर इनि क्रियानिमैं जेता अंश निवृत्ति है ताका फल बंध नांही है, ताका फल कर्मकी एक देश निर्जरा है। अर सर्व कर्मतैं रहित अपनां आत्मस्वरूपमैं लीन होनां सो निश्चय चारित्र है ताका फल कर्मका नासही है, सो यह पुण्य पापके

परिहाररूप निर्विकल्प है, पापका तो त्याग मुनिकै है ही, अर पुण्यका त्याग ऐसैं जो—शुभ क्रियाका फल पुण्य कर्मका बंध है ताकी वांछा नांही है; बंधके नाशका उपाय निर्विकल्प निश्चय चारित्रका प्रधान उद्यम है। ऐसैं इहां निर्विकल्प पुण्य पापकरि रहित ऐसा निश्चय चारित्र कह्या है। चौदहवें गुणस्थानके अंतसमय पूर्ण चारित्र होय है, तिसतैं लगताही मोक्ष होय है ऐसा सिद्धांत है॥ ४२॥

आगैं कहै हैं जो-ऐसे रत्नत्रयसहित भया तप संयम समिति पालता शुद्धात्माकूं ध्यावता मुनि निर्वाण पावै है,—

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं॥ ४३॥

यः रत्नत्रययुक्तः करोति तपः संयतः स्वशक्त्या।
सः प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम्॥४३॥

अर्थ-जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त भया संता संयमी अपनी शक्तिसारू तप करै है सो शुद्ध आत्माकूं ध्यावता सता परमपद जो निर्वाण ताहि पावै है॥

भावार्थ-जो मुनि संयमी पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार चारित्र सोही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र सयम ताकूं अंगीकार करि अर पूर्वोक्त प्रकार निश्चय चारित्रकरि युक्त भया अपनी शक्तिसारू उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करै है सो मुनि अन्तरंग तप जो ध्यान ताकरि शुद्ध आत्माकूं एकाग्र चित्तकरि ध्यावता सन्ता निर्वाणकूं पावै है॥ ४३॥

आगैं कहै हैं जो-ध्यानी मुनि ऐसा भया परमात्माकूं ध्यावै है,—

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई॥ ४४॥

त्रिभिः त्रीन् धृत्वा नित्यं त्रिकरहितः तथा त्रिकेण परिकरितः।
द्विदोषविप्रमुक्तः परमात्मानं ध्यायते योगी ॥ ४४ ॥

अर्थ—'त्रिभि.' कहिये मन वचन कायकरि, "त्रीन्" कहिये वर्षा शीत ऊष्ण तीन कालयोग तिनिहि धरि करि, बहुरि त्रिकरहित कहिये माया मिथ्या निदान तीन शल्य तीनकरि रहित भया, तथा "त्रिकेण परिकरितः" दर्शन ज्ञान चारित्र करि मंडित भया ,बहुरि दो दोष कहिये राग द्वेष तेही भये दोष तिनिकरि रहित भया योगी ध्यानी मुनि है सो परमात्मा जो सर्वकर्मरहित शुद्ध परमात्मा ताकूं ध्यावै है ॥

भावार्थ—मन वचन कायकरि तीन काल योग धरि परमात्माकूं ध्यावै सो ऐसैं कष्टमैं दृढ रहै तब जाणिये याके ध्यानकी सिद्धि है, कष्ट आये चिगिजाय तब ध्यानकी सिद्धि काहेकी ? बहुरि कोई प्रकारकी चित्तमैं शल्य रहै तब चित्त एकाग्र होय नांही तब ध्यान कैसै होय ? तातैं शल्य रहित कह्या, बहुरि श्रद्धान ज्ञान आचरण यथार्थ न होय तब ध्यान काहेका तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र मंडित कह्या, बहुरि राग द्वेष इष्ट अनिष्ट बुद्धि रहै तब ध्यान कैसैं होय ? तातैं परमात्माका ध्यान करै सो ऐसा होय करै, यह तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसा होय सो उत्तम सुखकूं पावै है,—

मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥४५॥

मदमायाक्रोधरहितः लोभेन विवर्जितश्च यः जीवः।
निर्मलस्वभावयुक्तः सः प्राप्नोति उत्तमं सौख्यम् ॥४५॥

अर्थ—जो जीव मद माया क्रोध इनिकरि रहित होय बहुरि लोभ करि विशेषकरि रहित होय सो जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त भया उत्तम सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—लोकमैं ऐसैं है जो मद कहिये अतिमानी बहुरि माया कपट अर क्रोध इनिकरि रहित होय अर लोभकरि विशेष रहित होय सो सुख पावै है, तीव्रकषायी अति आकुलतायुक्त होय निरंतर दुखी रहै है; सो यह रीति मोक्षमार्गमैं भी जाणूं—जो क्रोध मान माया लोभ च्यार कषायतैं रहित होय है तब निर्मल भाव होय तब यथाख्यात चारित्र पाय उत्तम सुख पावै है ॥ ४५ ॥

आगैं कहै है जो विषय कषायनिमैं आसक्त है परमात्माकी भावनातैं रहित है रौद्रपरिणामी है सो जिनमतसूं पराङ्मुख है सो मोक्षके सुखनिकूं नांही पावै है,—

विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो ।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो ॥४६॥

विषयकषायैः युक्तः रुद्रः परमात्मभावरहितमनाः ।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिनमुद्रापराङ्मुखः जीवः ॥४६॥

अर्थ—जो जीव विषय कषायनिकरि युक्त है, बहुरि रुद्रपरिणामी है हिंसादिक विषयकषायादिक पापनिविषैं हर्षसहित प्रवर्त्तै है, बहुरि परमात्माकी भावनाकरि रहित है चित्त जाका ऐसा जीव जिनमुद्रातैं पराङ्मुख है सो ऐसा सिद्धिसुख जो मोक्षका सुख ताहि नांही पावै है ॥

भावार्थ—जिनमतमैं ऐसा उपदेश है जो हिंसादिक पापनितैं विरक्त अर विषय कषायनिमैं आसक्त नाहीं अर परमात्माका स्वरूप जांणि तिसकी भावनासहित जीव होय है सो मोक्ष पावै है तातैं जिनमतकी मुद्रासूं जो पराङ्मुख है ताकै काहेतैं मोक्ष होय संसारहीमैं भ्रमै है। इहां रुद्रका विशेषण किया है ताका ऐसा भी आशय है जो रुद्र ग्यारा होय हैं ते, विषय कषायनिमैं आसक्त होय, जिनमुद्रातैं भ्रष्ट होय हैं तिनकै मोक्ष न होय है, तिनिकी कथा पुराणनितैं जाननी ॥ ४६ ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनमुद्रातैं मोक्ष होय है सो यहु मुद्रा जिनि जीवनिकूं न रुचै है ते संसारमैं ही तिष्ठैं हैं,—

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठा।
सिविणे वि ण रुचइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ॥४७॥

जिनमुद्रा सिद्धिसुखं भवति नियमेन जिनवरोद्दिष्टा।
स्वप्नेऽपि न रोचते पुनः जीवाः तिष्ठंति भवगहने ॥४७॥

अर्थ—जिनमुद्रा है सो ही सिद्धिसुख है मुक्तिसुखही है, यह कारणविषैं कार्यका उपचार जाननां, जिनमुद्रा मोक्षका कारण है मोक्षसुख ताका कार्य है कैसी है जिनमुद्रा—जिन भगवाननैं जैसी कही है तैसीही है। तहां ऐसी जिनमुद्रा जो जीवकूं साक्षात् तौ दूरिही रहो स्वप्नविषैंभी कदाचित् भी न रुचै है ताका स्वप्ना आवै है तौहू अवज्ञा आवै है तौ सो जीव संसाररूप गहन वनविषैं तिष्ठै है मोक्षके सुखकूं नांही पावै है ॥

भावार्थ—जिनदेवभाषित जिनमुद्रा मोक्षका कारण है सो मोक्षरूप ही है जातैं जिनमुद्राके धारक वर्त्तमानमैंभी स्वाधीन सुखकूं भोगवैं हैं अर पीछैं मोक्षके सुख पावै हैं। अर जा जीवकूं यह न रुचै है सो मोक्ष नांही पावै है समारहीमैं रहैं हैं ॥ ४७ ॥

आगैं कहै हैं जो परमात्माकूं ध्यावै है सो योगी लोभरहित होय नवीन कर्मका आस्रव नाही करै हैं,—

परमप्पय झायंतो जोई मुच्चइ मलदलोहेण।
णादियदि णव कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ ४८ ॥

परमात्मानं ध्यायन् योगी मुच्यते मलदलोभेन।
नाद्रियते नवं कर्म निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी परमात्माकूं ध्यावता संता वर्तें है सो मलका देनहारा जो लोभकषाय ताकरि छूटिये हैं ताकैं लोभ मल न लागैं

हैं याहीतैं नवीन कर्मका आस्रव ताकै न होय यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है ॥

भावार्थ—मुनिभी होय अर परजन्मसंबंधी प्राप्तिका लोभ होय निदान करै ताकैं परमात्माका ध्यान नांही यातैं जो परमात्माका ध्यान करै ताकै इस लोक परलोकसबंधी परद्रव्यका कछू भी लोभ न होय है याहीतैं ताकै नवीनकर्मका आस्रव न होय है, यह जिनदेव कही है। यह लोभ-कषाय ऐसा है जो—दशम गुणस्थान तांई पहुंचि अव्यक्त होय भी आत्माके मल लगावै है तातैं याका काटनाही युक्त है। अथवा जहां तांई मोक्षकी चाहरूप लोभ रहै तहां ताई मोक्ष न होय तातैं लोभका अत्यन्त निषेध है ॥ ४८ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं निर्लोभी होय दृढ सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रवान होय परमात्माकूं ध्यावै सो परमपदकू पावै है,—

होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई ॥ ४९ ॥

भूत्वा दृढचरित्रः दृढसम्यक्त्वेन भावितमतिः ।
ध्यायन्नात्मानं परमपदं प्राप्नोति योगी ॥ ४९ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार योगी ध्यानी मुनि दृढसम्यक्त्वकरि भावित है मति जाकी बहुरि दृढ है चारित्र जाकै ऐसा होयकरि आत्माकूं ध्यावता संता परमपद जो परमात्मपद ताकूं पावै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप दृढ होय परीषह आये न चिगै, ऐसैं आत्माकूं ध्यावै सो परमपद पावै यह तात्पर्य है ॥ ४८ ॥

आगैं दर्शन ज्ञान चारित्रतैं निर्वाण होय है ऐसा कहते आये सो तहां दर्शन ज्ञान तो जीवका स्वरूप है ते जाणे, अर चारित्र कहा है? ऐसी आशंकाका उत्तर कहै हैं,—

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो ।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ॥ ५० ॥
चरणं भवति स्वधर्मः धर्मः सः भवति आत्मसमभावः ।
स रागरोषरहितः जीवस्य अनन्यपरिणामः ॥ ५० ॥

अर्थ—स्वधर्म कहिये आत्माका धर्म है सो चरण कहिये चारित्र है, बहुरि धर्म है सो आत्मसमभाव है सर्व जीवनिविषैं समानभाव है जो अपना धर्म है सोही सर्व जीवनिमैं है अथवा सर्व जीवनिकूं आपसमान मानना है, बहुरि जो आत्मस्वभावहीं रागद्वेषकरि रहित है काहूतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि नाहीं है ऐसा चारित्र है सो जैसैं जीवके दर्शन ज्ञान है तैसैंही अनन्य परिणाम है जीवहीका भाव है ॥

भावार्थ—चारित्र है सो ज्ञान विषैं रागद्वेषरहित निराकुलतारूप थिरता भाव है सो जीवहीका अभेदरूप परिणाम है, कछू अन्य वस्तु नांही है ॥ ५० ॥

आगैं जीवके परिणामकी स्वच्छताकूं दृष्टान्तकरि दिखावै हैं,—

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो ।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अणण्णविहो॥५१॥
यथा स्फटिकमणिः विशुद्धः परद्रव्ययुतः भवत्यन्यः सः ।
तथा रागादिवियुक्तः जीवः भवति स्फुटमन्यान्यविधः ॥५१॥

अर्थ—जैसैं स्फटिकमणि विशुद्ध है निर्मल है उज्ज्वल है सो परद्रव्य जो पीत रक्त हरित पुष्पादिक तिनिकरि युक्त भया अन्य सा दीखै पीतादिवर्णमयी दीखै, तैसैं जीव है सो विशुद्ध है स्वच्छस्वभाव है सो रागद्वेषादिक भावकरि युक्त भया संता अन्य अन्य प्रकार भया दीखै है यह प्रगट है ॥

भावार्थ—इहां ऐसा जाननां जे रागादि विकार हैं ते पुद्गलके विकार हैं अर यह जीवकै ज्ञानविषैं आय झलकै तब तिनितैं उपयुक्त भया ऐसैं जानै जो ये भाव मेरेही हैं तिनिका भेदज्ञान न होय तब जीव अन्य अन्य प्रकाररूप अनुभवमैं आवै है तहां स्फटिकमणिका दृष्टान्त है ताकै अन्यद्रव्य पुष्पादिकका डांक लागै तब अन्यसा दीखै है, ऐसैं जीवके स्वच्छभावकी विचित्रता जाननीं ॥ ५१ ॥

याहीतैं आगे कहै हैं जो जेतैं मुनिकै रागद्वेषका अंश होय है तेतैं सम्यग्दर्शनकूं धारता भी ऐसा होय है,—

देव गुरुम्मिय भत्तो साहम्मिय संजदेसु अणुरत्तो ।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होइ जोई सो ॥५२॥

देवे गुरौ च भक्तः साधर्मिके च संयतेषु अनुरक्तः ।
सम्यक्त्वमुद्वहन् ध्यानरतः भवति योगी सः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्वकूं धारता संता है अर जे तैं यथाख्यात चारित्रकूं न प्राप्त होय है तेतैं देव जो अरहंत सिद्ध अर गुरु जो शिक्षादीक्षाका देनेवाला इनि विषैं तौ भक्तियुक्त होय है इनिकी भक्ति विनय सहित होय है, बहुरि अन्य संयमी मुनि आपसमान धर्मसहित हैं तिनिविषैं अनुरक्त है अनुरागसहित होय है सो ही मुनि ध्यानविषै प्रीतिवान होय है, अर मुनि होयकरिभी देव गुरु साधर्मीनिविषैं भक्ति अनुरागसहित न होय ताकूं ध्यानकै विषैं रुचिवान न कहिये जातैं ध्यान होय ताकै ध्यानवालासूं रुचि प्रीति होय, ध्यानवाले न रुचैं तब जानिये याकूं ध्यान भी न रुचै ऐसैं जानना ॥ ५२ ॥

आगैं कहै हैं जो—ध्यान सम्यग्ज्ञानीकै होय है सो ही तप करि कर्मका क्षय करै है,—

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं ।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥५३॥

तब काहेकूं राग द्वेष होय, चारित्रमोहके उदयतैं कछू धर्मराग होय ताकूं भी रोग जाणि भला न जाणै तब अन्यसूं कैसैं राग होय, परद्रव्यसूं राग द्वेष करै सो तौ अज्ञानी है; ऐसैं जानना ॥ ५४ ॥

आगैं कहै हैं जो जैसैं परद्रव्यकै विषैं रागभाव होय है तैसैं मोक्षकै निमित्तभी राग होय तौ सो भी राग आस्रवका कारण है, सो भी ज्ञानी न करै,—

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि ।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीओ ॥ ५५ ॥

आस्रवहेतुश्च तथा भावः मोक्षस्य कारणं भवति ।
सः तेन तु अज्ञानी आत्मस्वभावात्तु विपरीतः ॥५५॥

अर्थ—जैसैं परद्रव्यविषैं राग कर्मबंधका कारण पूर्वैं कह्या तैसाही राग भाव जो मोक्षनिमित्तभी होय तौ आस्रवहीका कारण है कर्मका बंधही करै है तिस कारणकरि जो मोक्षकू परद्रव्यकी ज्यों इष्ट मानि तैसैंही रागभाव करै तौ सो जीव मुनिभी अज्ञानी है जातैं कैसा है सो आत्मस्वभावतैं विपरीत है, आत्मस्वभावकू जान्या नाही ॥

भावार्थ—मोक्ष तौ सर्व कर्मनितै रहित अपनांही स्वभाव है आपकूं सर्व कर्म रहित होनां, तातैं ये भी रागभाव ज्ञानीकै न होय, यद्यपि चारित्र मोहका उदय होय तौ तिस रागकू बंधका कारण जाणि रोगवत् छोड्या चाहै तौ ज्ञानी है ही, अर इस रागभावकूं भला जांणि आप करै तौ अज्ञानी है आत्माका स्वभाव सर्व रागादिकतैं रहित है ताकू यानैं न जान्या; ऐसैं रागभावकूं मोक्षका कारण अर भला जानि करै ताका निषेध जाननां ॥ ५५ ॥

आगैं कहै हैं जो—कर्मही मात्र सिद्धि मानै है, तानैं आत्मस्वभाव जान्यां नांही सो अज्ञानी है जिनमततैं प्रतिकूल है,—

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी, जिणसासणदूसगो भणिदो ॥५६॥

यः कर्मजातमतिकः स्वभावज्ञानस्य खंडदूषणकरः।
सः तेन तु अज्ञानी जिनशासनदूषकः भणितः ॥५६॥

अर्थ—जो कर्महीके विषै उपजै है बुद्धि जाकै ऐसा पुरुष है सो स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान ताकूं खंडरूप दूषणका करनेवाला है, इन्द्रियज्ञान खंडखंडरूप है अपने अपने विषयकू जानैं है तिसमात्रही ज्ञानकूं मानैं है तिस कारणकरि ऐसैं माननेवाला अज्ञानी है जिनमतका दूषण करै है ॥

भावार्थ—मीमासकमती कर्मवादी हैं सर्वज्ञकूं मानैं नांही, इन्द्रियज्ञानमात्रही ज्ञानकूं माने हैं, केवलज्ञानकूं मानैं नांही, ताका इहां निषेध किया है जातैं जिनमतमैं आत्माका स्वभाव सर्वका जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कह्या है सो कर्मके निमित्ततैं आच्छादित होय इन्द्रियनिकै द्वारै क्षयोपशमके निमित्ततैं खंडरूप भया खंड खंड विषयनिकूं जानैं है; कर्मका नाश भये केवलज्ञान प्रगट होय तब आत्मा सर्वज्ञ होय है ऐसैं मीमासक मती मानैं नाही सो अज्ञानी है जिनमततैं प्रतिकूल है कर्ममात्रहीक विषैं जाकी बुद्धि गत होय रही है, ऐसैं कोऊ और भी मानैं सो ऐसा ही जानना ॥ ५६ ॥

आगै कहै हैं जो ज्ञान चारित्र रहित होय अर तप सम्यक्त्व रहित होय अर अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न होय तौ ऐसैं केवल लिंग भेषमात्रही करि कहा सुख है? किछू भी नांही;—

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं ॥५७॥

ज्ञानं चारित्रहीनं दर्शनहीनं तपोभिः संयुक्तम् ।
अन्येषु भावरहितं लिंगग्रहणेन किं सौख्यम् ॥५७॥

अर्थ—जहां ज्ञान तौ चारित्ररहित है, बहुरि जहां तपकरि तौ युक्त है अर दर्शन जो सम्यक्त्व ताकरि रहित है, बहुरि अन्य भी आवश्यक आदि क्रिया हैं तिनि विषैं शुद्धभाव नांहीं है, ऐसैं लिंग जो भेष ताके ग्रहणविषैं कहा सुख है ॥

भावार्थ—कोई मुनि भेषमात्र तौ मुनि भयो अर शास्त्र भी पढैं हैं ताकूं कहै हैं जो—शास्त्र पढि ज्ञान तौ किया परन्तु निश्चय चारित्र जो शुद्ध आत्माका अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष न किया अर तपका क्लेश बहुत किया अर सम्यक्त्व भावना न भई अर आवश्यक आदि बाह्य क्रियाकरी अर भाव शुद्ध न लगाया तौ ऐसै बाह्य भेषमात्रमैं तौ क्लेश ही भया कुछ शान्तभावरूप सुख तौ न भया अर यहु भेष परलोकके सुखके विषैं भी कारण न भया, तातैं सम्यक्त्वपूर्वक भेष धारना श्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

आगैं सांख्यमती आदिका आशयका निषेध करै हैं;

अचेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी ।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ॥५८॥

अचेतनेपि चेतनं यः मन्यते सः भवति अज्ञानी ।
सः पुनः ज्ञानी भणितः यः मन्यते चेतने चेतनम् ॥५८॥

अर्थ—जो अचेतनविषैं चेतनकूं मानैं है सो अज्ञानी है बहुरि जो चेतनविषैं ही चेतनकूं मानै है सो ज्ञानी कह्या है ॥

भावार्थ—सांख्यमती ऐसैं कहै है जो पुरुष तौ उदासीन चेतनास्वरूप नित्य है अर यह ज्ञान है सो प्रधान धर्म है, ताके मतमैं सो पुरुषकूं उदासीन चेतनास्वरूप मान्यां सो ज्ञान विना तौ जडही भया, ज्ञानविना

चेतन काहेका ? बहुरि ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मान्या अर प्रधानकूं जड मान्यां तब अचेतनविषैं चेतना मानी तब अज्ञानीही भया। बहुरि नैयायिक वैशेषिकमती गुण गुणीकै सर्वथा भेद मानैं है तब चेतना गुण जीवतैं न्यारा मान्या तब जीव तौ अचेतनही रह्या ऐसैं अचेतनविषैं चेतनपणा मान्या। बहुरि भूतवादी चार्वाक भूत पृथ्वी आदिकतैं चेतनता उपजी मानै है तहां भूत तौ जड है तिनिविषै चेतनता कैसैं उपजै। इत्यादिक अन्य भी केई मानैं हैं ते सारे अज्ञानी हैं तातैं चेतनविषैं ही चेतन मानै सो ज्ञानी है, यह जिनमत है ॥ ५८ ॥

आगैं कहै हैं जो तपरहित तौ ज्ञान अर ज्ञानरहित तप ये दोऊ ही अकार्य हैं दोऊ सयुक्त भयेही निर्वाण है,—

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ ५९ ॥

तपोरहितं यत् ज्ञानं ज्ञानवियुक्तं तपः अपि अकृतार्थम्।
तस्मात् ज्ञानतपसा संयुक्तः लभते निर्वाणम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो ज्ञान तपरहित है बहुरि जो तप है सो भी ज्ञानरहित है तौ दोऊही आकार्य हैं तातैं ज्ञान तपकरि संयुक्त है सो निर्वाणकूं पावै है॥

भावार्थ—अन्यमती सांख्यादिक कोई तौ ज्ञानचर्चा तौ बहुत करै है अर कहै है– ज्ञानहीतैं मुक्ति है अर तप करै नाही, विषयकषायनिकूं प्रधानका धर्म मांनि स्वच्छंद प्रवर्त्तैं। बहुरि केई ज्ञानकूं निष्फल मानि अर त कूं यथार्थ जानैं नांही अर तप क्लेशादिकहीतैं सिद्धि मानि ताके करनेमैं तत्पर रहै। तहा आचार्य कहै हैं–ये दोऊही अज्ञानी हैं जे ज्ञानसहित तप करै हैं ते ज्ञानी हैं वैंही मोक्ष पावैं हैं, यह अनेकांतस्वरूप जिनमतका उपदेश है ॥ ५९ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृष्टान्ततैं दृढ करै हैं,—

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं ।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि ॥ ६० ॥

ध्रुवसिद्धिस्तीर्थंकरः चतुर्ज्ञानयुतः करोति तपश्चरणम् ।
ज्ञात्वा ध्रुवं कुर्यात् तपश्चरणं ज्ञानयुक्तः अपि ॥ ६० ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं-देखो जाकै नियमकरि मोक्ष होनी है अर च्यार ज्ञान मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इनिकरि युक्त है ऐसा तीर्थंकर है सो भी तपश्चरण करै है, ऐसैं निश्चय करि जानि ज्ञानकरि युक्त होतैं भी तप करना योग्य है ॥

भावार्थ—तीर्थंकर मति श्रुति अवधि इनि तीन ज्ञान सहित तौ जनमै है बहुरि दीक्षा लेतैंही मन.पर्यय ज्ञान उपजै है बहुरि मोक्ष जाकै नियमकरि होनी है तोऊ तप करै हैं, तातैं ऐसा जांनि ज्ञान होतैंभी तप करनेविषैं तत्पर होनां, ज्ञानमात्रहीतैं मुक्ति न माननीं ॥ ६० ॥

आगैं जो बाह्यलिंगकरि सहित है अर अभ्यंतरलिंगरहित है सो स्वरूपाचरण चारित्रतैं भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका विनाश करनेवाला है, ऐसा सामान्यकरि कहै हैं;—

बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो ।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू ॥ ६१ ॥

बाह्यलिंगेन युतः अभ्यंतरलिंगरहितपरिकर्म्मा ।
सः स्वकचारित्रभ्रष्टः मोक्षपथविनाशकः साधुः ॥ ६१ ॥

अर्थ—जो जीव बाह्यलिंग भेषकरि संयुक्त है, अर अभ्यन्तरलिंग जो परद्रव्यतैं सर्व रागादिक ममत्वभावतैं रहित आत्माका अनुभवन ताकरि रहित है परिकर्म कहिये परिवर्त्तन जामैं ऐसा मुनि है सो स्वकचारित्र कहिये अपनां आत्मस्वरूपका आचरण जो चरित्र ताकरि भ्रष्ट है, याहीतैं मोक्षमार्गका विनाश करनेंवाला है ।

भावार्थ—यह संक्षेपकरि कह्या जानूं जो बाह्यलिंगसंयुक्त है अर अभ्यंतर कहिये भावलिंग रहित है सो स्वरूपाचरण चारित्रतें भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका नाश करनेंवाला है ॥ ६१ ॥

आगैं कहै हैं—जो सुखकरि भाया ज्ञान है सो दुःख आये नष्ट होय है तातैं तपश्चरणसहित ज्ञानकूं भावनां;—

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि ।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए ॥ ६२ ॥

सुखेन भावितं ज्ञानं दुःखे जाते विनश्यति ।
तस्मात् यथाबलं योगी आत्मानं दुःखैः भावयेत् ॥६२॥

अर्थ-जो सुखकरि भाया हुआ ज्ञान है सो उपसर्ग परीषहादिकरि दुःखकूं उपजेतैं नष्ट होजाय है तातैं यह उपदेश है जो योगी ध्यानी मुनि है सो तपश्चरणादिके कष्ट दुःखसहित आत्माकूं भावै ॥

भावार्थ—तपश्चरणका कष्ट अंगीकार करि ज्ञानकूं भावै तौ परीषह आये ज्ञानभावनातैं चिगै नांहीं तातैं शक्तिसारू दुःख सहित ज्ञानकूं भावनां, सुखहीमैं भावै दुःख आये व्याकुल होय तब ज्ञानभावना न रहै; तातैं यह उपदेश है ॥ ६२ ॥

आगैं कहै हैं जो—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां;—

आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण ।
झायव्वो णियअप्पा णाऊणं गुरुपसाएण ॥ ६३ ॥

आहारासननिद्राजयं च कृत्वा जिनवरमतेन ।
ध्यातव्यः निजात्मा ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥ ६३ ॥

अर्थ—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि अर जिनवरके मत करि गुरुके प्रसादकरि जानि निज आत्माकूं ध्यावणां ॥

भावार्थ—आहार आसन निद्राकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां तौ अन्यमतीभी कहैं है परन्तु तिनिकै यथार्थ विधान नांहीं तातैं आचार्य कहै हैं कि जैसैं जिनमतमैं कह्या है तिस विधानकूं गुरुनिके प्रसादकरि जानि अर ध्याये सफल है, जैसैं जैनसिद्धान्तमैं आत्माका स्वरूप तथा ध्यानका स्वरूप अर आहार आसन निद्रा इनिके जीतनेंका विधान कह्या है तैसैं जानिकरि तिनिमैं प्रवर्त्तना ॥ ६३ ॥

आगैं आत्माकूं ध्यावनां सो आत्मा कैसा है, सो कहै हैं,—

अप्पा चारित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण ॥ ६४ ॥

आत्मा चारित्रवान् दर्शनज्ञानेन संयुतः आत्मा।
सः ध्यातव्यः नित्यं ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥ ६४ ॥

अर्थ—आत्मा है सो चारित्रवान् है बहुरि दर्शन ज्ञानकरि सहित है ऐसा आत्मा गुरुके प्रसादकरि जानि ध्यावना ॥

भावार्थ—आत्माका रूप दर्शनचारित्रमयी है सो याका रूप जैनगुरुनिके प्रसादकरि जान्या जाय है। अन्यमती अपनी बुद्धिकल्पित जैसैं तैसैं मानि ध्यावैं हैं तिनिकै यथार्थ सिद्धि नांहीं; तातैं जैनमतकै अनुसार ध्यावना ऐसा उपदेश है ॥ ६४ ॥

आगैं कहैं हैं—आत्माका जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होना ये उत्तरोत्तर दुःखतैं पाइये है,—

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥ ६५ ॥

दुःखेन ज्ञायते आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा भावना दुःखम्।
भावितस्वभावपुरुषः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—प्रथम तौ आत्माकूं जानिये है सो दुःखतैं जानिये है; बहुरि आत्माकूं जानिकरि भी भावना करनां फेरि फेरि याहीका अनुभव करनां दुःखतैं होय है, बहुरि कदाचित् भावनां भी कोई प्रकार होय तौ भायी है जिनभावना जांनै ऐसा पुरुष विषयनिविषैं विरक्त बड़े दुःखतैं होय है॥

भावार्थ—आत्माका जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होना उत्तरोत्तर यह योग मिलना बहुत दुर्लभ है, यातैं यह उपदेश है जो—योग मिले प्रमादी न होनां॥ ६५॥

आगैं कहैं हैं जेतैं विषयनिमैं यह मनुष्य प्रवर्त्तैं है तेतैं आत्मज्ञान न होय है;—

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं॥ ६६॥

तावन्न ज्ञायते आत्मा विषयेषु नरः प्रवर्त्तते यावत्।
विषये विरक्तचित्तः योगी जानाति आत्मानम्॥ ६६॥

अर्थ—जेतैं यह मनुष्य इन्द्रियनिके विषयनिविषैं प्रवर्त्तैं है तेतैं आत्माकूं नांही जानैं है तातैं योगी ध्यानी मुनि है सो विषयनिविषैं विरक्त है चित्त जाका ऐसा भया संता आत्माकूं जानैं है॥

भावार्थ—जीवका स्वभावके उपयोगकी ऐसी स्वच्छता है जो जिस ज्ञेय पदार्थसूं उपयुक्त होय तैसाही हो जाय है; तातैं आचार्य कहै हैं जो—जेतैं विषयनिमैं चित्त रहै तेतैं तिनिरूप रहै है आत्माका अनुभव नाही होय, तातैं योगी मुनि ऐसा विचारि विषयनितैं विरक्त होय आत्मामैं उपयोग लगावै तब आत्माकूं जानै अनुभवै-तातैं विषयनितैं विरक्त होनां यह उपदेश है॥ ६६॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करै हैं जो आत्माकूं जानि करि भी भावना बिना संसारहीमैं रहै है,—

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा ।
हिंडंति चाउरंगं विसयेसु विमोहिया मूढा ॥ ६७ ॥

आत्मानं ज्ञात्वा नराः केचित् सद्भावभावप्रभ्रष्टाः ।
हिण्डन्ते चातुरंगं विषयेषु विमोहिताः मूढाः ॥ ६७ ॥

अर्थ—केई मनुष्य आत्माकूं जानिकरि भी अपनें स्वभावकी भावनातैं अत्यंत भ्रष्ट भये विषयनिविषैं मोहित होय करि अज्ञानी मूर्ख च्यार गति रूप संसारविषैं भ्रमैं है ॥ ६७ ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या था जो आत्माकूं जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होनां ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाइये है, तहां विषयनिमैं लग्या प्रथम तौ आत्माकूं जानैं नांही ऐसैं कह्या, अब इहां ऐसैं कह्या जो आत्माकूं जानिकरिभी विषयनिकै वशीभूत भया भावना न करै तौ संसारहीमैं भ्रमै है; तातैं आत्माकूं जानि विषयनितैं विरक्त होना यह उपदेश है ॥ ६७ ॥

आगैं कहै हैं—जो विषयनितैं विरक्त होय आत्माकूं जानि करि भावै हैं ते संसारकूं छोडैं हैं—

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया ।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ६८ ॥

ये पुनः विषयविरक्ताः आत्मानं ज्ञात्वा भावनासहिताः ।
त्यजन्ति चातुरंगं तपोगुणयुक्ताः न संदेहः ॥ ६८ ॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जे पुरुष मुनि विषयनितैं विरक्त होयकरि आत्माकूं जांनि भावै हैं बारवार भावनाकरि अनुभवैं हैं ते तप कहिये बारह प्रकार तप अर मूलगुण उत्तरगुणनिकरि युक्त भये संसारकूं छोडैं हैं, मोक्ष पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयनितैं विरक्त होय आत्माकूं जानि भावना करनीं यातैं संसारतैं छूटि मोक्ष पावो, यह उपदेश है ॥ ६८ ॥

आगैं कहै हैं जो परद्रव्यविषैं लेशमात्रभी राग होय तौ सो पुरुष अज्ञानी है, अपनां स्वरूप जान्यां नाही;

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो ।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ॥ ६९ ॥

परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रतिर्भवति मोहात् ।
सः मूढः अज्ञानी आत्मस्वभावात् विपरीतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकै परद्रव्यविषैं परमाणुप्रमाणभी लेशमात्र मोहतैं रति कहिये राग प्रीति होय तौ सो पुरुष मूढ है, अज्ञानी है आत्मस्वभावतैं विपरीत है ॥

भावार्थ—भेदविज्ञान भये पीछैं जीव अजीवकूं न्यारे जानैं तब परद्रव्यकूं अपना न जानैं तब तिसतैं राग भी न होय, अर जो राग होय तौ जानिये—यानैं आपा परका भेद जान्यां नांही, अज्ञानी है, आत्मस्वभावतैं प्रतिकूल है, अर ज्ञानी भये पीछैं चारित्रमोहका उदय रहै जेतैं कछूक राग रहै है ताकूं कर्मजन्य अपराध मानै है, तिस रागतैं राग नांही है तातैं विरक्त ही है तातैं ज्ञानी परद्रव्यतैं रागी न कहिये; ऐसैं जाननां ॥ ६९ ॥

आगैं इस अर्थकूं संक्षेपकरि कहै हैं;——

अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं ।
होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥ ७० ॥

आत्मानं ध्यायतां दर्शनशुद्धीनां दृढचारित्राणाम् ।
भवति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥ ७० ॥

अर्थ—जे पूर्वोक्त प्रकार विषयनिसूं विरक्त है चित्त जिनिका, बहुरि आत्माकूं ध्यायते सते वर्तैं हैं, बहुरि बाह्य अभ्यंतर दर्शनकी शुद्धता

जिनिकै है, बहुरि दृढ चारित्र जिनिकै है, तिनिकै निश्चयकरि निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—पूर्वै कह्या जो विषयनिसूं विरक्त होय आत्माका स्वरूप जानि जे आत्माकी भावना करैं हैं ते संसारतैं छूटैं है, तिसही अर्थकूं संक्षेपकरि कह्या है—जो इंद्रियनिके विषयनिसूं विरक्त होय बाह्य अभ्यंतर दर्शनकी शुद्धताकरि दृढ चारित्र पालै हैं तिनिकै नियमकरि निर्वाणकी प्राप्ति होय है, इन्द्रियनिके विषयनिविषैं आसक्तता है सो सर्व अनर्थका मूल है तातैं इनितैं विरक्त भये उपयोग आत्मामै लागै जब कार्यसिद्धि होय है ॥ ७० ॥

आगैं कहै हैं जो परद्रव्यविषैं राग है सो संसारका कारण है तातैं योगीश्वर आत्माविषैं भावना करैं हैं,—

जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं ।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणा ॥७१॥

येन रागः परे द्रव्ये संसारस्य हि कारणम् ।
तेनापि योगी नित्यं कुर्यात् आत्मनि स्वभावनाम् ॥७१॥

अर्थ—जा कारणकरि परद्रव्यविषैं राग है सो संसारहीका कारण है तिस कारणही करि योगीश्वर मुनि हैं ते नित्य आत्माहीविषैं भावना करै हैं ॥

भावार्थ—कोई ऐसी आशंका करै जो—परद्रव्यविषैं राग करे कहा होय है ? परद्रव्य है सो पर है ही, अपनैं राग जिसकाल भया तिसकाल है; पीछैं मिटि जाय है ताकूं उपदेश किया है—परद्रव्यसूं राग किये परद्रव्य अपनीं लार लागै है यह प्रसिद्ध है बहुरि अपनै रागका संस्कार दृढ होय है तब परलोक ताईं भी चल्या जाय है यह तौ युक्ति सिद्ध है, अर जिनागममैं रागतैं कर्मका बंध कह्या है तिसका

उदय अन्य जन्मकूं कारण है ऐसैं परद्रव्यविषैं रागतैं संसार होय है; तातैं योगीश्वर मुनि परद्रव्यतैं राग छोडि आत्माविषैं निरन्तर भावना राखै हैं ॥ ७१ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसे समभावतै चारित्र होय है;—

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य ।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ॥७२॥

निंदायां च प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च ।
शत्रूणां चैव बंधूनां चारित्रं समभावतः ॥७२॥

अर्थ—निंदाविषैं बहुरि प्रशंसाविषै बहुरि दुःखविषैं बहुरि सुखविषैं बहुरि शत्रूनिविषै बहुरि बंधु मित्रनिविषैं समभाव जो समतापरिणाम रागद्वेषतैं रहितपणा, ऐसे भावतैं चारित्र होय है ॥

भावार्थ—चारित्रका स्वरूप यहु कह्या है जो आत्माका स्वभाव है सो कर्मके निमित्ततैं ज्ञानविषैं परद्रव्यतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि होय है, तिस इष्ट अनिष्ट बुद्धिका अभावतैं ज्ञानहीमैं उपयोग लागैं ताकूं शुद्धोपयोग कहिये है सो ही चारित्र है, सो यह होय जहां निन्दा प्रशसा दुःख सुख शत्रु मित्रविषैं समान बुद्धि होय है, निन्दा प्रशसाका द्विधाभाव मोहकर्मका उदयजन्य है, याका अभाव सो ही शुद्धोपयोगरूप चारित्र है ॥ ७२ ॥

आगैं कहै हैं—जो केई मूर्ख ऐसैं कहै हैं जो अबार पचमकाल है सो आत्मध्यानका काल नाही, तिनिका निषेध करै हैं,—

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्टा ।
केई जंपंति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स ॥ ७३ ॥

चर्यावृताः व्रतसमितिवर्जिताः शुद्धभावप्रभ्रष्टाः ।
केचित् जल्पंति नराः न स्फुटं कालः ध्यानयोगस्य ॥७३॥

अर्थ—जो केई नर कहिये मनुष्य ऐसे हैं जो चर्या कहिये आचार क्रिया सो है आवृत जिनकै चारित्र मोहका उदय प्रबल है ताकरि चर्या प्रकट न होय है याहीतैं व्रतसमितिकरि रहित हैं वहुरि मिथ्या अभिप्राय करि शुद्धभावतैं अत्यंत भ्रष्ट हैं, ते ऐसैं कहैं हैं जो—अबार पंचम काल है सो यहु काल प्रगट ध्यान योगका नांही ॥ ७३ ॥

ते प्राणी कैसे हैं सो आगैं कहै है;—

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को ।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥७४॥

सम्यक्त्वज्ञानरहितः अभव्यजीवः स्फुटं मोक्षपरिमुक्तः ।
संसारसुखे सुरतः न स्फुटं कालः भणति ध्यानस्य॥७४॥

अर्थ—पूर्वोक्त ध्यानका अभाव कहनेंवाला जीव कैसा है सम्यक्त्व अर ज्ञानकरि रहित है अभव्य है याहीतैं मोक्षकरि रहित है, अर संसारके इंद्रिय सुख है तिनिहीकूं भले जांनि तिनिमैं रत है, आसक्त है, यातै कहै है—जो अबार ध्यानका काल नाही ॥

भावार्थ—जाकूं इंद्रियनिके सुखही प्रिय लागैं है अर जीवाजीव पदार्थका श्रद्धान ज्ञानतैं रहित है, सो ऐसैं कहै है जो अबार ध्यानका काल नांही। यातैं जानिये है—ऐसैं कहनेवाला अभव्य है याकै मोक्ष न होयगी ॥ ७४ ॥

फेरि कहै हैं जो अबार ध्यानका काल न कहै है तानैं पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्तिका स्वरूप जान्यां नांही,—

पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥७५॥

पंचसु महाव्रतेषु च पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु ।
यः मूढः अज्ञानी न स्फुटं कालः भणति ध्यानस्य ॥७५॥

अर्थ—जो पाच महाव्रत पांचसमिति तीन गुप्ति इनि विषैं मूढ है अज्ञानी है इनिका स्वरूप नाही जानैं है अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतैं इनिकूं पालि न सकै है, सो ऐसैं कहै हैं जो अवार ध्यानका काल नांही है ॥ ७५ ॥

आगैं कहै हैं जो अवार इस पंचमकालमैं धर्मध्यान होय है, यह न मानैं है सो अज्ञानी है,

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स ।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६

भरते दुःषमकाले धर्मध्यानं भवति साधोः ।
तदात्मस्वभावस्थिते न हि मन्यते सोऽपि अज्ञानी ॥७६॥

अर्थ—इस भरतक्षेत्रविषैं दुःषमकाल जो पंचमकाल ताविषैं साधु मुनिकै धर्मध्यान होय है सो यह धर्मध्यान आत्मस्वभावके विषैं स्थित हैं तिस मुनिकै होय है; यह न मानैं सो अज्ञानी है जाकूं धर्मध्यानका स्वरूपका ज्ञान नाही ॥

भावार्थ—जिनसूत्रमैं इस भरतक्षेत्र पंचमकालमैं आत्मभावनाविषै स्थित मुनिकै धर्मध्यान कह्या है, जो यह न मानै सो अज्ञानी है, जाकूं धर्मध्यानके स्वरूपका ज्ञान नाहीं ॥ ७६ ॥

आगैं कहैं हैं-जो अवार कालमैं भी रत्नत्रयका धारी मुनि होय सो स्वर्गविषैं लौकान्तिकपणा इन्द्रपणां पाय तहांतैं चय मोक्ष जाय है, ऐसैं जिनसूत्रमैं कह्या है;—

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं ।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥

अद्य अपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभंते इन्द्रत्वम् ।
लौकान्तिकदेवत्वं ततः च्युत्वा निर्वृतिं यांति ॥ ७७ ॥

अर्थ—अबार इस पंचमकालमैंभी जे मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्धकरि सयुक्त होय हैं ते आत्माकूं ध्यायकरि इंद्रपणा पावैं हैं तथा लौकान्तिकदेवपणां पावैं हैं, बहुरि तहातैं चय करि निर्वाणकू प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—कोई कहै है जो अबार इस पंचमकालमैं जिनसूत्रमैं मोक्ष होनां कह्या नाहीं तातैं ध्यानका करनां तौ निष्फल खेद है, ताकूं कहै हैं रे भाई ! मोक्ष जानो निषेध्यो है अर शुक्लध्यान निषेध्यो है; धर्मध्यान तौ निषेध्या नांहीं अबार जे मुनि रत्नत्रयकरि शुद्ध भये धर्मध्यानमैं लीन होय आत्माकूं ध्यावैं हैं ते मुनि स्वर्गमैं इन्द्रपणा पावैं हैं अथवा लौकान्तिक-देव एकाभवतारी है तिनिमैं जाय उपजै हैं तहांतैं चयकरि मनुष्य होय मोक्ष पावैं हैं। ऐसै धर्मध्यानतैं परंपरा मोक्ष होय तब सर्वथा निषेध काहेकूं कीजिये, जे निषेध करैं ते अज्ञानी मिथ्यादृष्टी है तिनिकू विषय-कषायनिमैं स्वच्छन्द रहनां है तातैं ऐसैं कहै हैं ॥ ७७ ॥

आगैं कहै हैं जो अबार कालमैं ध्यानका अभाव मांनि अर मुनि लिंग पहलैं ग्रहण किया तिसकू गौणकरि पापमैं प्रवर्त्तै है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं,—

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं ।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥

ये पापमोहितमतयः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम् ।
पापं कुर्वन्ति पापाः ते त्यक्त्वा मोक्षमार्गे ॥ ७८ ॥

अर्थ—जे पापकर्मकरि मोहित है बुद्धि जिनिकी ऐसे हैं ते जिनव-रेन्द्र तीर्थंकरका लिंग ग्रहण करि भी पाप करैं हैं ते पापी मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ॥

भावार्थ—जे पहलैं निर्ग्रंथ लिंग धार्‍या पीछैं ऐसी पाप बुद्धि उपजी-जो अबार ध्यानका तौ काल नांही तातैं काहेकूं प्रयास करैं, ऐसैं विचारि अर पापमैं प्रवर्त्तनैं लगिजाय हैं, ते पापी हैं, तिनिकै मोक्षमार्ग नांही ॥ ७२ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ते कैसे है;—

जे पंचचेलसत्ता ग्रंथग्गाहीय जायणासीला।

आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७९॥

ये पंचचेलसक्ताः ग्रंथग्राहिणः याचनाशीलाः।

अधः कर्मणि रताः ते त्यक्ताः मोक्षमार्गे ॥७९॥

अर्थ—पंच प्रकारके चेल कहिये वस्त्र तिनिविषैं आसक्त हैं; अंडज, कर्पासज, वल्कल, चर्मज, रोमज ऐसैं पंच प्रकार वस्त्रमैं सूं कोई एक वस्त्रकूं ग्रहण करैं हैं, बहुरि ग्रंथग्राही कहिये परिग्रहके ग्रहण करनेवाले हैं, बहुरि याचनाशील कहिये याचना मांगनेकाही जिनिका स्वभाव है, बहुरि अध कर्म जो पापकर्म ताविषैं रत हैं सदोप आहार करैं हैं ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ॥

भावार्थ–इहा आशय ऐसा है जो पहलैं तौ निर्ग्रंथ दिगंबर मुनि भये थे पाछैं कालदोष विचारि चारित्र पालनेंकूं असमर्थ होय निर्ग्रन्थ लिंगतैं भ्रष्ट होय वस्त्रादिक अगीकार किया.परिग्रह राखनें लगे याचना करने लगे अधः-कर्म औद्देशिक आहार करनेलगे तिनिका निषेध है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं। पहलैं तौ भद्रबाहुस्वामी निर्ग्रंथ थे। पीछैं दुर्भिक्षकालमैं भ्रष्ट होय अर्द्ध-फालक कहावै थे पीछैं तिनिमैं श्वेतांबर भये तिनिमैं तिनिनैं तिस भेषके पोखनेकूं सूत्र बनाये तिनिमैं केई कल्पित आचरण तथा तिसकी साधक कथा लिखी। बहुरि इनि सिवाय अन्य भी केई भेष बदले, ऐसैं काल दोषतैं भ्रष्टनिका संप्रदाय प्रवर्त्तैं है सो यह मोक्षमार्ग नांही है, ऐसा

जनाया है। यातैं इनि भ्रष्टनिकूं देखि ऐसा ही मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना ॥ ७९ ॥

आगें कहै हैं जो मोक्षमार्गी तौ ऐसे मुनि हैं;—

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीषहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८०॥

निर्ग्रंथाः मोहमुक्ताः द्वाविंशतिपरीषहाः जितकषायाः।
पापरंभविमुक्ताः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥ ८० ॥

अर्थ—जे मुनि निर्ग्रंथ हैं परिग्रहकरि रहित हैं, बहुरि मोह करि रहित हैं काहू परद्रव्यसू ममत्वभाव जिनिकै नांही है, बहुरि बाईस परीषहनिका सहना जिनिकै पाइये है, बहुरि जीते हैं क्रोधादि कषाय जिनिनैं, बहुरि पापारंभकरि रहित हैं गृहस्थके करनेका आरंभादिक पाप है तिसमैं नाहीं प्रवर्त्तै हैं, ऐसे हैं ते मुनि मोक्षमार्गमैं ग्रहण किये हैं माने हैं ॥

भावार्थ—मुनि हैं ते लौकिक कष्टनितैं रहित हैं जैसा जिनेश्वर मोक्ष मार्ग बाह्य अभ्यंतर परिग्रहतैं रहित नग्न दिगंबररूप कह्या है तैसेमैं प्रवर्त्तै हैं ते ही मोक्षमार्गी हैं, अन्य मोक्षमार्गी नाहीं हैं ॥ ८० ॥

आगैं फेरि मोक्षमार्गी की प्रवृत्ति कहैं है,-

उद्धद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इयभावणाए जोई पावंति हु सासयं ठाणं ॥ ८१ ॥

उर्ध्वाधोमध्यलोके केचित् मम न अहकमेकाकी।
इति भावनया योगिनः प्राप्नुवंति स्फुटं शाश्वतं स्थानं ॥

अर्थ—मुनि ऐसी भावना करै—उर्ध्वलोक मध्यलोक अधोलोक इनि तीनूं लोकमैं मेरा कोई भी नांही है, मैं एकाकी आत्म हूं, ऐसी भावना करि योगी मुनि प्रगटपणैं शाश्वता सुख है ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मुनि ऐसी भावना करै जो त्रिलोकमैं जीव एकाकी है याका संबंधी दूजा कोई नांही है, ये परमार्थरूप एकत्व भावना है सो जा मुनिकै ऐसी भावना निरन्तर रहै है सो ही मोक्षमार्गी है. जो भेष लेकरि भी लौकिकजननिसूं लाल पाल राखै है सो मोक्षमार्गी नांही ॥८१

आगैं फेरि कहै हैं;-

देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८२॥

देवगुरूणां भक्ताः निर्वेदपरंपरां विचिन्तयन्तः ।
ध्यानरताः सुचरित्राः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥८२॥

अर्थ—जे मुनि देव गुरुनिके भक्त हैं बहुरि निर्वेद कहिये ससार देह भोगतैं विरागताकी परपराकूं चिंतवन करैं है, बहुरि ध्यानके विषै रत हैं रक्त हैं तत्पर है बहुरि भला है चरित्र जिनिकै, ते मोक्षमार्गविषैं ग्रहण किये है ॥

भावार्थ—जिनिमैं मोक्षमार्ग पाया ऐसा अरहंत सर्वज्ञ वीतराग देव अर तिसके अनुसारी बडे मुनि दीक्षा शिक्षा देनेवाले गुरु तिनिकी तौ भक्तियुक्त होय, बहुरि ससार देह भोगसूं विरक्त होय मुनि भये तैसैंही जिनकै वैराग्यभावना है, बहुरि आत्मानुभवनरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता सोही भया ध्यान ताविषैं तत्पर है, बहुरि व्रत समिति गुप्तिरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यक्त्वचारित्र जिनिकै पाईये है तेही मुनि मोक्षमार्गी है, अन्य भेषी मोक्षमार्गी नांही ॥ ८२ ॥

आगैं निश्चयनयकरि ध्यान ऐसैं करनां, ऐसैं कहै हैं;—

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥८३॥

निश्चयनयस्य एवं आत्मा आत्मनि आत्मने सुरतः।
सः भवति स्फुटं सुचरित्रः योगी सः लभते निर्वाणम्॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो निश्चयनयका ऐसा अभिप्राय है-जो आत्मा आत्महीविषैं आपहीकै अर्थि भलैप्रकार रत होय सो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्चारित्रवान भया सता निर्वाणकूं पावै है॥

भावार्थ—निश्चयनयका स्वरूप ऐसा है जो—एक द्रव्यकी अवस्था जैसी होय ताहीकूं कहै। तहां आत्माकी दोय अवस्था;—एक तौ अज्ञान अवस्था अर एक ज्ञान अवस्था। तहा जेतैं अज्ञान अवस्था रहै तेतैं तौ बंधपर्यायकूं आत्मा जानैं जो मैं मनुष्य हूं मैं पशुहूं मैं क्रोधी हूं, मैं मानीहू, मैं मायावीहूँ, मैं पुण्यवान धनवानहूँ, मैं निर्धन दरिद्रीहूँ, मैं राजाहूँ, मैं रकहूँ, मैं मुनिहूँ, मैं श्रावकहूँ इत्यादि पर्यायनिविषैं आपा मानैं तिनि पर्यायनिविषैं लीन है तब मिथ्यादृष्टी है अज्ञानी है, याका फल संसार है ताकूं भोगवै है। बहुरि जब जिनमतके प्रसादकरि जीव अजीव पदार्थनिका ज्ञान होय तब आपा परका भेद जानि ज्ञानी होय तब ऐसैं जानैं जो-मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूपहूं अन्य मेरा किछूभी नांही, तब यह आत्मा आपहीविषैं आपही करि आपहीकै अर्थि लीन होय तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होय आपहीकूं ध्यावै, तबही सम्यग्ज्ञानी है याका फल निर्वाण है, ऐसैं जाननां॥ ८३॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते सते कहैं हैं,—

पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो॥८४॥

पुरुषाकार आत्मा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्रः।
यः ध्यायति सः योगी पापहरः भवति निर्द्वन्द्वः॥८४॥

अर्थ—यह आत्मा ध्यानके योग्य कैसा है-पुरुषाकार है, बहुरि योगी है मन वचन कायके योगनिका जाकै निरोध है सर्वांग सुनिश्चल है, बहुरि वर कहिये श्रेष्ठ सम्यक्‌रूप ज्ञान अर दर्शनकरि समग्र है परिपूर्ण है केवलज्ञानदर्शन जाकै पाइये है, ऐसा आत्माकूं जो योगी ध्यानी मुनि ध्यावै है सो मुनि पापका हरनेंवाला है अर निर्द्वन्द्व है रागद्वेष आदि विकल्पनिकरि रहित है ॥

भावार्थ—जो अरहंतरूप शुद्ध आत्माकूं ध्यावै है ताका पूर्व कर्मका नाश होय है अर वर्त्तमानमैं रागद्वेषरहित होय है तब आगामी कर्मकूं नांही बांधै है ॥ ८४ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं मुनिनिकूं प्रवर्त्तनां कह्या। अब श्रावकनिकूं प्रवर्त्तनेंके अर्थि कहिये है;—

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु ।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ॥ ८५ ॥

एवं जिनैः कथितं श्रमणानां श्रावकाणां पुनः शृणुत ।
संसारविनाशकरं सिद्धिकरं कारणं परमं ॥ ८५ ॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार तौ उपदेश श्रमण जे मुनि तिनिकूं जिनदेवनैं कह्या है। बहुरि अब श्रावकनिकूं कहिये है सो सुनो, कैसा कहिये है—संसारका तौ विनाश करनेंवाला अर सिद्धि जो मोक्ष ताका करनेंवाला उत्कृष्ट कारण ऐसा उपदेश है ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या सो तौ मुनिनिकूं कह्या अर अब आगैं कहिये है सो श्रावकनिकूं कहिये है, ऐसा कहिये है जातैं संसारका विनाश होय अर मोक्षकी प्राप्ति होय ॥ ८५ ॥

आगैं श्रावकनिकूं प्रथम कहा करनां; सो कहै हैं;—

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंप ।
तं जाणे झाइज्जइ सावय ! दुक्खक्खयट्ठाए ॥ ८६॥

गृहीत्वा च सम्यक्त्वं सुनिर्मलं सुरगिरेरिव निष्कंपम् ।
तत् ध्याने ध्यायते श्रावक ! दुःखक्षयार्थे ॥ ८६ ॥

अर्थ—प्रथम तौ श्रावकनिकूं सुनिर्मल कहिये भलै प्रकार निर्मल अर मेरुवत् नि.कप अचल अर चल मलिन अगाढ दूषणरहित अत्यंत निश्चल ऐसा सम्यक्त्वकूं ग्रहण करि तिसकं ध्यानविषैं ध्यावना, कौन अर्थि–दु:खका क्षयकै अर्थि ध्यावना ॥

भावार्थ—श्रावक पहलै तौ निरतिचार निश्चल सम्यक्त्वकूं ग्रहण-करि जाका ध्यान करै जा सम्यक्त्वकी भावनातैं गृहस्थकै गृहकार्यसंबंधी आकुलता क्षोभ दु:ख होय है सो मिटि जाय है, कार्यके विगडनें सुधरनेमैं वस्तुके स्वरूपका विचार आवै तब दु:ख मिटै है । सम्यग्दृष्टीकै ऐसा विचार होय है–जो वस्तुका स्वरूप सर्वज्ञनैं जैसा जान्यां है तैसा निरन्तर परिणमै है सो होय है, इष्ट अनिष्ट मानि दु:खी सुखी होनां निष्फल है । ऐसे विचारतैं दु:ख मिटै है यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है जातैं सम्यक्त्वका ध्यान करना कह्या है ॥ ८६ ॥

आगैं सम्यक्त्वका ध्यानही की महिमा कहै हैं,—

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥८७॥

सम्यक्त्वं यः ध्यायति सम्यग्दृष्टिः भवति सः जीवः ।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि ॥८७॥

अर्थ–जो श्रावक सम्यक्त्वकूं ध्यावै है सो जीव सम्यग्दृष्टी है बहुरि सम्यक्त्वरूप परिणया संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिका क्षय करै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका ध्यान ऐसा है जो पहलैं सम्यक्त्व न भया होय तौऊ याका स्वरूप जानि याकूं ध्यावै तौ सम्यग्दृष्टी होजाय है। बहुरि सम्यक्त्व भये याका परिणाम ऐसा है जो संसारके कारण जे दुष्ट अष्ट कर्म तिनिका क्षय होय है, सम्यक्त्व होतैं ही कर्मनिकी गुणश्रेणी निर्जरा होनें लगि जाय है, अनुक्रमतैं मुनि होय तब चारित्र अर शुक्लध्यान याके सहकारी होंय तब सर्व कर्मका नाश होय है ॥ ८७ ॥

आगैं याकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया जातंणइ सम्ममाहप्पं ॥८८॥

किं बहुना भणितेन ये सिद्धाः नरवराः गते काले।
सेत्स्यंति येऽपि भव्याः तज्जातीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम् ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-बहुत कहनेंकरि कहा साध्य है जे नरप्रधान अतीतकालविषैं सिद्ध भये अर आगामी कालविषै सिद्ध होयगे सो सम्यक्त्वका माहात्म्य जानो॥

भावार्थ—इस सम्यक्त्वका ऐसा माहात्म्य है जो अष्टकर्मका नाश करि जे मुक्तिप्राप्त अतीकालमें भये हैं तथा आगामी होंयगे ते इस सम्यक्त्वतैं ही भये हैं अर होंयगे, तातैं आचार्य कहै है जो बहुत कहनेकरि कहा! यह संक्षेपकरि कह्या जानो जो—मुक्तिका प्रधान कारण यह सम्यक्त्वही है। ऐसा मति जानो जो गृहस्थकै कहा धर्म है सो यह सम्यक्त्वधर्म ऐसा है जो सर्व धर्मनिके अगनिकूं सफल करै है ॥ ८८ ॥

आगैं कहै हैं जो—निरन्तर सम्यक्त्व पालै हैं ते धन्य हैं—

ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८९॥

ते धन्याः सुकृतार्थाः ते शूराः तेऽपि पंडिता मनुजाः ।
सम्यक्त्वं सिद्धिकरं स्वप्नेऽपि न मलिनितं यैः ॥ ८९ ॥

अर्थ-जिनि पुरुषनिनें मुक्तिका करनेवाला सम्यक्त्व है ताकूं स्वप्नावस्थाविषै भी मलिन न किया अतीचार न लगाया ते पुरुष धन्य हैं ते ही मनुष्य हैं ते ही भले कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर हैं ते ही पंडित हैं ॥

भावार्थ--लोकमैं कछू दानादिक करै तिनिकूं धन्य कहिये है तथा विवाहादिक यज्ञादिक करै हैं तिनिकूं कृतार्थ कहै हैं युद्धमैं पाछा न होय ताकूं शूरवीर कहै हैं, बहुत शास्त्र पढै ताकूं पंडित कहै हैं। ये सारे कहनेके हैं जो मोक्ष का कारण सम्यक्त्व ताकूं मलिन न करैं हैं निरतिचार पालैं हैं ते धन्य हैं,ते ही कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर हैं तेही पंडित हैं ते ही मनुष्य हैं, या विना मनुष्य पशुसमान है, ऐसा सम्यक्त्वका माहात्म्य कह्या ॥ ८९ ॥

आगै शिष्य पूछ्या जो सम्यक्त्व कैसाक है ? ताके समाधानकूं या सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न बतावै हैं,—

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे ।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्त ॥९०॥

हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे ।
निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥ ९० ॥

अर्थ—हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षका मार्ग तथा गुरु इनिविषैं श्रद्धान होत संतैं सम्यक्त्व होय है।

भावार्थ—लौकिकजन तथा अन्यमती जीवनिकी हिंसा करि धर्म मानैं हैं, अर जिनमतमैं अहिंसा धर्म कह्या है ताहीकूं श्रद्धै अन्यकूं नांही श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है। लौकिक अन्यमतीनिनैं मानें हैं ते सर्व देव क्षुधादि

तथा रागद्वेषादि दोषनि करि संयुक्त हैं तातैं वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देव सर्वदोषनिकरि रहित है ताकूं देव मानै श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है। इहां दोष अठारह कहे ते प्रधानता अपेक्षा कहे हैं ते उपलक्षणरूप जाननें, इनि सारिखे अन्यभी जानि लेनें। बहुरि निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षमार्ग सोही मोक्षमार्ग है, अन्यलिंगतैं अन्यमती श्वेतांबरादिक जैनाभास मोक्ष मानैं हैं सो मोक्षमार्ग नांही है। ऐसा श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है, ऐसा जाननां ॥९०॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते कहैं हैं,—

जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं ।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं ॥९१॥

यथाजातरूपरूपं सुसंयतं सर्वसंगपरित्यक्तम् ।
लिंगं न परापेक्षं यः मन्यते तस्य सम्यक्त्वम् ॥९१॥

अर्थ—मोक्षमार्गका लिंग भेष ऐसा है यथाजातरूप तौ जाका रूप है, बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित्मात्रभी जामैं नांही है; बहुरि सुसंयत कहिये सम्यक्प्रकार इन्द्रियनिका निग्रह अर जीवनिकी दया जामैं पाइये ऐसा संयम है; बहुरि सर्वसंग कहिये सर्वही परिग्रह तथा सर्व लौकिक जननिकी संगतितैं रहित है; बहुरि जामैं परकी अपेक्षा कछू नांही है मोक्षके प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजनकी अपेक्षा नांही है। ऐसा मोक्षमार्गका लिंग मानै श्रद्धै तिस जीवकै सम्यक्त्व होय है॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमैं ऐसाही लिंग है, अन्य अनेक भेष हैं ते मोक्षमार्गमैं नांही हैं ऐसा श्रद्धान करै ताकै सम्यक्त्व होय है। इहां परापेक्ष नांही—ऐसा कहनें तैं जनाया है जो—ऐसा निर्ग्रंथ रूप भी जो काहू अन्य आशयतैं धारै तौ वह भेष मोक्षमार्ग नांही; केवल मोक्षहीकी अपेक्षा जामैं होय ऐसा होय ताकूं मानै सो सम्यग्दृष्टी है ऐसा जाननां॥ ९१ ॥

आगैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहै हैं;—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु ॥९२॥

कुत्सितदेवं धर्मं कुत्सितलिंगं च वन्दते यः तु।
लज्जाभयगारवतः मिथ्यादृष्टिः भवेत् सः स्फुटम् ॥९२॥

अर्थ—कुत्सित देव जो क्षुधादिक अर रागद्वेषादि दोषनिकरि दूषित होय सो, अर कुत्सित धर्म जो हिंसादि दोषनिकरि सहित होय सो, कुत्सितलिंग जो परिग्रहादिकरि सहित होय सो, इनिकूं जो वंदै पूजै सो तो प्रगट मिथ्यादृष्टी है। इहां विशेष कहै हैं जो भले हितकरनेंवाले मानिकरि वंदै पूजै सो तौ प्रगट मिथ्यादृष्टी है, परन्तु जो लज्जा भय गारव इनि कारणनि करि भी वंदै पूजै सो भी प्रगट मिथ्यादृष्टी है। तहां लज्जा तौ ऐसैं—जो लोक इनिकूं वंदै पूजै है हम नांही पूजैंगे तौ लोक हमको कहा कहैंगे? हमारी या लोकमैं प्रतिष्ठा जायगी? ऐसैं तौ लज्जाकरि वंदै पूजै। बहुरि भय ऐसैं जो—इनिकूं राजादिक मानैं हैं, हम न मानैंगे तौ हम ऊपरि कछू उपद्रव आवैगा ऐसैं भयकरि वंदै पूजै। बहुरि गारव ऐसैं जो—हम बड़े हैं महत पुरुष हैं, सर्वहीका सन्मान करैं हैं इनिकार्यनिमैं हमारी बड़ाई है, ऐसैं गारवकरि वंदना पूजनां होय है। ऐसैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहे॥ ९२॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करते संते कहैं हैं;—

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
माणइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्ती ॥९३॥

स्वपरापेक्षं लिंगं रागिणं देवं असंयतं वन्दे।
मानयति मिथ्यादृष्टिः न स्फुटं मानयति शुद्धसम्यक्त्वी ॥९३॥

अर्थ—स्वपरापेक्ष तौ लिंग जो कछू आप लौकिक प्रयोजन मनमैं धारि भेष ले सो स्वापेक्ष है, बहुरि काहू परकी अपेक्षातैं धारै काहूके आग्रहतैं तथा राजादिकका भयतैं धारै सो परापेक्ष है। बहुरि रागी देव जाकै स्त्री आदिका राग पाइये, बहुरि संयमरहित इनिकूं ऐसैं कहै जो मैं वंदू हूँ, तथा तिनिकू मानैं श्रद्धै सो मिथ्यादृष्टी है। बहुरि शुद्धसम्यक्त्व भये संतैं तिनिकूं न मानैं है, श्रद्धै नाही, वंदै पूजै नांही ॥

भावार्थ—ये कहे तिनिसूं मिथ्यादृष्टीकै प्रीति भक्ति उपजै है, जो निरतिचार सम्यक्त्ववानहै सो इनिकूं न मानै है ॥ ९३ ॥

सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि ।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ ९४ ॥

सम्यग्दृष्टिः श्रावकः धर्मं जिनदेवदेशितं करोति ।
विपरीतं कुर्वन् मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो जिनदेवका उपदेश्या धर्म करै है सो सम्यग्दृष्टी श्रावक है, बहुरि जो अन्यमतका उपदेश्या धर्म करै है सो मिथ्यादृष्टी जानना ॥ ९४ ॥

भावार्थ—ऐसैं कहनेंतैं इहां कोई तर्क करै जो—यह तौ अपनां मत पोषनेंकी पक्षपातमात्र वार्त्ता कही ? ताकूं कहिये है, जो—ऐसैं नांही है, जामैं सर्व जीवनिका हित होय सो धर्म है सो ऐसा अहिंसारूप धर्म जिनदेवहीनैं प्ररूप्याहै, अन्यमतमैं ऐसा धर्मका निरूपण नाही, ऐसैं जानना ॥ ९४ ॥

आगैं कहै हैं जो—मिथ्यादृष्टी जीव है सो संसारविषै दुःखसहित भ्रमै है,—

मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउलो जीवो ॥ ९५ ॥

मिथ्यादृष्टिः यः सः संसारे संसरति सुखरहितः ।
जन्मजरामरणप्रचुरे दुःखसहस्राकुलः जीवः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टी जीव है सो जरा मरणनिकरि प्रचुर भया अर दु:खनिके हजारानिकरि व्याप्त जो संसार ताविषैं सुखकरि रहित दु:खी भया भ्रमैं है ॥

भावार्थ—मिथ्याभावका फल संसारमैं भ्रमण करनां ही है, सो यह संसार जन्म जरा मरण आदि हजारा दु:खनि करि भर्‍या है, तिनि दु:खनिकूं मिथ्यादृष्टी या संसारमैं भ्रमता संता भोगवै है। इहां दुःख तौ अनंतां हैं हजारा कहने तैं प्रसिद्ध अपेक्षा बहुलता जनाई है ॥ ९५ ॥

आगैं सम्यक्त्व मिथ्यात्व भावके कथनकूं संकोचै हैं,—

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु ।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु ॥ ९६ ॥

सम्यक्त्वे गुणः मिथ्यात्वे दोषः मनसा परिभाव्य तत् कुरु।
यत् ते मनसे रोचते किं बहुना प्रलपितेन तु ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे भव्य ! ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनिकूं अपनें मनकरि भावनाकरि अर जो अपना मनकूं रुचै प्रिय लागै सो कर, बहुत प्रलापरूप कहनेंकरि कहा साध्य है। ऐसैं आचार्यनैं उपदेश किया है ॥

भावार्थ—ऐसैं आचार्यनैं कह्या है जो—बहुत कहनेकरि कहा? सम्यक्त्व मिथ्यात्वके गुण दोष पूर्वोक्त जांनि जो मनमैं रुचै सो करो। तहां ऐसा उपदेशका आशय है जो—मिथ्यात्वकूं छोडो सम्यक्त्वकूं ग्रहण करो यातैं संसारका दुःख मेटि मोक्ष पावो ॥ ९६ ॥

आगैं कहै हैं जो मिथ्यात्व भाव न छोड्या तब बाह्य भेषतैं कछू नांही है;—

बाहिरसंगविमुक्को णा वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं॥९७॥

बहिः संगविमुक्तः नापि मुक्तः मिथ्याभावेन निर्ग्रंथः।
किं तस्य स्थानमौनं न अपि जानाति आत्मसमभावं ॥९७॥

अर्थ-जो बाह्य परिग्रहतैं रहित अर मिथ्याभावसहित निर्ग्रंथ भेष धारण किया है सो परिग्रह रहित नांही है ताकै ठाण कहिये खड़ा होय कायोत्सर्ग करनेंकरि कहा साध्य है? अर मौन धारै ताकरि कहा साध्य है? जातैं आत्माका समभाव जो वीतराग परिणाम ताकूं न जानै है॥

भावार्थ जो आत्माका शुद्ध स्वभावकूं जांनि सम्यग्दृष्टी होय है। अर मिथ्याभावसहित परिग्रह छोडि निर्ग्रंथ भी भया है, कायोत्सर्ग करनां मौन धारना इत्यादि बाह्य क्रिया करै है तौ ताकी क्रिया मोक्षमार्गमैं सराहनेयोग्य नाही है जातैं सम्यक्त्वविना बाह्य क्रियाका फल संसारही है॥ ९७॥

आगैं आशंका उपजै है जो सम्यक्त्वविना बाह्यलिंग निष्फल कह्या तहां जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाडै ताकै सम्यक्त्व रहै कि नाही? ताका समाधानकूं कहै हैं,—

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं॥

मूलगुणं छित्वा च बाह्यकर्म करोति यः साधुः।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिनलिंगविराधकः नियतं॥

अर्थ—जो मुनि निर्ग्रंथ होय मूलगुण धारण करै है तिनिकूं छेदनकरि बिगाड़करि केवल बाह्यक्रियाकर्म करै है सो सिद्धि जो मोक्ष ताका सुखकूं नांही पावै है जातैं ऐसा मुनि जिनलिंगका विराधक है॥

भावार्थ—जिन आज्ञा ऐसी है जो-सम्यक्त्वसहित मूलगुण धारि धन्य जे साधु किया है ते करै हैं। तहां मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं—पांच महाव्रत ५ पाच समिति ५ पचइंद्रियनिका निरोध ५ छह आवश्य ६ भूमिशयन १ स्नानका त्याग १ वस्त्रका त्याग १ केशलोच १ एकबार भोजन १ खड़ा भोजन १ दंतधावनका त्याग १ ऐसैं अट्ठाईस मूलगुण हैं तिनिकूं विराधकरि अर कायोत्सर्ग मौन तप ध्यान अध्ययन करै है तौ तिनि क्रियानिकरि मुक्ति न होय है। जातैं जो ऐसैं श्रद्धान करै जो-हमारै सम्यक्त्व तौ है ही, बाह्य मूलगुण विगडै तौ बिगडौ हम मोक्षमार्गीही हैं—तौ ऐसी श्रद्धातैं तौ जिन आज्ञा भग करनेतैं सम्यक्त्वकाभी भग होय है तब मोक्ष कैसैं होय अर कर्मके प्रवल उदयतैं चारित्र भ्रष्ट होय। अर जिन आज्ञा है तैसा श्रद्धान रहै तौ सम्यक्त्व रहै है, अर मूलगुण विनां केवल सम्यक्त्वहीतैं मुक्ति नाही, अर सम्यक्त्व विना केवल क्रियाहीतैं मुक्ति नांही, ऐसैं जानना। इहां कोई पूछै—मुनिकै स्नानका त्याग कह्या अर हम ऐसैं भी सुनै हैं जो चाडाल आदिका स्पर्श होय तौ दडस्नान करै है? ताका समाधान जो—जैसैं गृहस्थ स्नान करै है तैसैं स्नान करनेका त्याग है जातैं यामैं हिंसाकी बहुलता है, बहुरि मुनिकै ऐसा स्नान है जो-कमडलुमै प्रासुकजल रहै ताकरि मत्र पढ़ि मस्तकपरि धारामात्र देहैं अर तिसदिन उपवास करै है सो ऐसा स्नान है सो नाममात्र स्नानहै, इहां मत्र अर तपस्नान प्रधान है जलस्नान प्रधान नाही, ऐसैं जानना ॥९८॥

आगैं कहै हैं जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है सो कहा करै? मोक्षमार्गमैं तौ कछू भी कार्य न करै है,—

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो ॥ ९९ ॥

किं करिष्यति बाहिः कर्म किं करिष्यति बहुविधं च क्षमणं तु ।
किं करिष्यति आतापः आत्मस्वभावात् विपरीतः ॥ ९९ ॥

अर्थ—आत्मस्वभावतैं विपरीत प्रतिकूल बाह्यकर्म जो क्रियाकांड सो कहा करैगा ? कछू मोक्षका कार्य तौ किंचिन्मात्रभी नाही करैगा, बहुरि बहुत अनेक प्रकार क्षमण कहिये उपवासादि बाह्य तप सो भी कहा करैगा? कछू भी नांही करैगा, बहुरि आतापनयोगआदि कायक्लेश सो कहा करैगा ? कछू भी नाही करैगा ॥

भावार्थ—वाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित है अर शरीर जड़ है आत्मा चेतन है, तहां जड़की क्रिया तौ चेतनकूं कछू फल करै है नांही जैसा चेतनाका भाव जेती क्रियामैं मिलै है जाका फल चेतनकूं लागै है। तहा चेतनका अशुभ उपयोग मिलै तब तौ अशुभकर्म बंधै, अर शुभयोग मिलै तब शुभकर्म बंधै, अर जब शुभ अशुभ दोऊतैं रहित उपयोग होय तब कर्म न बंधै, पहले कर्म बंधे तिनिकी निर्जरा करि मोक्ष करै है। ऐसैं चेतना उपयोगकै अनुसार फलै, तातैं ऐसैं कह्या है जो बाह्य क्रिया-कर्मतैं तौ कछू मोक्ष होय है नाही, शुद्ध उपयोग भये मोक्ष होय है। तातैं दर्शन ज्ञान उपयोगका विकार मेटि शुद्ध ज्ञान चेतनाका अभ्यास करनां मोक्षका उपाय है ॥ ९९ ॥

आगैं याही अर्थका फेरि विशेष कहै हैं;—

जदि पढदि बहुसुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं य चारित्तं
तं बालसुदं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं ॥ १०० ॥

यदि पठति बहुश्रुतानि च यदि करिष्यति बहुविधं च चारित्रं।
तत् बालश्रुतं चरणं भवति आत्मनः विपरीतम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रनिकूं पढैगा बहुरि बहुत प्रकार चारित्रकूं आचरैगा तौ ते सर्वही बालश्रुत अर बाल-चारित्र होयगा। जो आत्मस्वभावतैं विपरीत शास्त्रका पढना अर चारि-त्रका आचरना ये सर्व ही बालश्रुत बालचारित्र हैं अज्ञानीकी क्रिया है

जातैं ग्यारह अंग नव पूर्व पर्यन्त तौ अभव्यजीवभी पढै है अर बाह्य मूलगुणरूप चारित्रभी पालै है तौऊ मोक्षकै योग्य नांहीं, ऐसैं जाननां ॥१००

आगैं कहै हैं जो—ऐसा साधु मोक्ष पावै है;—

वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि ।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ॥ १०१ ॥
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिओ साहू ।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥ १०२ ॥

वैराग्यपरः साधुः परद्रव्यपराङ्मुखश्च यः भवति ।
संसारसुखविरक्तः स्वकशुद्धसुखेषु अनुरक्तः ॥ १०१ ॥
गुणगणविभूषितांगः हेयोपादेयनिश्चितः साधुः ।
ध्यानाध्ययने सुरतः स प्राप्नोति उत्तमं स्थानम् ॥१०२॥

अर्थ—जो साधु ऐसा होय सो उत्तमस्थान जो लोकशिखरपरि सिद्ध क्षेत्र तथा मिथ्यात्वआदि चौदह गुणस्थाननितैं परैं शुद्धस्वभाव रूप स्थान सो पावै है। कैसा भया प्रथम तौ वैराग्यविषैं तत्पर होय संसार देह भोगतैं पहलैं विरक्त होय मुनि भया तिसही भावनायुक्त होय; बहुरि परद्रव्यतैं पराङ्मुख होय जैसैं वैराग्य भया तैसैंही परद्रव्यका त्यागकरि तिसतैं पराङ्मुख रहै; बहुरि संसारसंबंधी इन्द्रियनिकै द्वारैं विषयनितैं सुखसा होय है तातैं विरक्त होय, बहुरि अपनां आत्मीक शुद्ध कषायनिकै क्षोभ रहित निराकुल शांतभावरूप ज्ञानानंद ताविषै अनुरक्त होय; लीन होय वारंवार तिसहीकी भावना रहै। बहुरि गुणके गणकरि विभूषित है आत्मप्रदेशरूप अंग जाका, मूलगुण उत्तरगुणनिकरि आत्माकूं अलंकृत शोभायमान किये है, बहुरि हेय उपादेय तत्त्वका निश्चय जाकै होय, निज आत्मद्रव्य तौ उपादेय है अर अन्य परद्रव्यकै निमित्ततैं भये अपनें विकारभाव ते सब हेय हैं, ऐसा जाकै निश्चय होय, बहुरि साधु

होय आत्माके स्वभावके साधनविषैं नीकैं तत्पर होय बहुरि धर्म शुक्लध्यान अर अध्यात्मशास्त्रनिकूं पढि ज्ञानकी भावनाविषैं तत्पर होय सुरत होय भलै प्रकार लीन होय। ऐसा साधु उत्तमस्थान जो मोक्ष ताकूं पावै है ॥ १०१-१०२ ॥

भावार्थ—मोक्षके साधनेंके ये उपाय हैं अन्य कछू नांही है ॥ १०१-१०२ ॥

आगैं कहै हैं—जो सर्वतैं उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्मा है सो या देहहीमैं तिष्ठै है ताकूं जानो,—

णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं ।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह ॥ १०३ ॥

नतैः यत् नम्यते ध्यायते ध्यातैः अनवरतम् ।
स्तूयमानैः स्तूयते देहस्थं किमपि तत् जानीत ॥१०३॥

अर्थ—हे भव्यजीव हो ! तुम या देहविषैं जो तिष्ठ्या ऐसा कछू क्यों है ताहि जानो, कैसा है—लोकमैं नमने योग्य इंद्रादिक हैं तिनिकरि तौ नमनें योग्य अर ध्यावनें योग्य है, बहुरि जे स्तुति करने योग्य तीर्थंकरादिक हैं तिनिकै स्तुति करनें योग्य है, ऐसा कछू है सो या देहहीविषैं तिष्ठै है ताकूं यथार्थ जानो ॥

भावार्थ—शुद्ध परमात्मा है सो यद्यपि कर्मकरि आच्छादित है तौऊ भेदज्ञानीनिकैं या देहहीविषैं तिष्ठताहीकूं ध्याय करि तीर्थंकरादि भी मोक्ष पावै है, यातैं ऐसा कह्या है जो—लोकमैं नमने योग्य तौ इन्द्रादिक हैं अर ध्यावनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं तथा स्तुति करनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं ते भी जाकूं नमैं हैं ध्यावैं हैं जाकी स्तुति करैं हैं ऐसा वचन कछू वचनकै अगोचर भेदज्ञानीनिकै अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है ताका स्वरूप जानो ताकूं नमो ध्यावो, बाहरि काहेकूं हेरो, ऐसा उपदेश है ॥ १०३ ॥

आगैं आचार्य कहै हैं जो—अरहंतादिक पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही हैं तातैं आत्मा ही शरण है;—

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१०४

अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्यायाः साधवः पंच परमेष्ठिनः।
ते अपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं ॥१०४॥

अर्थ—अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय अर साधु ये पचपरमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही चेष्टारूपहैं आत्माकी अवस्थाहैं तातैं मेरै आत्माहीका शरणा है, ऐसैं आचार्य अभेदनय प्रधानकरि कह्या है॥

भावार्थ—ये पांच पद आत्माहीके हैंजब यह आत्मा घातिकर्मका नाश करै है तब अरहन्तपद होय है, बहुरि सो ही आत्मा अघाति कर्मनिका नाशकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है तब सिद्धपद कहावै है, बहुरि जब शिक्षा दीक्षा देनेवाला मुनि होय है तब आचार्य कहावै है, बहुरि पठनपाठनविषैं तत्पर ऐसा मुनि होय है तब उपाध्याय कहावै है, अर जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गकूं केवल साधैही तब साधु कहावै है, ऐसैं पांचूं पद आत्माहीमैं हैं। सो आचार्य विचारै हैं जो या देहमैं आत्मा तिष्ठै है सो यद्यपि कर्मआच्छादित है तौऊ पांचू पदयोग्य है, याहीकूं शुद्धस्वरूप ध्याये पांचूं पदका ध्यान है तातैं मेरै या आत्माहीका शरणा है ऐसी भावना करी है, अर पन्चपरमेष्ठीका ध्यानरूप अंतमंगल जनाया है॥ १०४॥

आगैं कहै हैं जो अंतसमाधिमरणमैं च्यारि आराधनाका आराधन कह्या है सो ये भी आत्माहीकी चेष्टा है तातैं आत्माहीका मेरै शरणां है;—

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं (य) सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१०५॥

सम्यक्त्वं सज्ज्ञानं सच्चारित्रं सत्तपः चैव ।
चत्वारः तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं ॥१०५॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर सम्यक् तप ये च्यारि आराधना हैं तेभी आत्माविषैही चेष्टारूप हैं, ये च्यारू आत्माहीकी अवस्था हैं, तातैं आचार्य कहै हैं मेरै आत्माहीका शरणा है॥१०५॥

भावार्थ—आत्माका निश्चयव्यवहारात्मक तत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणाम सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि संशय विमोह विभ्रम इनिकरि रहित अर निश्चयव्यवहारकरि निजस्वरूपका यथार्थ जानना सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि तत्वार्थनिकूं जानि रागद्वेषादिकसूं रहित परिणाम सो सम्यक्चारित्र है; बहुरि अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्ज्ञानपूर्वक कष्ट आदरि स्वरूपका साधनां सो सम्यक्तप है; ऐसैं ये च्यारूही परिणाम आत्माके है तातैं आचार्य कहै हैं मेरै आत्माहीका शरण है, याहीकी भावनामैं च्यारू आयगये। अंतसल्लेखनामैं च्यारि आराधनाका आराधन कह्या है, तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिका उद्योत उद्यवन निर्वहण साधन निस्तरण ऐसै पंचप्रकार आराधना कह्या है, सो आत्माके भावनेमैं च्यारू आयगये, ऐसैं अंतसल्लेखनाकी भावना याहीमैं आयगई ऐसैं जाननां। तथा आत्माही परममंगलरूप है ऐसा भी जनाया है॥ १०५ ॥

आगै यह मोक्षपाहुडग्रंथ पूर्ण कियां ताका पढने सुननें भावनेका फल कहै हैं,—

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य कारणं सुभत्तीए ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सुक्खं॥१०६॥
एवं जिनप्रज्ञप्तं मोक्षस्य च कारणं सुभक्त्या ।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति शाश्वतं सौख्यं॥१०६॥

अर्थ--एवं कहिये ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनदेवनें कह्या ऐसा मोक्षपाहुड ग्रंथ है ताहि जो जीव भक्तिभावकरि पढै हैं याकी वारंवार चिंतवनरूप भावना करै है तथा सुनै है सो जीव शाश्वता सुख जो नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमय सुख ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मोक्षपाहुडमैं मोक्ष अर मोक्षका कारणका स्वरूप कहा है अर जे मोक्षका कारणका स्वरूप अन्यप्रकार मानै हैं तिनिका निषेध किया है तातैं या ग्रंथके पढनें सुननें तैं ताका यथार्थ स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान आचरण होय है तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय अर ताकी वारंवार भावना करनेंतै ताविषैं दृढ होय एकाग्रध्यान की सामर्थ्य होय है, तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय शाश्वता सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होय है। तातैं या ग्रंथकूं पढनां सुनना निरन्तर भावना राखनी यह आशय है ॥ १०६ ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यनें यह मोक्षपाहुडग्रंथ संपूर्ण किया। याका सपेक्ष ऐसा—जो यह जीव शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है तौऊ अनादिहीतैं पुद्गल कर्मके संयोगतैं अज्ञान मिथ्यात्व रागद्वेषादिक विभावरूप परिणमै है तातैं नवीनकर्मबंधके संतानकरि संसारमैं भ्रमै है। तहा जीवकी प्रवृत्तिके सिद्धान्तमैं सामान्यकरि चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं—तिनिमैं मिथ्यात्वके उदयकरि मिथ्यात्वगुणस्थान होय है, अर मिथ्यात्वकी सहकारिणी अनन्तानुबंधी कषाय है ताके केवल उदयकरि सासादन गुणस्थान होय है, अर सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊके मिलापरूप मिश्रप्रकृतिके उदयकरि मिश्रगुणस्थान होय है, इनि तीन गुणस्थाननिमैं तौ आत्मभावनाका अभाव ही है। बहुरि जब काललब्धिके निमित्ततैं जीवाजीव पदार्थनिका ज्ञान श्रद्धान भये सम्यक्त्व होय तब या जीवकूं अपनां परका अर हिताहितका हेय उपादेयका जाननां होय है तब आत्माकी भावना होय है तब अविरतनाम चौथा गुणस्थान होय है अर जब एकदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिका परिणाम होय है तब जो एकदेश-

चारित्ररूप पांचमां गुणस्थान होय है ताकूं श्रावकपद कहिये, बहुरि सर्वदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिरूप परिणाम होय तब सकलचारित्ररूप छट्ठा गुणस्थान कहिये, यामैं कछू सज्वलन चारित्र मोहका तीव्र उदयतैं स्वरूपके साधनेविषैं प्रमाद होय है तातैं ताका नाम प्रमत्त है; इहांतैं लगाय ऊपरिके गुणस्थानवालेकूं साधु कहिये है। बहुरि जब संज्वलन चारित्र मोहका मंद उदय होय तब प्रमादका अभाव होय तब स्वरूपके साधनेंविषैं बडा उद्यम होय तब याका नाम अप्रमत्त ऐसा सातवा गुणस्थान है, यामैं धर्मध्यानकी पूर्णता है। बहुरि जब इस गुणस्थानमैं स्वरूपमैं लीन होय तब सातिशय अप्रमत्त होय है श्रेणीका प्रारभ करै है तब यातैं ऊपरी चारित्रमोहका अव्यक्त उदयरूप अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय नाम धारक ये तीन गुणस्थान होय हैं। चौथासूं लगाय दशमां सूक्ष्मसापरायताई कर्मकी निर्जरा विशेषताकरि गुणश्रेणीरूप होय है। तब यातैं ऊपरि मोहकर्मका अभावरूप ग्यारमां बारमा उपशातकषाय क्षीणकषाय गुणस्थान होय है। ता पीछैं तीन घातिया कर्म रहे तिनिका नाशकरि अनत चतुष्टय प्रगट होय अरहंत होय है तहा सयोगी जिन नाम गुणस्थान है, इहां योगकी प्रवृत्ति है। बहुरि योगनिका निरोध करि अयोगीजिन नामा चौदमा गुणस्थान होय है,तहा अघातिकर्मकाभी नाशकरि अर लगताही अनतर समय निर्वाणपदकू प्राप्त होय है, तहा संसारका अभावतैं मोक्ष नाम पावै है। ऐसैं सर्व कर्मका अभावरूप मोक्ष होय है, ताका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहे तिनिकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान सम्यक्त्व प्रगट होनेतैं एकदेश कहिये, तहाते लगाय आगै जैसैं जैसैं कर्मका अभाव होय तैसैं तैसैं सम्यग्दर्शनादिकी प्रवृत्ति बधती जाय अर जैसैं जैसैं इनिकी प्रवृत्ति बधै तैसैं तैसैं कर्मका अभाव होता जाय जब घाति कर्मका अभाव होय तब तेरह चौदह गुणस्थान अरहत होय तब जीवनमुक्त कहावै अर चौदह गुणस्थानके— अत रत्नत्रय की पूर्णता होय है तातैं अघाति कर्मकाभी नाश होय अभाव होय तब साक्षात् मोक्ष होय तब सिद्ध कहावै। ऐसैं मोक्षका अर

मोक्षके कारणका स्वरूप जिन आगमतैं जानि अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षका कारण कह्या है ताकूं निश्चय व्यवहाररूप यथार्थ जानि सेवना अर तप भी मोक्षका कारण है सो भी चारित्रमैं अन्तभूत करि त्रयात्मकही कह्या है। ऐसैं इनि कारणनितैं प्रथम तो तद्भवही मोक्ष होय है। अर जेतैं कारणकी पूर्णता न होय ता पहली कदाचित् आयुकर्मकी पूर्णता होय तौ स्वर्गविषै देव होय है तहां भी यह वांछा रहै जो यह शुभोपयोगका अपराध है इहातें चयकरि मनुष्य होऊंगा, तब सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गकूं सेय मोक्ष प्राप्त होऊंगा, ऐसी भावना रहै है तब तहातैं चय मोक्ष पावै है। अर अबार इस पंचमकालमैं द्रव्य क्षेत्र काल भावकी सामग्रीका निमित्त नाही तातैं तद्भव मोक्ष नाही तौऊ जो रत्नत्रयकूं शुद्धताकरि सेवै तो इहातैं देव पर्याय पाय पीछें मनुष्य होय मोक्ष पावै है। तातैं यह उपदेश है जैसैं बनैं तैसैं रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय करनां, तहां भी सम्यग्दर्शन प्रधान है ताका उपाय तौ अवश्य चाहिये, तातैं जिनागमकूं समझि सम्यक्त्वका उपाय अवश्य करना योग्य है ऐसैं इस ग्रंथका संक्षेप जानो ॥

छप्पय।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।
सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघकारू॥
इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो ॥१॥

दोहा ।

वंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार ॥ २ ॥

इहा कोई पूछै—जो ग्रंथनिमैं जहा तहा पंचणमोकारकी महिमा बहुत लिखी, मंगलकार्यमैं विघ्नके मेटनेंकूं यही प्रधान कह्या, अर यामैं पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार है सो पंचपरमेष्ठीकी प्रधानता भई, पंचपरमेष्ठीकूं परम गुरु कहे तहां याही मंत्रकी महिमा तथा मगलरूपपणा अर यातैं विघ्नका निवारण अर पंचपरमेष्ठीकै प्रधानपणा अर गुरुपणा अर नमस्कार करनें योग्यपणां कैसैं है ? सो कहनां ।

ताका समाधानरूप कछुक लिखिये है—तहां प्रथम तौ पंचणमोकार मंत्र है, ताके पैंतीस अक्षर हैं. सो ये मत्रके बीजाक्षर हैं तथा इनिका जोड सर्व मंत्रनितैं प्रधान है, इनि अक्षरनिका गुरु आम्नायतैं शुद्ध उच्चारण होय तथा साधन यथार्थ होय तब ये अक्षर कार्यमैं विघ्नके निवारणेंकू कारण हैं तातैं मगलरूप हैं। जो 'मं' कहिये पाप ताकूं गालै ताकूं मंगल कहिये तथा 'मग' कहिये सुखकूं ल्यावै दे ताकूं मंगल कहिये सो यातैं दोऊ कार्य होय हैं। उच्चारणतैं विघ्न टलैं हैं, अर्थ विचारे सुख होय है, याही तैं याकूं मंत्रनिमैं प्रधान कह्या है, ऐसैं तौ मंत्रके आश्रय महिमा है। बहुरि पंचपरमेष्ठीकूं नमस्कार यामैं है-ते पंचपरमेष्ठी अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये हैं सो इनिका स्वरूप तौ ग्रंथनिमैं प्रसिद्ध है, तथापि कछू लिखिये है:—तहा यहु अनादिनिधन अकृत्रिम सर्वज्ञकी परंपराकरि सिद्ध आगममैं कह्या है ऐसा षट्द्रव्यस्वरूप लोक है, तामैं जीवद्रव्य अनंतानत है अर पुद्गलद्रव्य तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं, बहुरि एक एक धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य हैं, बहुरि काल द्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं। तहां जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना

स्वरूप है। अर पाँच अजीव हैं ते चेतनारहित जड हैं—तहां धर्म अधर्म आकाश काल ये च्यारि द्रव्य तौ जैसैं हैं तैसैं तिष्ठैं हैं तिनिकै विकारपरिणति नाही; वहुरि जीव पुद्गलद्रव्यके परस्पर निमित्त नैमित्तिकभावतैं विभावपरिणति है तामैं भी पुद्गल तौ जड़ है ताकै विभावपरिणतिका दुःख सुखका संवेदन नांही, अर जीव चेतन है याकै सुख दुःखका सवेदन है। तहां जीव अनंतानन्त हैं तिनिमैं केई तौ संसारी हैं, केई संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध भये हैं। तहां संसारी जीव है तिनिमैं केई तौ अभव्य हैं तथा अभव्यसारिखे हैं ते दोऊ जातिके संसारतैं निवृत्त कवहू न होय हैं तिनिकै संसार अनादिनिधन है, वहुरि केई भव्य हैं ते संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध होय हैं, ऐसैं जीवनिकी व्यवस्था है। अब इनिकै संसारकी उत्पत्ति कैसैं है सो कहै हैं—तहा जीवनिकै ज्ञानावरणादि आठ कर्मनिका अनादिवधरूप पर्याय है तिसवधके उदयके निमित्ततैं जीव रागद्वेषमोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमै है, तिस विभाव परिणतिके निमित्ततैं नवीन कर्मबंध होय है, ऐसैं इनिके सतानतैं जीवकै चतुर्गतिरूप संसारकी प्रवृत्ति होय है तिस संसारमैं चतुर्गतिविषैं अनेक प्रकार सुखदुःखरूप भया भ्रमै है; तहा कोई काल ऐसा आवै जो मुक्त होनां निकट आवै तब सर्वज्ञके उपदेशका निमित्त पाय अपनां स्वरूपकूं अर कर्मबंधका स्वरूपकूं अर आपमैं विभावका स्वरूपकूं जानै इनिका भेद ज्ञान होय तब परद्रव्यकूं संसारके निमित्त जानि तिनितैं विरक्त होय अपने स्वरूपका अनुभवका साधन करै दर्शनज्ञानरूप स्वभावविषैं स्थिर होनेंका साधन करै तब याकै बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापनिका त्यागरूप निर्ग्रंथपद सर्व परिग्रहका त्यागरूप निर्ग्रंथ दिगबर मुद्रा धारै पाच महाव्रत पाच समितिरूप तीन गुप्तिरूप प्रवर्तै तब सर्व जीवनिकी दया करनेवाले साधु कहावै, तामैं तीन पदवी होय—जो आप साधु होय अन्यकूं साधुपदकी शिक्षादीक्षा देय सो तौ आचार्य कहावै, अर साधु होय जिनसूत्रकूं पढै पढावै सो उपाध्याय कहावै, अर जो अपनें स्वरूपका साधनमैं रहै सो साधु कहावै

अर जो साधु होय अपने स्वरूपका साधनका ध्यानका बलतैं च्यारि घाति कर्मनिका नाशकरि केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख अनतवीर्यकूं प्राप्त होय सो अरहंत कहावै, तब तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली जिन इन्द्रादिककरि पूज्य होय तिनिकी वाणी खिरै जिसतैं सर्व जीवनिका उपकार होय अहिंसा धर्मका उपदेश होय सर्व जीवनिकी रक्षा करावै यथार्थ पदार्थनिका स्वरूप जनाय मोक्षमार्ग दिखावै ऐसी अरहत पदवी होय है, वहुरि जो च्यारि अघाति कर्मका भी नाशकरि सर्व कर्मनितैं रहित होय सो सिद्ध कहावै। ऐसैं ये पाच पद हैं, ते अन्य सर्व जीवनितैं महान हैं तातैं पच परमेष्ठी कहावैं हैं तिनिके नाम तथा स्वरूपके दर्शन तथा स्मरण ध्यान पूजन नमस्कारतैं अन्य जीवनिके शुभपरिणाम होय हैं तातैं पापका नाश होय है, वर्त्तमानका विघ्न विलय होय है, आगामी पुण्यका बंध होय है तातैं स्वर्गादिक शुभगति पावै है। अर इनिकी आज्ञानुसार प्रवर्त्तनेतैं परपराकरि ससारतैं निवृत्ति भी होय है तातैं ये पाच परमेष्ठी सर्व जीवनिके उपकारी परमगुरु हैं, सर्व संसारी जीवनिकै पूज्य हैं। इनि सिवाय अन्य संसारी जीव हैं ते राग द्वेष मोहादि विकारनिकरि मलिन हैं, ते पूज्य नांही, तिनिकै महानपणा गुरुपणा पूज्यपणा नाही, आपही कर्मनिके वशि मलिन तब अन्यका पाप तिनितैं कैसैं कटै। ऐसैं जिनमतमैं इनि पच परमेष्ठीका महानपणां प्रसिद्ध है अर न्यायके बलतैंभी ऐसैंही सिद्ध होय है जातैं जे ससारके भ्रमणतैं रहित होय तेही अन्यकै संसारका भ्रमण मेटनेकूं कारण होय जैसैं जाकै धनादि वस्तु होय सो ही अन्यकूं धनादिक दे अर आप दरिद्री होय तब अन्यका दरिद्र कैसैं मेटै, ऐसैं जाननां। ऐसैं जिनकूं संसारके विघ्न दुःख मेटने होय अर संसारका भ्रमणका दुःखरूप जन्म मरणतैं रहित होना होय ते अरहंतादिक पंच परमेष्ठीका नाम मंत्र जपो, इनिके स्वरूपका दर्शन स्मरण ध्यान करो, तातैं शुभ परिणाम होय पापका नाश होय, सर्व विघ्न टलैं परंपराकरि ससारका भ्रमण मिटै कर्मका नाश होय मुक्तिकी प्राप्ति होय, ऐसा जिनमतका उपदेश है सो भव्य जीवनिकै अंगीकार करनें योग्य है।

इहां कोई कहै—अन्यमतमैं ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक इष्ट देव मानैं हैं तिनिके विघ्न टलते देखिये हैं तथा तिनिके मतमैं राजादि बडे बडे पुरुष देखिये हैं तिनिके भी ते इष्ट सो विघ्नादिकका मेटनेंवाले हैं तैसैं तुमारे भी कहौ, ऐसैं क्यौं कहो जो ये पंचपरमेष्ठीही प्रधान हैं अन्य नाही? ताकूं कहिये, रे भाई! जीवनिके दुःख तौ ससारका भ्रमणका है अर संसारके भ्रमणका कारण राग द्वेष मोहादिक परिणाम है अर रागादिक वर्त्तमानमैं आकुलतामयी दुःखस्वरूप हैं तातैं ते ब्रह्मादिक इष्ट देव कहे ते तौ रागादिक काम क्रोधादिकरि युक्त है, अज्ञान तपके फलतैं केई जीव सर्व लोकमैं चमत्कारसहित राजादिक बडी पदवी पावै ताकू लोग बडा मानि लोक ब्रह्मादिक भगवान कहने लगिजाय, कहै जो–ये परमेश्वर ब्रह्मका अवतार है सो ऐसे मानें तौ कछू मोक्षमार्गी तथा मोक्षरूप होय नांही, ससारीही रहैं हैं। ऐसैंही अन्यदेव सर्व पदवी वाले जाननें ते आपही रागादिककरि दु.खरूप हैं जन्ममरण करि सहित हैं ते परका ससारका दु'ख कैसैं मेटैंगे। अर तिनिके मतमैं विघ्नका टलना अर राजादिक बडे पुरुष होते कहे सो ये तौ जीवनिकै पूर्वैं कछू शुभ कर्म बंधेथे तिनिका फल है, पूर्वजन्ममैं किंचित् शुभ परिणाम कियाथा तातैं पुण्यकर्म बंध्याथा ताका उदयतैं कछू विघ्न टलै है अर राजादिक पदवी पावै है सो पूर्वैं कछु अज्ञानतप किया होय ताका फल है सो ये तौ पुण्यपापरूप संसारकी चेष्टा है, यामैं कछू बडाई नाही; बडाई तौ जो है जातैं ससारका भ्रमण मिटै सो तौ वीतराग विज्ञान भावनिहीतैं मिटैगा, सो तिस वीतराग विज्ञान भावनियुक्त पच परमेष्ठी हैं तेही संसारका भ्रमणके दुःख मेटनेंकू कारण हैं। वर्त्तमानमैं कछू पूर्व शुभ कर्मका उदयतैं पुण्यका चमत्कार देखि तथा पापका दु ख देखि भ्रम नहीं उपजावना, पुण्य पाप दोऊ संसार हैं तिनितैं रहित मोक्ष है, सो संसारतैं छूटि मोक्ष होय तैसाही उपाय करना। अर वर्त्तमानकाभी विघ्न जैसा पंचपरमेष्ठीका नाम मंत्र ध्यान दर्शन स्मरणतैं मिटैगा तैसा अन्यके नामादिकतैं तौ न मिटैगा जातैं ये पचपरमेष्ठी ही शांतिरूप हैं केवल शुभ परिणामनिहीकूं

कारण हैं। बहुरि अन्य इष्टके रूप हैं ते तौ रौद्ररूप हैं तिनिका तो दर्शन स्मरण है सो रागादिक तथा भयादिकका कारण है, तिनितैं तौ शुभ परिणाम होता दीखै नांहीं। कोईकै कदाचित् कछू धर्मानुरागके वशतैं शुभपरिणाम होय तो सो तिनितै तौ न भया कहिये, वा प्राणीकै स्वाभाविक धर्मानुरागके वशतैं होय है। तातैं अतिशयवान शुभपरिणामका कारण तौ शांतिरूप पंच परमेष्ठीहीका रूप है तातैं याहीका आराधन करना, वृथा खोटी युक्ति सुनि भ्रम नहीं उपजावना, ऐसैं जानना ॥

इतिश्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित मोक्षप्राभृतकी
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रजीछावड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥६॥

॥ श्री ॥

अथ लिंगपाहुड

—॥ ७ ॥—

अथ लिंगपाहुडकी वचनिका लिखिए है;—

दोहा ।

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय ।
कर्म नाशि शिवसुख लियो वंदूं तिनिके पांय ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकै अर्थि जिनि मुनिनिनैं शिवसुख पाया तिनिकूं नमस्कार करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृत गाथाबद्ध लिंगपाहुडनाम ग्रंथ है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है,—तहां प्रथमही आचार्य मंगलकै अर्थि इष्टकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करै हैं,—

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं ।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण ॥ १ ॥

कृत्वा नमस्कारं अर्हतां तथैव सिद्धानाम् ।
वक्ष्यामि श्रमणलिंगं प्राभृतशास्त्रं समासेन ॥ १ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—मैं अरहंतनिकूं नमस्कार करि अर तैसैं ही सिद्धनिकूं नमस्कार करि अर श्रमण लिंगका है निरूपण जामैं ऐसा पाहुडशास्त्र है ताहि कहूंगा ॥

भावार्थ—इस कालमैं मुनिका लिंग जैसा जिनदेवनैं कह्या है तैसामैं विपर्यय भया ताका निषेध करनेंकूं यह लिंगकै निरूपणका शास्त्र आचार्यनैं रच्या है, ताकी आदिमैं घातिकर्मका नाशकरि अनंत चतुष्टय पाय अरहंत भये तिनिनैं यथार्थ श्रमणका मार्ग प्रवर्त्ताया अर तिस लिंगकूं साधि सिद्ध भये; ऐसैं अरहंत सिद्ध तिनिकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगै कहै हैं जो—लिंग बाह्यभेष है सो अंतरंगधर्मसहित कार्यकारी है,—

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती ।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥

धर्मेण भवति लिंगं न लिंगमात्रेण धर्मसंप्राप्तिः ।
जानीहि भावधर्मं किं ते लिंगेन कर्त्तव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—धर्मकरि सहित तौ लिंग होय है बहुरि लिंगमात्रहीकरि धर्मकी प्राप्ति नांहीं है, तातैं हे भव्यजीव ! तू भावरूप धर्म है ताहि जानि अर केवल लिंगहीकरि तेरै कहा कार्य होय है, कछू भी नांही ॥

भावार्थ-इहां ऐसा जानो जो-लिंग ऐसा चिह्नका नाम है सो बाह्य भेष धारै सो मुनिका चिह्न है सो ऐसा चिह्न जो अंतरंग वीतराग स्वरूप धर्म होय तौ ता सहित तौ यह चिह्न सत्यार्थ होय है अर तिस वीतरागस्वरूप आत्माका धर्म विना लिंग जो बाह्य भेष तिस मात्रकरि धर्मकी संपत्ति जो सम्यक् प्राप्ति सो नाही है, तातैं उपदेश किया है जो अंतरंग भावधर्म जो रागद्वेष रहित आत्माका शुद्ध ज्ञान दर्शन रूप स्वभाव सो धर्म है ताहि हे भव्य ! तू जानि, अर इस बाह्य लिंग भेष मात्रकरि कहा कार्य है कछुभी नाहीं । बहुरि इहां ऐसाभी जाननां जो-जिनमतमैं लिंग तीन कहे हैं-एकतौ मुनिका यथाजात दिगम्बर लिंग १ दूजा उत्कृष्ट श्रावकका २ तीजा आर्यिकाका ३ इनितीनूंही लिंगनिकूं धारि भ्रष्ट होय अर जो कुक्रिया करै ताका निषेध है। तथा अन्य

मतके केई भेप हैं तिनिकूं भी धारि जो कुक्रिया करै सो भी निंदाही पावै, तातैं भेपधारि कुक्रिया न करनीं ऐसा जनाया है ॥ २ ॥

आगैं कहै हैं जो जिनका लिंग जो-निर्ग्रंथ दिगंबररूप ताहि ग्रहण- करि जो कुक्रिया करि हास्य करावै सो पापबुद्धि है;--

जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं ।
उवहसइ लिंगिभावं लिंगिम्मिय णारदो लिंगी ॥३॥

यः पापमोहितमतिः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम् ।
उपहसति लिंगिभावं लिंगिषु नारदः लिंगी ॥ ३ ॥

अर्थ—जो जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकरदेवका लिंग नग्न दिगंबररूपकूं ग्रहण करि अर लिंगीपणांका भावकूं उपहसै है हास्यमात्र गिनै है, सो कैसा है-लिंगी कहिये भेपी तिनिविपैं नारद लिंगी है तैसा है। अथवा या गाथाका चौथा पादका पाठान्तर ऐसा है—"लिंग णासेदि लिंगीण" याका अर्थ—यह जो लिंगी जो अन्य केई लिंगका धारी तिनिका लिंगकूं भी नष्ट करै है, ऐसा जनावै है जो लिंगी सर्व ऐसेही हैं, कैसा है लिंगी- पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ॥

भावार्थ-लिंगधारी होय अर पापबुद्धिकरि किछू कुक्रिया करै तब तानैं लिंगीपणां हास्यमात्र गिण्या, किछू कार्यकारी गिण्या नाहीं। लिंगीपणा तौ भावशुद्धतैं सोहै था सो भाव विगडे तब बाह्य कुक्रिया करनैं लग्या तब यानैं तिस लिंगकूं लजाया अर अन्य लिंगीनिका लिंगकूं भी कलंक लगाया, लोक कहने लगे-जो लिंगी ऐसेही होय हैं। अथवा जैसैं नार- दका भेष है तामैं वह स्वइच्छानुसार स्वच्छंद जैसैं प्रवर्त्तै है तैसैं यह भी भेषी ठहर्‌या। तातैं आचार्य ऐसा आशय धारि कह्या है,जो-जिनेन्द्रका भेपकूं लजावनां योग्य नांही ॥ ३ ॥

आगैं लिंग धारि कुक्रिया करै ताकूं प्रगट कहै हैं;—

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥४॥

नृत्यति गायति तावत् वाद्यं वादयति लिंगरूपेण ।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो लिंगरूप करि नृत्य करै है गावै है वादित्र बजावै है, सो कैसा है—पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा है, सो तिर्यंचयोनि है, पशु है; श्रमण नांही ॥

भावार्थ-लिंग धारि भाव बिगाडि नाचनां गावना बजावनां इत्यादि क्रिया करै सो पापबुद्धि है पशु है अज्ञानी है, मनुष्य नांही, मनुष्य होय तौ श्रमणपणा राखै। जैसैं नारद भेषधारी नाचै गावै है बजावै है तैसैं यह भी भेषी भया तब उत्तमभेषकूं लजाया, तातैं लिंग धारि ऐसा होना युक्त नाही ॥ ४ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्ट झाएदि बहुपयत्तेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो॥५॥

समूहयति रक्षति च आर्त्तं ध्यायति बहुप्रयत्नेन ।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो निर्ग्रंथ लिंग धारि अर परिग्रहकूं संग्रहरूप करै है अथवा ताकी वांछा चिंतवन ममत्व करै है, बहुरि तिस परिग्रहकी रक्षा करै है ताका बहुत यत्न करै है, ताके अर्थि आर्त्तध्यान निरन्तर ध्यावै है, सो कैसा है-पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा तिर्यंचयोनि है पशु है अज्ञानी है, श्रमण तौ नांही श्रमणपणांकूं बिगाडै है, ऐसैं जाननां ॥५॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

कलहं वादं जूवा णिच्चं वहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥ ६ ॥
कलहं वादं द्यूतं नित्यं वहुमानगर्वितः लिंगी।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥ ६ ॥

अर्थ—जो लिंगी वहुत मानकषायकरि गर्ववान भया निरंतर कलह करै है वाद करै है द्यूतक्रीडा करै है सो पापी नरककूं प्राप्त होय है, कैसा है लिंगी—पाप करि ऐसैं करता संता वर्त्तै है ॥

भावार्थ—जो गृहस्थरूप करि ऐसी क्रिया करै है ताकूं तौ यह उराहना नाही जातैं कदाचित् गृहस्थ तौ उपदेशादिकका निमित्त पाय कुक्रिया करता रह जाय तौ नरक न जाय। बहुरि लिंग धारि तिसरूपकरि कुक्रिया करै तौ ताकूं उपदेश भी न लागै, यातैं नरककाही पात्र होय है ॥ ६ ॥

आगै फेरि कहै हैं,—

पा[1]ओपहदभावो सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकांतारे ॥ ७ ॥
पापोपहतभावः सेवते च अब्रह्म लिंगिरूपेण।
सः पापमोहितमतिः हिंडते संसारकांतारे ॥ ७ ॥

अर्थ—जो पापकरि उपहत कहिये घात्या गया है आत्मभाव जाका ऐसा भया संता लिंगीका रूपकरि अब्रह्म सेवै है, सो पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा लिंगी संसाररूपी कांतार जो वन ताविषैं भ्रमै है ॥

भावार्थ—पहले तौ लिंगधारण किया अर पीछैं ऐसा पाप परिणाम भया जो व्यभिचार सेवनें लग्या, ताकी पापबुद्धिका कहा कहना? ताका संसारमैं भ्रमण क्यों न होय? जाकै अमृतहू जहररूप-परिणमै ताके

१ इस छंदका प्रथम द्वितीयपाद यति भंग है-

रोग जानेकी कहा आशा ? तैसैं यह भया, ऐसेका संसार कटनां कठिन है ॥ ७ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण ।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि ॥ ८ ॥
दर्शनज्ञानचारित्राणि उपधानानि यदि न लिंगरूपेण ।
आर्त्तं ध्यायति ध्यानं अनंतसंसारिकः भवति ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि कहिये जो लिंगरूप करि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं तौ उपधानरूप न किये धारण न किये अर आर्त्तध्यानकूं ध्यावै है तौ ऐसा लिंगी अनंतससारी होय है ॥

भावार्थ—लिंग धारण करि दर्शन ज्ञान चारित्रका सेवन करनां था सो तौ न किया अर परिग्रह कुटुम्ब आदि विषयनिका परिग्रह छोड्या ताकी फेरि चिंताकरि आर्त्तध्यान ध्यावनें लगा तब अनंतससारी क्यों न होय ? याका यह तात्पर्य है जो–सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तौ पहले भये नांही अर किछू कारण पाय लिंग धार्‍या, ताकी अवधि कहा ? पहली भाव शुद्ध करि लिंग धारना युक्त है ॥ ८ ॥

आगैं कहै हैं जो—भावशुद्धि विना गृहस्थचारा छोड़े यह प्रवृत्ति होय है,—

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च ।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥ ९ ॥
यः योजयति विवाहं कृषिकर्मवाणिज्यजीवघातं च ।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥ ९ ॥

अर्थ—जो गृहस्थनिके परस्पर विवाह जोडै है सगपण करावै है, बहुरि कृषिकर्म कहिये खेती वाहना किसानका कार्य अर वाणिज्य कहिये

व्यापार विणज वैश्यका कार्य अर जीवघात कहिये वैद्यकर्मके अर्थि जीव घात करनां अथवा धीवरादिकका कार्य इनि कार्यनिकूं करै है सो लिंगरूपकरि ऐसैं करता पापी नरककूं प्राप्त होय है ।।

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि शुभभाव विना लिंगी भया था, याकी भावकी वासना मिटी नांही तब लिंगीका रूप धारि करि भी करनेंलगा आप विवाह न करै तोऊ गृहस्थनिकै सगपण कराय विवाह करावै तथा खेती विणज जीवहिंसा आप करै तथा गृहस्थनिकूं करावै, तब पापी भया संता नरक जाय । ऐसे भेष धारनेंतैं तौ गृहस्थ ही भला था, पदवीका पाप तौ न लागता, तातैं ऐसा भेष धारणा उचित नांही यह उपदेश है ।। ९ ।।

आगैं फेरि कहै हैं,—

चोराण लाउराण य जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं ।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं ।।१०।।

चौराणां लापराणां च युद्धं विवादं च तीव्रकर्मभिः ।
यंत्रेण दीव्यमानः गच्छति लिंगी नरकवासं ।।१०।।

अर्थ—जो लिंगी ऐसैं प्रवर्त्तै है सो नरकवासकूं प्राप्त होय है जो चौरनिके अर लापर कहिये झूंठ बोलनेंवालानिकै युद्ध अर विवाद करावै है वहुरि तीव्रकर्म जो जिनिमैं बहुत पाप उपजै ऐसे तीव्र कषायनिके कार्य तिनिकरि तथा यंत्र कहिये चौपडि सतरंज पासा हिंदोला आदि ताकरि क्रीडा करता संता वर्त्तै है, ऐसैं वरतता नरक जाय है । इहां 'लाउराण का पाठांतर ऐसाभी है राउलाणं,' याका अर्थ—रावल कहिये राजकार्य करनेंवाले तिनिकै युद्ध विवाद करावै, ऐसैं जाननां ।।

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'समाएण' ऐसा पाठ है जिसकी छाया 'मिथ्यावादिभिः' इस प्रकार है ।।

भावार्थ—लिंग धारण करि ऐसे कार्य करै तौ सो नरक पावैही यामैं संशय नाही ॥ १० ॥

आगैं कहै हैं जो लिंग धारि लिंगयोग्य कार्य करता दुःखी रहै है तिनि कार्यनिका आदर नाही करै है, सो भी नरकमैं जाय है,—

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्ममि ।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥ ११ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रेषु तपः संयमनियमनित्यकर्मसु ।
पीडयते वर्त्तमानः प्राप्नोति लिंगी नरकवासम् ॥११॥

अर्थ—जो लिंगधारणकरि इनि क्रियानिविषैं करता बाध्यमान होय पीडा पावै है दुःखी होय है सो लिंगी नरकवासकूं पावै है। ते क्रिया कहा ? प्रथम तौ दर्शन ज्ञान चारित्र तिनिविषैं इनिका निश्चय व्यवहार-रूप धारण करना, बहुरि तप अनशनादिक बारह प्रकार तिनिका शक्तिसारू करना, बहुरि संयम-इंद्रिय मनका वशि करना जीवनिकी रक्षा करनी, नियम कहिये नित्य किछू त्याग करना, बहुरि नित्यकर्म कहिये आवश्यक आदि क्रियाका कालकी काल नित्य करना, ये लिंगकै योग्य क्रिया हैं, इनि क्रियानिविषैं करता दुःखी होय है, सो नरक पावै है ॥

भावार्थ—लिंगधारणकरि ये कार्य करनें थे तिनिका तौ निरादर करै अर प्रमाद सेवै, लिंगकै योग्य कार्य करता दुःखी होय, तब जानिये—याकै भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नाही भया। अर भाव बिगडै ताका फल तौ नरकही होय, ऐसैं जानना ॥ ११ ॥

आगैं कहै हैं जो भोजन विषैं भी रसनिका लोलुपी होय सो भी लिंगकूं लजावै है;—

कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं ।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण समणो ॥ १२ ॥

कंदर्पादिषु वर्त्तते कुर्वाणः भोजनेषु रसगृद्धिम् ।
मायावी लिंगव्यवायी तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१२॥

अर्थ—जो लिंग धारि करि भोजनविषैं भी रसकी गृद्धि कहिये अति आसक्तता ताहि करता वर्तै है सो कंदर्प आदिकविषै वर्त्तै है, कामसेवनकी वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक जाकै प्रचुर बढै है तब 'लिंगव्यवायी' कहिये व्यभिचारी होय है, मायावी कहिये कामसेवनकै अर्थि अनेक छल करना विचारै है, जो ऐसा होय है सो तिर्यंचयोनि है पशुतुल्य है मनुष्य नाही याहीतैं श्रमण नांही ॥

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि आहारविषैं लोलुपता करने लग्या तौ गृहस्थचारामैं अनेक रसीले भोजन मिले थे, काहेकूं छोड़े, तातैं जानिये है जो आत्मभावनाका रसकूं पहचान्या नाही तातैं विषयसुखकी ही चाहि रही तब भोजनके रसकी लारके अन्य भी विषयनिकी चाहि होय तब व्यभिचार आदिमैं प्रवर्त्ति करि लिंगकूं लजावै, ऐसे लिंगतैं तौ गृहस्थचाराही श्रेष्ठ है, ऐसैं जाननां ॥ १२ ॥

आगैं फेरि याहीका विशेष कहै हैं,—

धावदि पिंडणिमित्त कलहं काऊण भुंजदे पिंडं ।
अवरुपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ॥१३॥

धावति पिंडनिमित्तं कलहं कृत्वा भुंक्ते पिंडम् ।
अपरप्ररूपी सन् जिनमार्गी न भवति सः श्रमणः ॥१३॥

अर्थ—जो लिंगधारी पिंड जो आहार ताकै निमित्त दौडै है, आहारकै निमित्त कलह करि आहारकूं भुंजै है खाय है, बहुरि ताकै निमित्त अन्यतैं परस्पर ईर्षा करै है सो श्रमण जिनमार्गी नांही है ॥

भावार्थ—इस कालमैं जिनलिंगतैं भ्रष्ट होय पहले अर्द्धफालक भये पीछैं विनिमैं श्वेतांबरादिक संघ भये तिनिनैं शिथिलाचार पोषि लिंगकी प्रवृत्ति बिगाडी, तिनिका यह निषेध है। तिनिमैं अब भी केई ऐसे देखिये हैं जो—आहारकै अर्थि शीघ्र दोडे है ईर्यापथकी सुध नांहीं, बहुरि आहार गृहस्थका घरसूं ल्याय दोय च्यारि सामिल बैठि खाय तामैं बटवारामैं सरस नीरस आवै तब परस्पर कलह करै बहुरि तिसके निमित्त परस्पर ईर्षा करै, ऐसैं प्रवर्तैं ते काहेके श्रमण? ते जिनमार्गी तौ नाही कलिकालके भेषी हैं। विनिकूं साधु मानैं हैं ते भी अज्ञानी हैं ॥ १३ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं ।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ॥ १४ ॥

गृह्णाति अदत्तदानं परनिंदामपि च परोक्षदूषणैः ।
जिनलिंगं धारयन् चौरेणेव भवति सः श्रमणः ॥१४।

अर्थ—जो विना दिया तौ दान ले है अर परोक्ष परके दूषणनिकरि परकी निंदा करै है सो जिनलिंगकूं धारता संता भी चौरकी ज्यों श्रमण है ॥

भावार्थ—जो जिनलिंग धारि विना दिया आहार आदिकूं ग्रहण करै परकै देनेकी इच्छा नाही किछू भयादिक उपजाय लेना तथा निरादरतैं लेना, छिपिकरि कार्य करना ये तौ चौरके कार्य हैं। यह भेष धारि ऐसैं करनेंलग्या तब चौरही ठहऱ्या तातैं ऐसा भेषी होना योग्य नांही ॥

आगैं कहै हैं जो लिंग धारि ऐसैं प्रवर्तैं सो श्रमण नांहीं;—

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण ।
इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१५॥

उत्पतति पतति धावति पृथिवीं खनति लिंगरूपेण ।
ईर्यापथं धारयन् तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१५॥

अर्थ—जो लिंग धारकरि ईर्यापथ सोधि करि चालना था तामैं सोधिकरि न चालै दौड़ता चालता सता उछलै गिरपडै फेरि उठिकरि दौडै बहुरि पृथ्वीकूं खोदै चालतैं ऐसा पग पटकै जो तामैं पृथ्वी खुदि जाय ऐसैं चालै सो तिर्यंचयोनि है पशु अज्ञानी है, मनुष्य नाहीं ॥ १५ ॥

आगै कहै हैं जो वनस्पति आदि स्थावरजीवनिकी हिंसातैं कर्मवध होय है ताकूं न गिनता स्वच्छन्द होय प्रवर्तै है, सो श्रमण नांही;-

वंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि ।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥

वंधं नीरजाः सन् सस्यं खंडयति तथा च वसुधामपि ।
छिनत्ति तरुगणं बहुशः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥

अर्थ–जो लिंग धारणकरि अर वनस्पति आदिकी हिंसातैं वध होय है ताकूं नाहीं दूषता संता बंधकूं न गिनता संता सस्य कहिये धान्य ताकूं खंडै है; बहुरि तैसैही वसुधा कहिये पृथिवी ताहि खडै है खोदै है, बहुरि बहुत बार तरुगण कहिये वृक्षनिका समूह तिनिकू छेदै है, ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है श्रमण नांही ॥

भावार्थ-वनस्पति आदि स्थावरजीव जिनसूत्रमैं कहे है अर तिनिकी हिंसातैं कर्मबंध कह्या है ताकूं निर्दोष गिणता कहै है जो यामैं काहेका दोष है काहेका वध है ऐसैं मानता तथा वैद्यकर्मादिकके निमित्त औषधादिककूं धान्यकूं तथा पृथ्वीकूं तथा वृक्षनिकू खंडै है खोदै है छेदै है सो अज्ञानी पशु है, लिंग धारि श्रमण कहावै है सो श्रमण नांही है ॥१६॥

आगैं कहै हैं जो लिंग धारणकरि स्त्रीनितैं राग करै है अर परकूं दूषण दे है सो श्रमण नाहीं;—

रागो करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेइ ।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१७॥
रागं करोति नित्यं महिलावर्गं परं च दूषयति ।
दर्शनज्ञानविहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१७॥

अर्थ—जो लिंग धारण करि स्त्रीनिके समूहनि प्रति तौ निरंतर राग-प्रीति करै है अर पर जो अन्य कोई निर्दोष हैं तिनिकूं दूषै है दूषण दे है कैसा है सो दर्शन ज्ञानकरि हीन है, ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है पशुसमान है अज्ञानी है, श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारण करै ताकै सम्यग्दर्शन ज्ञान होय है, अर परद्रव्यनितैं राग द्वेष न करना ऐसा चारित्र होय है। तहां जो स्त्रीसमूहनितैं तौ रागप्रीति करै है अर अन्यकूं दूषण लगाय द्वेष करै है व्यभिचारीकासा स्वभाव है तौ ताकै काहेका दर्शन ज्ञान ? अर काहेका चारित्र ? लिंगधारि लिंगकै करनेंयोग्य था सो न किया तब अज्ञानी पशु समानही है श्रमण कहावै है सो आपभी मिथ्यादृष्टी है अर अन्यकूं मिथ्यादृष्टी करनेंवाला है, ऐसेका प्रसंग युक्त नांही ॥१७॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

पव्वज्जहीणगहिणं णेहिं सीसम्मि वट्टदे बहुसो ।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१८॥
प्रव्रज्याहीनगृहिणि स्नेहं शिष्ये वर्त्तते बहुशः ।
आचारविनयहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१८॥

अर्थ—जो लिंगीकै प्रव्रज्या जो दीक्षा ताकरि रहित जे गृहस्थ तिनिपरि अर शिष्यनिविषैं स्नेह बहुत वर्त्तै अर आचार कहिये मुनिनिकी क्रिया अर गुरुनिका विनयकरि रहित होय सो तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नांही है ॥

भावार्थ—गृहस्थनितैं तौ बार बार लालपाल राखै अर शिष्यनिसूं स्नेह बहुत राखै अर मुनिकी प्रवृत्ति आवश्यक आदि किछू करै नाही गुरुनिसू प्रतिकूल रहै विनयादिक करै नांही ऐसा लिंगी पशुसमान है ताकू साधु न कहिये ॥ १८ ॥

आगैं कहै हैं जो लिंगधारि ऐसें पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्त्तै है सो श्रमण नाही, ऐसा संक्षेपकरि कहै हैं;—

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो॥१९॥

एवं सहितः मुनिवर ! संयतमध्ये वर्त्तते नित्यम् ।
बहुलमपि जानन् भावविनष्टः न सः श्रमणः॥ १९ ॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार प्रवृत्तिसहित जो वर्त्तै है सो हे मुनिवर ! जो ऐसा लिंगधारी संयमी मुनिनिकै मध्यभी निरन्तर रहै है अर बहुत शास्त्रनिकूं भी जानता है तौऊ भावकरि नष्ट है, श्रमण नांही है ॥ १९ ॥

भावार्थ—ऐसा पूर्वोक्त प्रकारका लिंगी जो सदा मुनिनिमैं रहै है अर बहुत शास्त्र जानै है तौऊ भाव जो शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणाम ताकरि रहित है, तातैं मुनि नांही, भ्रष्ट है, अन्य मुनिनिके भाव बिगाडनेंवाला है ॥ १९ ॥

आगैं फेरि कहै हैं जो स्त्रीनिका संसर्ग बहुत राखै सो भी श्रमण नांही है,—

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देहि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो॥२०॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि महिलावर्गे ददाति विश्वस्तः ।
पार्श्वस्थादपि स्फुटं विनष्टः भावविनष्टः न सः श्रमणः॥

अर्थ—जो लिंग धारि करि स्त्रीनिके समूहविषैं तिनिका विश्वास-करि तथा तिनिकूं विश्वास उपजाय दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दे है तिनिकूं सम्यक्त्व बतावै है पढनां पढावनां ज्ञान देहै, दीक्षा दे है, प्रवृत्ति सिखावै है, ऐसैं विश्वास उपजाय तिनिमैं प्रवर्त्तै है सो ऐसा लिंगी पार्श्वस्थ तै भी निकृष्ट है, प्रगट भाव करि विनष्ट है श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारि स्त्रीनिकूं विश्वास उपजाय तिनिसूं निरंतर पढनां पढावनां लाल पाल राखै ताकूं जानिये—याका भाव खोटा है। पार्श्वस्थ भ्रष्ट मुनिकूं कहिये है तिसतैं भी ये निकृष्ट है, ऐसेकूं साधु न कहिये ॥ २० ॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

पुंच्छलिघरि जो भुंजइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो ॥ २१ ॥

पुंश्चलीगृहे यः भुंक्ते नित्यं संस्तौति पुष्णाति पिंडं।
प्राप्नोति बालस्वभावं भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥२१॥

अर्थ—जो लिंगधारी अर पुंश्चली जो व्यभिचारिणी स्त्री ताकै घर भोजन लेहै आहार करै है अर नित्य ताकी स्तुति करै है—जो यह बडी धर्मात्मा है याकै साधुनिकी बडी भक्ती है ऐसैं नित्य ताकूं सराहै ऐसैं पिंडकूं पालै है सो ऐसा लिंगी बालस्वभावकूं प्राप्त होय है, अज्ञानी है, भावकरि विनष्ट है, सो श्रमण नांही है ॥

भावार्थ—जो लिंग धारि व्यभिचारिणीका आहार खाय पिंड पालै ताकी नित्य सराहना करै, तब जानिये—यह भी व्यभिचारी है अज्ञानी है, ताकूं लज्जाभी न आवै, ऐसैं भावकरि विनष्ट है मुनिपणांके भाव नाही, तब मुनि काहेका ? ॥ २१ ॥

आगैं इस लिंगपाहुडकूं संपूर्ण करै हैं अर कहैं हैं जो—धर्मकूं यथार्थ पालै है सो उत्तम सुख पावै है,—

इय लिंगपाहुडमिणं सव्वं बुद्धेहिं देसियं धम्मं ।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं ॥ २२ ॥

इति लिंगप्राभृतमिदं सर्वं बुद्धैः देशितं धर्मम् ।
पालयति कष्टसहितं सः गाहते उत्तमं स्थानम् ॥ २२ ॥

अर्थ—ऐसैं यह लिंगपाहुडक शास्त्र सर्वबुद्ध जे ज्ञानी गणधरादिक तिनिनैं उपदेश्या है ताकूं जानिकरि अर जो मुनि धर्मकूं कष्टसहित बडा जतन करि पालै है राखै है सो उत्तमस्थान/जो मोक्ष ताहि पावै है ॥

भावार्थ—यह मुनिका लिंग है सो बडा पुण्यका उदयतैं पाइये है ताकूं पायकरि फेरि खोटे कारण मिलाय ताकूं विगाडै है तौ जानिये यह बडा निर्भागी है–चिंतामणि रत्न पाय कौडी साटै गमावै है तातैं आचार्य उपदेश किया है–जो ऐसा पद पाय याकूं बडा यत्नसूं राखणा—कुसंगतिकरि विगाडैगा तौ जैसैं पहलैं संसार भ्रमण था तैसैं फेरि ससारमैं अनंतकाल भ्रमण होयगा अर यत्नतैं पालैगा तौ शीघ्रही मोक्ष पावैगा; तातैं जाकूं मोक्ष चाहिये सो मुनिधर्मकूं पाय यत्नसहित पालो, परीषहका उपसर्गका उपद्रव आवै तौऊ चिगो मति यह श्री सर्वज्ञदेवका उपदेश है ॥ २२ ॥

ऐसैं यह लिंगपाहुड ग्रंथ पूर्ण किया ताका संक्षेप ऐसैं जो—इस पंचमकालमैं जिनलिंग धारि फेरि काल दुर्भिक्षके निमित्ततैं भ्रष्ट भये भेप बिगाड्या अर्द्धफालक कहाये, तिनिमैं फेरि श्वेताम्बर भये तिनिमैं भी यापनीय भये, इत्यादि होय शिथिलाचारके पोषनेंके शास्त्र रचि स्वच्छद भये, तिनिमैं केतेक निपट निंद्य प्रवृत्ति करने लगे, तिनिका निषेधका मिषकरि सर्वके उपदेशकूं यह ग्रंथ है ताकूं समझिकरि श्रद्धान करनां। ऐसे निंद्य आचरणवालेनिकूं साधु मोक्षमार्गी न माननें, तिनिकूं वंदन पूजन न करनां यह उपदेश है ॥

छप्पय ।

लिंग मुनीको धारि पाप जो भाव बिगाडै
सो निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै ।
ताकूं पूजै थुवै वंदना करै जु कोई
ते भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई ॥
यातैं जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धिमैं थिर रहे ।
तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे॥१॥

दोहा ।

अंतर बाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राकूं धारि ।
भये सिद्ध आनंदमय वंदूं जोग संवारि ॥ २ ॥

इति श्रीकुंदकुंदाचार्यस्वामि विरचित
श्रीलिंगप्राभृतशास्त्रकी
जयपुरनिवासि प. जयचन्द्रजीछाबड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ७ ॥

❀ श्री ❀

अथ शीलपाहुड

—(:-:) ८ (:-:)—

अथ शीलपाहुडग्रंथकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—

❀ दोहा ❀

भवकी प्रकृति निवारिकै, प्रगट किये निजभाव।
है अरहंत जु सिद्ध फुनि वंदूं तिनि धरि चाव ॥ १ ॥

ऐसैं इष्टके नमस्काररूप मंगलकरि शीलपाहुडनाम ग्रंथ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत गाथाबधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां प्रथम श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ग्रंथकी आदिकै विषैं इष्टकूं नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करैं हैं,—

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह ॥ १ ॥

वीरं विशालनयनं रक्तोत्पलकोमलसमपादम्।
त्रिविधेन प्रणम्य शीलगुणान् निशाम्यामि ॥ १ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं वीर कहिये अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी परम भट्टारक ताहि मन वचन कायकरि नमस्कारकरि अर शील जो निज भावरूप प्रकृति ताके गुणनिकूं अथवा शील अर सम्य-

दर्शनादिक गुण तिनिकूं कहूंगा; कैसे हैं श्रीवर्द्धमानस्वामी—विशालनयन हैं, तिनिकै बाह्य तौ पदार्थनिके देखनेकूं नेत्र विशाल हैं विस्तीर्ण हैं सुन्दर हैं, बहुरि अंतरंग केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र समस्त पदार्थनिकूं देखनें-वाले हैं; बहुरि कैसे हैं—'रक्तोत्पलकोमलसमपाद' कहिये रक्त कमल सारिखे कोमल जिनिके चरण हैं, ऐसे अन्यके नांही; तातैं सर्वकरि नमवनें योग्य हैं पूजनें योग्य हैं। बहुरि ताका दूजा अर्थ ऐसा भी होय है—जो रक्त कहिये रागरूप आत्माका भाव उत्पल कहिये दूर करनां ताविषैं कोमल कहिये कठोरतादिदोषरहित अर सम कहिये राग द्वेष करि रहित पाद कहिये वाणीके पद जिनिके, कोमल हितमित मधुर राग द्वेष-रहित जिनिके वचन प्रवर्त्ते हैं तिनितैं सर्वका कल्याण होवे है ॥

भावार्थ—ऐसे वर्द्धमानस्वामीकूं नमस्काररूप मंगलकरि आचार्य शीलपाहुड ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगैं शीलका रूप तथा यातैं गुण होय है सो कहै हैं;—

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो ।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥ २ ॥

शीलस्य च ज्ञानस्य च नास्ति विरोधो बुधैः निर्दिष्टः ।
केवलं च शीलेन विना विषयाः ज्ञानं विनाशयंति ॥२॥

अर्थ—शीलकै अर ज्ञानकै ज्ञानीनिनैं विरोध न कह्या है ऐसा नांही जहां शील होय तहां ज्ञान न होय अर ज्ञान होय तहां शील न होय। बहुरि इहां णवरि कहिये विशेष है सो कहै हैं—शील विना विषय कहिये इंद्रियनिके विषय हैं ते ज्ञानकूं विनाशैं हैं नष्ट करैं हैं ज्ञानकूं मिथ्यात्व रागद्वेषमय अज्ञानरूप करैं हैं। इहां ऐसा जाननां जो—शीलनाम स्वभावका प्रकृतिका प्रसिद्ध है, तहां आत्माका सामान्यकरि ज्ञान है। तहां इस ज्ञानस्वभावमैं अनादिकर्मसंयोगतैं मिथ्यात्व राग णाम होय हैं सो यह ज्ञानकी प्रकृति कुशीलनाम पावे है यातैं

जे है, तातैं याकूं संसार प्रकृति कहिये इस प्रकृतिकूं अज्ञानरूप कहिये इस प्रकृतितैं संसार पर्यायविषै आपा मानै है तथा परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि करै है। बहुरि यह प्रकृति पलटैं तब मिथ्यात्व का अभाव कहिये तब संसारपर्यायविषै आपा न मानै है. परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय अर इस भावकी पूर्णता न होय तेतैं चारित्रमोहका उदयतैं कछू रागद्वेष कषाय परिणाम उपजै ताकूं कर्मका उदय जानै, तिनि भावनिकूं त्यागनेयोग्य जानैं, त्यागा चाहै ऐसो प्रकृति होय तब सम्यग्दर्शनरूपभाव कहिये, इस सम्यग्दर्शनभावतैं ज्ञानभी सम्यक् नाम पावै और यथापदवी चारित्रकी प्रवृत्ति होय जेता अंश रागद्वेष घटै तेता अंश चारित्र कहिये ऐसो प्रकृतिकूं सुशील कहिये, ऐसैं कुशील सुशील शब्दका सामान्य अर्थ है। तहां सामान्यकरि विचारिये तौ ज्ञानही कुशील है अर ज्ञानही सुशील है यातैं ऐसैं कह्या है जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नाहीं बहुरि जब संसार प्रकृति पलटि मोक्ष सन्मुख प्रकृति होय तब सुशील कहिये, तातैं ज्ञानमैं अर शीलमैं विशेष कह्या जो ज्ञानमैं सुशील न आवै तौ ज्ञानकूं इंद्रियनिके विषय नष्ट करैं ज्ञानकूं अज्ञान करैं तब कुशील नाम पावै। बहुरि इहां कोई पूछै—गाथामैं ज्ञान अज्ञानका तथा सुशील कुशीलका नाम तौ न कह्या, ज्ञान अर शील ऐसा ही कह्या है ताका समाधान जो पूर्वै गाथामैं ऐसीप्रतिज्ञा करी जो मैं शीलके गुणनिकूं कहूंगा तातैं ऐसा जान्या जाय है जो आचार्यके आशयमैं सुशीलहीके कहनेका प्रयोजन है, सुशीलहीकूं शीलनाम करि कहिये, शीलविना कुशील कहिये। बहुरि इहां गुणशब्द उपकारवाचक लेनां तथा विशेषवाचक लेना, शीलतैं उपकार होय है, तथा शीलका विशेष गुण है सो कहसी। ऐसैं ज्ञानमैं जो शील न आवै तौ कुशील होय इंद्रियनिके विषयनितैं आसक्ति होय तब ज्ञाननाम न पावै. ऐसैं जानना। बहुरि व्यवहारमैं शीलनाम स्त्रीका संसर्ग वर्जनेंकाभी है सो विषयसेवनकाही निषेध है, तथा परद्रव्यमात्रका संसर्ग छोडना आत्मामैं लीन होना सो परमब्रह्मचर्य है। ऐसैं ये शीलहीके प्रकार जानना॥ २॥

आगैं कहै है जो—ज्ञान भयेभी ज्ञानकी भावना अर विषयनितैं विरक्त होनां कठिन है;—

दुक्खेणेयदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥ ३ ॥

दुःखेनेयते ज्ञानं ज्ञानं ज्ञात्वा भावना दुःखम्।
भावितमतिश्च जीवः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रथम तौ ज्ञान है सोही दुःखकरि प्राप्त होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानभी पावै तौ ताकूं जानि करि ताकी भावना करना बारबार अनुभव करनां दुःखकरि होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानकी भावनासहित भी जीव होय तौ विषयनिकूं दुःखकरि त्यागै है ॥

भावार्थ—ज्ञानका पावना फेरि ताकी भावना करना फेरि विषयनिका त्यागना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं, अर विषयनिकूं त्यागे बिना प्रकृति पलटी न जाय तातैं पूर्वै ऐसा कह्या है जो विषय ज्ञानकूं बिगाडै है तातैं विषयनिका त्यागनां सोही सुशील है ॥ ३ ॥

आगैं कहै हैं जो यह जीव जेतैं विषयनिमैं प्रवर्त्तै है तेतै ज्ञानकूं नांही जानै है अर ज्ञानकूं जानैं विना विषयनितैं विरक्त होय तौऊ कर्मनिका क्षय नांही करै है,—

ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्म ॥ ४ ॥

तावत् न जानाति ज्ञानं विषयबलः यावत् वर्त्तते जीवः।
विषये विरक्तमात्रः न क्षिपते पुरातनं कर्म ॥ ४ ॥

अर्थ—जेतैं यह जीव विषयबल कहिये विषयनिके वशीभूत हू वर्त्तै,

है तेतैं ज्ञानकूं नांही जानै है बहुरि ज्ञानकूं जानें बिना केवलविषयनि-विषैं विरक्तमात्रहीकरि पूर्वैं बांधे जे कर्म तिनिका क्षय नांही करै है ॥

भावार्थ—जीवका उपयोग क्रमवर्त्ती है अर स्वस्थस्वभाव है यातैं जैसा ज्ञेयकूं जानै तिसकाल तिसतैं तन्मय होय वर्त्तै है तातैं जेतैं विषयनिमै आसक्त भया वर्त्तै है तेतैं ज्ञानका अनुभव न होय इष्ट अनिष्टभावही रहै, बहुरि ज्ञानका अनुभवन भये विना कदाचित् विषयनिकूं त्यागै तौ वर्त्तमानविषयनिकूं तौ छोडै परन्तु पूर्व कर्म बाधे थे तिनिका तौ ज्ञानका अनुभवन भये विना क्षय होय नांही, पूर्व कर्मका बधका क्षय करनेमैं ज्ञानहीकी सामर्थ्य है, तातैं ज्ञानसहित होय विषय त्यागना श्रेष्ठ है, विषयनिकूं त्यागि ज्ञानकी भावना करनां यही सुशील है ॥ ४ ॥

आगै ज्ञानका अर लिंगग्रहणका अर तपका अनुक्रम कहै हैं,—

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं ।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं ॥ ५ ॥

ज्ञानं चारित्रहीनं लिंगग्रहणं च दर्शनविहीनं ।
संयमहीनं च तपः यदि चरति निरर्थकं सर्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ज्ञान तौ चारित्ररहित होय सो निरर्थक है, बहुरि लिंगका ग्रहण दर्शनकरि रहित होय सो निरर्थक है, बहुरि संयमकरि रहित तप होय तौ निरर्थक है ऐसैं ए आचरण करै तौ सर्वनिरर्थक है ॥

भावार्थ—हेय उपादेयका ज्ञान तौ होय अर त्यागग्रहण न करै तौ ज्ञान निष्फल होय. यथार्थ श्रद्धान बिना भेष ले तौ निष्फल होय है, इन्द्रिय वश करनां जीवनिकी दया करना यह सयम है या विनां कछू तप करै तौ अहिसादिकका विपर्यय होय तब निष्फल होय; ऐसैं इनिका आचरण निष्फल होय है ॥ ५ ॥

आगैं याहीतैं कहै हैं जो—ऐसैं किये थोड़ा भी करै तौ बडा फल होय है;—

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं ।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ ॥ ६ ॥

ज्ञानं चारित्रशुद्धं लिंगग्रहणं च दर्शनविशुद्धम् ।
संयमसहितं च तपः स्तोकमपि महाफलं भवति ॥ ६ ॥

अर्थ—ज्ञान तौ चारित्रकरि शुद्ध, अर लिंगका ग्रहण दर्शन करि शुद्ध, संयमसहित तप ऐसैं थोड़ा भी आचरै तौ महाफलरूप होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान थोड़ाभी होय अर आचरण शुद्ध करै तौ बडा फल होय; बहुरि यथार्थश्रद्धापूर्वक भेष ले तौ बडाफल करै जैसैं सम्यग्दर्शन-सहित श्रावकही होय तौ श्रेष्ठ, अर तिस विना मुनिका भेष भी श्रेष्ठ नांही; बहुरि इन्द्रिसंयम प्राणसंयम सहित उपवासादिक तप थोडाभी करै तौ बडा फल होय, अर विषयाभिलाप अर दयारहित बडा कष्ट सहित तप करै तौऊ फल नाही, ऐसैं जानना ॥ ६ ॥

आगैं कहै हैं जो कोई ज्ञानकूं जानिकरि भी विषयासक्त रहैं हैं ते संसारहीमैं भ्रमैं हैं,—

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता ।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढा ॥ ७ ॥

ज्ञानं ज्ञात्वा नराः केचित् विषयादिभावसंसक्ताः ।
हिडंते चतुर्गतिं विषयेषु विमोहिता मूढाः ॥ ७ ॥

अर्थ—केई मूढ मोही पुरुष ज्ञानकूं जानिकरि भी विषयनिरूप भावनिकरि आसक्त भये संते चतुर्गतिरूप संसारमैं भ्रमै हैं जातैं विषयनिकरि विमोहित भये फेरि भी जगतमैं प्राप्त होसी तामैं भी विषय कषायनिका ही सस्कार है ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषय कषाय छोडनां भला है, नातरि ज्ञान अज्ञानतुल्यही है ॥ ७ ॥

आगैं कहै हैं जो ज्ञान पाय ऐसैं करै तब संसार कटै,—

जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा ।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ८ ॥

ये पुनः विषयविरक्ताः ज्ञानं ज्ञात्वा भावनासहिताः ।
छिन्दन्ति चतुर्गतिं तपोगुणयुक्ताः न सन्देहः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे ज्ञानकूं जानिकरि अर विषयनितैं विरक्त भये संते तिस ज्ञानकी बारबार अनुभवरूप भावनासहित होय हैं ते तप अर गुण कहिये मूलगुण उत्तरगुणयुक्त भये संते चतुर्गति रूप जो संसार है ताहि छेदै हैं काटैं हैं, यामैं संदेह नाही ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषय कषाय छोडि ज्ञानकी भावना करै, मूलगुण उत्तरगुण ग्रहणकरि तप करै सो संसारका भावकरि मुक्तिप्राप्त होय-यह शीलसहितज्ञानरूप मार्ग है ॥ ८ ॥

आगै ऐसै शीलसहित ज्ञानकरि जीव शुद्ध होय है ताका दृष्टान्त कहै है,—

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण ।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण ॥ ९ ॥

यथा कांचनं विशुद्धं धमत् खटिकालवणलेपेन ।
तथा जीवोऽपि विशुद्धः ज्ञानविसलिलेन विमलेन ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसैं कांचन कहिये सुवर्ण है सो खडिय कहिये सुहागा अर लूण इनिका लेपकरि विशुद्ध निर्मल कांतियुक्त होय है तैसैं जीव है सो भी विषयकषायनिके मलकरि रहित निर्मल ज्ञानरूप जलकरि पखाल्या कर्मनिकरि रहित विशुद्ध होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान है सो आत्माका प्रधान गुण है परन्तु मिथ्यात्व विषयनितैं मलिन है यातैं मिथ्यात्वविषयनिरूप मलकूं दूरिकरि याकी

भावना करै याका एकाग्रकरि ध्यान करै तौ कर्मनिका नाश करै, अनत-चतुष्टय पाय मुक्त होय शुद्ध आत्मा होय है; तहां सुवर्णका दृष्टान्त है सो जानना ॥ ९ ॥

आगैं कहै हैं जो ज्ञान पाय विषयासक्त होय है सो ज्ञानका दोष नांही है, कुपुरुषका दोष है,—

णाणस्स णत्थि दोसो कप्पुरिसाणो वि मंदवुद्धीणो ।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति ॥ १० ॥

ज्ञानस्य नास्ति दोषः कापुरुषस्यापि मंदबुद्धेः ।
ये ज्ञानगर्विताः भूत्वा विषयेषु रज्जन्ति ॥ १० ॥

अर्थ—जे पुरुष ज्ञानगर्वित होयकरि ज्ञानमदकरि विषयनिविषैं रंजित होय है सो यह ज्ञानका दोष नाहीं है ते मन्दबुद्धि कुपुरुष है तिनिका दोष है ॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि ज्ञानकरि वहुत पदार्थनिकूं जानै तब विषयनिमैं रंजायमान होय है सो यह ज्ञानका दोष है; तहां आचार्य कहै हैं-ऐसैं मति जानो-ज्ञान पाय विषयनिमैं रंजायमान होय है सो यह ज्ञानका दोष नाहीं है-यह पुरुष मदबुद्धि है अर कुपुरुष है ताका दोष है, पुरुषका होणहार खोटा होय तब बुद्धि बिगडजाय तब ज्ञानकूं पाय अर ताका मदमैं छकि जाय विषय कषायनिमैं आसक्त होय सो यह दोष-पुरुषका है, ज्ञानका नांही। ज्ञानका तौ कार्य वस्तुकूं जैसा होय तैसा जनायदेनाही है पीछै प्रवर्त्तना पुरुषका कार्य है, ऐसैं जाननां ॥ १० ॥

आगैं कहै हैं पुरुषकै ऐसैं निर्वाण होय है,—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण ।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं ॥११॥

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।
भविष्यति परिनिर्वाणं जीवानां चारित्रशुद्धानाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—ज्ञान दर्शन तप ये सम्यक्त्व भावसहित आचरे होय तब चारित्रकरि शुद्ध जीवनिकै निर्वाणकी प्राप्ति होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वकरि सहित ज्ञान दर्शन तप आचरै तब चारित्र शुद्ध होय राग द्वेष भाव मिटि जाय तब निर्वाण पावै, यह मार्ग है ॥११॥

आगै याहीकूं शीलप्रधानकरि नियमकरि कहै हैं,—

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाणदिढचरित्ताणं ।
णत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥१२॥

शीलं रक्षतां दर्शनशुद्धानां दृढचारित्राणाम् ।
अस्ति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥१२॥

अर्थ—जे पुरुष विषयनिविषैं विरक्त है चित्त जिनिका ऐसे हैं अर शीलकूं राखते संते हैं अर दर्शनकरि शुद्ध हैं अर दृढ है चारित्र जिनिका ऐसे पुरुषनिकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं नियमतैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—जो विषयनितैं विरक्त होनां है सो ही शीलकी रक्षा है, ऐसैं जे शीलकी रक्षा करैं हैं तिनिहीकै सम्यग्दर्शन शुद्ध होय है अर चारित्र अतीचाररहित शुद्ध दृढ होय है ऐसे पुरुषनिकै नियमकरि निर्वाण होय है। अर जे विषयनि विषैं आसक्त हैं तिनिकै शीलबिगडै तब दर्शन शुद्ध न होय चारित्र शिथिल होय तब निर्वाणभी न होय, ऐसैं निर्वाण मार्गमैं शीलही प्रधान है ॥ १२ ॥

आगैं कहै हैं जो कदाचित् कोई विषयनिसूं विरक्त न भया अर मार्ग विषयनितैं विरक्त होनेंरूपही कहै है ताकूं मार्गकी प्राप्ति होयभी है, अर जो विषयसेवनेकूं ही मार्ग कहै है तौ ताकै ज्ञानभी निरर्थक है;—

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं ।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ॥१३॥

विषयेषु मोहितानां कथितो मार्गोऽपि इष्टदर्शिनां ।
उन्मार्गं दर्शिनां ज्ञानमपि निरर्थकं तेषाम् ॥१३॥

अर्थ—जे पुरुष इष्ट मार्गके दिखावनेंवाले ज्ञानी हैं अर विषयनितैं विमोहित हैं तौऊ तिनिकै मार्गकी प्राप्ति कही है, बहुरि जे उन्मार्गके दिखावनेंवाले है तिनिका तौ ज्ञान पावना भी निरर्थक है ॥

भावार्थ–पूर्वै कह्याथा जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नांही है अर यह विशेष है जो ज्ञान होय अर विषयासक्त होय ज्ञान बिगडै तब शील नाही। अब इहा ऐसैं कह्या है जो—ज्ञान पाय कदाचित् चारित्रमोहके उदयतैं विषय न छूटै तो जातैं तिनिमैं विमोहित रहै अर मार्गकी प्ररूपणा विषयनिका त्यागरूपही करै ताकै तौ मार्गकी प्राप्ति होय भी है बहुरि जो मार्गहीकूं कुमार्गरूप प्ररूपण करै विषय सेवनेंकू सुमार्ग बतावै तौ ताका तौ ज्ञान पावना निरर्थकही है, ज्ञान पाय भी मिथ्यामार्ग प्ररूपै ताकै ज्ञान काहेका ? ज्ञान मिथ्याज्ञान है। इहा आशय यह सूचै है जो—सम्यक्त्व सहित अविरत सम्यग्दृष्टी है सो तौ भला है जातैं सम्यग्दृष्टी कुमार्ग प्ररूपै नाही, आपकै चारित्रमोहका उदय प्रबल होय तेतैं विषय छूटै नांही तातैं अविरत है; अर सम्यग्दृष्टी न होय अर ज्ञानभी बडा होय कछू आचरणभी करै विषयभी छोडै अर कुमार्ग प्ररूपै तौ भला नांही ताका ज्ञान अर विषय छोडना निरर्थक है, ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

आगैं कहै हैं जो उन्मार्गके प्ररूपण करनेंवाले कुमतकुशास्त्रकी जे प्रशसा करैं हैं ते बहुत शास्त्र जानैं हैं तौऊ शीलव्रतज्ञानकरि रहित तिनिकै आराधना नाही,—

कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
सीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥ १४ ॥

कुमतकुश्रुतप्रशंसकाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।
शीलव्रतज्ञानरहिता न स्फुटं ते आराधका भवंति ॥१४॥

अर्थ—जे बहुत प्रकार शास्त्रनिकूं जानते सते हैं अर कुमत कुशास्त्रके प्रशंसा करनेवाले हैं ते शील अर व्रत अर ज्ञान इनिकरि रहित हैं ते इनिके आराधक नाही है ॥

भावार्थ—जे बहुत शास्त्रनिकूं जानि ज्ञान तौ बहुत जानैं हैं अर कुमत कुशास्त्रनिकी प्रशसा करै हैं तौ जानिये याकै कुमतसू अर कुशास्त्रसू राग है प्रीति है तब तिनिकी प्रशंसा करै है—तौ ये तौ मिथ्यात्वके चिह्न हैं, अर जहां मिथ्यात्व है तहा ज्ञान भी मिथ्या है अर विषयकषायनितैं रहित होय ताकूं शील कहिये सो भी ताकै नाही है, अर व्रत भी ताकै नाही है, कदाचित् कोऊ व्रताचरण करै है तौऊ मिथ्याचारित्ररूप है, तातैं सो दर्शन ज्ञान चारित्रका आराधनेवाला नाही है, मिथ्यादृष्टी है ॥ १४ ॥

आगैं कहै है जो रूपसुंदरादिक सामग्री पावै अर शील रहित होय तौ ताका मनुष्यजन्म निरर्थक है,—

रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं ।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म ॥ १५ ॥

रूपश्रीगर्वितानां यौवनलावण्यकांतिकलितानाम् ।
शीलगुणवर्जिताना निरर्थकं मानुषं जन्म ॥ १५ ॥

अर्थ—जे पुरुष यौवन अवस्था सहित हैं अर बहुतनिकूं प्रिय लागैं ऐसा लावण्य ताकरि सहित हैं अर शरीरकी कांति प्रभाकरि मंडित हैं

ऐसे, अर सुंदररूप लक्ष्मी संपदाकरि गर्वित हैं मदोन्मत्त है अर शील अर गुणनिकरि वर्जित हैं तिनिका मनुष्यजन्म निरर्थक है ॥

भावार्थ—मनुष्य जन्म पाय शीलकरि रहित हैं विषयनिमैं आसक्त रहैं, सम्यग्दर्शन ज्ञान ज्ञारित्र जे गुण तिनिकरि रहित है, अर यौवन अवस्थामैं शरीरकी लावण्यता कांतिरूप सुंदर धन संपदा पाय इनिका गर्वकरि मदोन्मत रहैं तो तिनिनें मनुष्य जन्म निष्फल खोया; मनुष्य-जन्ममैं सम्यग्दर्शनादिकका अङ्गीकार करना अर शील संयम पालनेयोग्य था सो अङ्गीकार किया नाही तब निष्फलही गया कहिये। बहुरि ऐसा भी जनाया है जो पहली गाथामैं कुमत कुशास्त्रकी प्रशसा करनेवालेका ज्ञान निरर्थक कह्या था तैसैं इहा रूपादिकका मद करै तो यह भी मिथ्यात्वका चिह्न है सो मद करै सो मिथ्यादृष्टी ही जाननां। तथा लक्ष्मी रूप यौवन कांतिकरि मंडित होय अर शीलरहित व्यभिचारी होय तो ताकी लोकमैं निंदाही होय है ॥

आगैं कहै हैं जो बहुत शास्त्रनिका ज्ञान होतैं भी शीलही उत्तम है;—

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेव सुयं उत्तमं सीलं॥ १६॥

व्याकरणछन्दोवैशेपिकव्यवहारन्यायशास्त्रेपु।
विदित्वा श्रुतेपु च तेपु श्रुतं उत्तमं शीलम्॥ १६॥

अर्थ—व्याकरण छंद वैशेषिक व्यवहार न्यायशास्त्र ये शास्त्र बहुरि श्रुत कहिये जिनागम इनिविषैं तिनि व्याकरणादिककूं अर श्रुत कहिये जिनागमकूं जानिकरिभी इनिविषैं शील होय सो ही उत्तम है॥

भावार्थ—व्याकरणादिशास्त्र जाने अर जिनागमकूंभी जाने तौऊ तिनिमैं शीलही उत्तम है शास्त्रनिकूं जानि अर विषयनिमैं ही आसक्त है तौ तिनि शास्त्रनिका जानना वृथा है उत्तम नाही॥

आगैं कहै हैं जो-शील गुणकरि मंडित हैं ते देवनिकै भी वल्लभ हैं,—

सीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति ।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए ॥ १७ ॥

शीलगुणमंडितानां देवा भव्यानां वल्लभा भवंति ।
श्रुतपारगप्रचुराः णं दुःशीला अल्पकाः लोके ॥ १७ ॥

अर्थ—जे भव्य प्राणी शील अर सम्यग्दर्शनादिक गुण अथवा शील सो ही गुण ताकरि मंडित है तिनिका देव भी वल्लभ होय है तिनिकी सेवा करनेवाले सहायी होय हैं। बहुरि जे श्रुतपारग कहिये शास्त्रके पार पहुँचे हैं ग्यारह अंग ताईं पढे हैं ऐसे बहुत हैं अर तिनिमैं केई शीलगुणकरि रहित हैं दुःशील हैं विषय कषायनिमैं आसक्त हैं तौ ते लोकविषैं 'अल्पका' कहिये न्यून हैं ते मनुष्य लोकनिकै भी प्रिय न होय हैं तब देव कहांतैं सहायी होय।

भावार्थ-शास्त्र बहुत जानै अर विषयासक्त होय तो ताका कोई सहायी न होय, चोर अर अन्यायीकी लोकमैं कोई सहाय न करै; अर शील गुणकरि मंडित होय अर ज्ञान थोडा भी होय तौ ताकै उपकारी सहायी देव भी होय है तब मनुष्य तौ सहायी होयही होय शील गुणवान सर्वकै प्यारा होय है ॥ १७ ॥

आगैं कहै हैं जिनिकै शील है सुशील है तिनिका मनुष्यभवमैं जीवना सफल है भला है;—

सव्वे वि य परिहीणा रूपविरूवा वि वदिदसुवया वि ।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं ॥ १८ ॥

सर्वेऽपि च परिहीनाः रूपविरूपा अपि पतितसुवयसोऽपि ।
शीलं येषु सुशीलं सुजीविदं मानुष्यं तेषाम् ॥ १८ ॥

यही सुशील है जाकै संसारको ओड़ आवै है तव यह प्रकृति होय है अर यह प्रकृति न होय तेतैं संसारभ्रमण है ही, ऐसैं जाननां ॥ १९ ॥

आगैं शील है सो ही तप आदिक है ऐसैं शीलकी महिमा कहै हैं;-

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धी य ।
शीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥२०॥

शीलं तपः विशुद्धं दर्शनशुद्धिश्च ज्ञानशुद्धिश्च ।
शीलं विषयाणामरिः शीलं मोक्षस्य सोपानम् ॥ २० ॥

अर्थ—शील है सो ही विशुद्ध निर्मल तप है, बहुरि शील है सो ही दर्शनकी शुद्धता है, बहुरि शील है सो ही ज्ञानकी शुद्धता है, बहुरि शील है सो ही विषयनिका शत्रु है, बहुरि शील है सो ही मोक्षकी पैडी है ॥

भावार्थ—जीव अजीव पदार्थनिका ज्ञानकरि तामैंसू मिथ्यात्व अर कषायनिका अभाव करनां सो सुशील है सो यह आत्माका ज्ञानस्वभाव है सो संसारप्रकृति मिटि मोक्षसन्मुख प्रकृति होय तब या शीलहीके तप आदिक सर्व नाम हैं—निर्मल तप शुद्ध दर्शन ज्ञान विषय कषायनिका मेटनां मोक्षकी पैडी ये सर्व शीलके नामके अर्थ हैं, ऐसा शीलका माहात्म्य वर्णन किया है बहुरि केवल महिमा ही नाही है इनि सर्व भावनिकै अविनाभावीपणां जनाया है ॥ २० ॥

आगैं कहै हैं जो विषयरूप विष महा प्रबल है,—

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोराणं ।
सव्वेसिंपि विणासदि विसयविसं दारुणं होई ॥ २१ ॥

यथा विषयलुब्धः विषदः तथा स्थावरजंगमान् घोरान् ।
सर्वान् अपि विनाशयति विषयविषं दारुणं भवति ॥२१॥

अर्थ-जैसैं विषयनिका सेवनां विष है सो जे विषयनिकै विषै लुब्धजीव हैं तिनिकूं विषका देनेवाला है तैसैं ही जे घोर तीव्र स्थावर जगम सर्वनिका विष है सो प्राणीनिका विनाश करै है तथापि तिनि सर्वनिका विषनिमैं विषयनिका विष उत्कृष्ट है तीव्र है ॥

भावार्थ—जैसैं हस्ती मीन भ्रमर पतंग आदि जीव विषयनिकरि लुब्ध भये विषयनिके वश भये हते जाय हैं तैसैंही स्थावरका विष मोहरा सोमल आदिक अर जंगमका विष सर्प आदिकका विष इनिका भी विषकरि प्राणी हते जाय हैं परन्तु सर्व विषनिमै विषयनिका विष अतितीव्र ही है ॥ २१ ॥

आगैं इसहीका समर्थनकूं विषयनिका विषका तीव्रपणां कहै हैं जो-विषकी वेदनातैं तौ एकवार मरै है अर विषयनितैं संसारमैं भ्रमै है,—

वारि एक्कम्मि यजम्मे सरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो ।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकांतारे ॥२२॥

वारे एकस्मिन् च जन्मनि गच्छेत् विषवेदनाहतः जीवः ।
विषयविषपरिहता भ्रमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

अर्थ—विषकी वेदनाकरि हत्या जो जीव सो तौ एकजन्मविषैही मरै है बहुरि विषयरूप विषकरि हते गये जीव हैं ते अतिशयकरि संसाररूप वनविषैं भ्रमैं हैं ॥

भावार्थ—अन्य सर्पादिकके विषतैं विषयनिका विष प्रबल है इनिकी आसक्तातैं ऐसा कर्मबध होय है जातैं बहुत जन्म मरण होय है ॥२२॥

आगैं कहै है जो विषयनिकी आसक्ततातैं चतुर्गतिमैं दुःख ही पावैं हैं;—

णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणुएसु दुक्खाइं ।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासत्ता जीवा ॥ २३ ॥

नरकेषु वेदनाः तिर्यक्षु मानुषेषु दुःखानि ।
देवेषु अपि दौर्भाग्यं लभंते विषयासक्ता जीवाः ॥ २३ ॥

अर्थ—विषयनिविषै आसक्त जे जीव है ते नरकनिविषैं अत्यंतवेदनाकूं पावै है; अर तिर्यंचनिविषै तथा मनुष्यनिविषैं दुःखनिकूं पावैं, बहुरि देवनिविषै उपजै तौ तहां भी दुर्भाग्यपणां पावै नीच देव होय ऐसैं चतुर्गतिनिविषैं दुःखही पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयासक्त जीवनिकूं कहू ही सुख नांही है परलोकमैं तौ नरक आदिके दुःख पावैंही हैं अर या लोकमैं भी इनिके सेवनेंविषैं आपदा कष्ट आवै है तथा सेवातैं आकुलता दुःखही है, यह जीव भ्रमतैं सुख मानै है, सत्यार्थ ज्ञानी तौ विरक्तही होय है ॥ २३ ॥

आगैं कहै है जो-विषयनिके छोडनेमैं भी कछू हानि नांही है;—

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि ।
तवसीलमंत कुसली खपंति विसयं विस व खलं ॥२४

तुषध्मद्बलेन च यथा द्रव्यं न हि नराणां गच्छति ।
तपः शीलमंतः कुशलाः क्षिपंते विषयं विषमिव खलं ॥

अर्थ—जैसैं तुषनिके चलानेकरि उडावनेकरि मनुष्यनिको कछू द्रव्य नांही जाय है तैसैं तप अर शीलवान् जे पुरुष हैं ते विषयनिकूं खलकी ज्यौं क्षेपैं हैं दूर गेरैं हैं ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी तप शीलसहित हैं तिनिकै इंद्रियनिके विषय खलकी ज्यौं हैं जैसैं साठेनिका रस काढिले तब खल चूसे नीरस होय तब डारि देनें योग्यही होय तैसैं विषयनिकूं जानना, रस था सो तौ ज्ञानीनिनैं जानि लिया तब विषय तौ खलवत् रहे तिनिके त्यागनेंमैं कहा हानि ? कछू भी नांही । धन्य हैं वे ज्ञानी—जे विषयनिकूं ज्ञेयमात्र जानि आसक्त न होय हैं । अर जे आसक्त होय हैं ते तौ अज्ञानी ही हैं

जातें विषय हैं ते तौ जडपदार्थ हैं सुख तौ तिनिके जाननें से ज्ञानमें ही था, अज्ञानी आसक्त होय विषयनिमैं सुख मान्या जैसें श्वान सूका हाड चाबै तब हाडकी अणी मुख तालवामैं चुभै तब तालवा फाटि तामैंसूं रुधिर स्रवै तब अज्ञानी श्वान जाणैं जो यह रस हाडमैंसूं नीसरया है तब तिस हाडिकूं फेरि फेरि चाबै अर सुख मानै तैसैं अज्ञानी विषयनिमैं सुख मानि फेरि फेरि भोगवै है, अर ज्ञानीनिनैं अपनें ज्ञानहीमैं सुख जान्या है तिनिकै विषयनिके छांडनेमें खेद नाहीं है, ऐसैं जानना ॥ २४ ॥

आगैं कहै हैं जो प्राणी शरीरके अवयव सर्व सुन्दर पावै तौऊ सर्व अंगनिमैं शील है सो ही उत्तम है,—

वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु ।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥ २५ ॥

वृत्तेषु च खंडेषु च भद्रेषु च विशालेषु अंगेषु ।
अंगेषु च प्राप्तेषु च सर्वेषु च उत्तमं शीलं ॥ २५ ॥

अर्थ—प्राणीके देहविषैं केई अंग तौ वृत्त कहिये गोल सुघट सराहने योग्य होय हैं, केई अंग खंड कहिये अर्द्ध गोल सारिखे सराहनेयोग्य होय हैं, केई अंग भद्र कहिये सरल सूधे सराहनेंयोग्य होय हैं, अर केई अंग विशाल कहिये विस्तीर्ण चौडे सराहनेंयोग्य होय हैं—ऐसैं सर्वही अंग यथास्थान सुन्दर पावते सतैंभी सर्व अंगनिमैं यहु शीलनामा अंग है सो उत्तम है, यह न होय तौ सर्वही अंग शोभा न पावै, यह प्रसिद्ध है ॥

भावार्थ—लोकविषैं प्राणी सर्वांगसुन्दर होय अर दुःशील होय तौ सर्व लोकके निंदाकरनें योग्य होय ऐसैं लोकमैं भी शीलहीकी शोभा है तौ मोक्षमैं भी शीलही प्रधान कह्या है, जेते सम्यग्दर्शनादिक मोक्षके अंग हैं ते शीलहीके परिवार हैं ऐसैं पहिले कह आये हैं ॥

आगैं कहै है—जो कुमतिकरि मूढ भये हैं ते विषयनिमैं आसक्त हैं कुशील है संसारमैं भ्रमै हैं;—

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं ।
संसारे भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं ॥ २६ ॥

पुरुषेणापि सहितेन कुसमयमूढैः विषयलोलैः ।
संसारे भ्रमितव्यं अरहटघरट्टं इव भूतैः ॥ २६ ॥

अर्थ—जे कुसमय कहिये कुमत तिनिकरि मूढ हैं सो ही अज्ञानी हैं बहुरि ते विषयनिविषैं लोलुपी हैं आसक्त है ते संसारविषैं भ्रमैं हैं, कैसे भये भ्रमै हैं—जैसैं अरहटविषैं घडी भ्रमैं तैसे भये भ्रमै है तिनिकरि सहित अन्य पुरुषकै भी संसारविषैं दुःखसहित भ्रमण होय है।

भावार्थ—कुमती विषयासक्त मिथ्यादृष्टी आप तौ विषयनिकूं भले मानि सेवैं हैं। केई कुमती ऐसे भी हैं जो ऐसे कहै हैं जो सुन्दर विषय सेवनेमैं ब्रह्म प्रसन्न होय है यह परमेश्वरकी बडी भक्ति है ऐसैं कहिकरि अत्यन्त आसक्त होय सेवैं हैं, ऐसा ही उपदेश अन्यकूं देकरि विषयनिमैं लगावै हैं, ते आप तौ अरहटकी घड़ीकी ज्यौं संसारमैं भ्रमैं ही हैं तहां अनेकप्रकार दुःख भोगवैं हैं परन्तु अन्य पुरुषकूं भी तहां लगाय भ्रमावैं हैं तातैं यह विषय सेवना दुःखहीकै अर्थि है दुःखहीका कारण है, ऐसैं जानि कुमतीनिका प्रसंग न करना, विषयासक्तपणा छोड़ना यातैं सुशीलपणा होय है ॥ २६ ॥

आगैं कहै है जो कर्मकी गांठि विषय सेयकरि आपही बांधी है ताकूं सत्पुरुष तपश्चरणादिककरि आपही काटै हैं,—

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरागेहिं ।
तं छिन्दंति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण ॥ २७ ॥

१ संस्कृत प्रतिमें—'विषयरायमोहेहि' ऐसा पाठ है छाया 'विषय राग मोहै' है।

आत्मनि कर्मग्रंथिः या बद्धा विषयरागरागैः ॥
तां छिन्दंति कृतार्थाः तपः संयमशीलगुणेन ॥ २७ ॥

अर्थ--जे विषयनि के रागरंगकरि आपही कर्मकी गांठि बांधी है वाकूं कृतार्थ पुरुष उत्तम पुरुष तप संयम शील इनितैं भया जो पुण्य ताकरि छेदैं हैं खोलैं हैं ॥

भावार्थ--जो कोई आप गांठि घुलाय बांधै ताके खोलनेका विधान भी आपही जानैं, जैसैं सुनार आदि कारीगर आभूषणादिककी संधिकै टांका ऐसा झालै जो वह संधि अदृष्ट हो जाय तब तिस संधिकूं टांकेका झालनेवालाही पहिचानकरि खोलै तैसैं आत्मा अपनेही रागादिक भावकरि कर्मनिकी गांठि बांधी है ताहि आपही भेदज्ञानकरि रागादिकके अर आपकै जो भेद है तिस संधिकूं पहचानि तप संयम शीलरूप भावरूप शस्त्रनिकरि तिस कर्मबंधकूं काटै, ऐसा जानि जे कृतार्थ पुरुष हैं अपने प्रयोजनके करनेवाले हैं ते इस शील गुणकूं अंगीकार करि आत्माकूं कर्मतैं भिन्न करै हैं, यह पुरुषार्थ पुरुषनिका कार्य है ॥ २७ ॥

आगैं कहै हैं जो शीलकरि आत्मा सोभै है याकूं दृष्टान्तकरि दिखावै हैं;—

उदधीव रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं ।
सोहेतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥ २८ ॥

उदधिरिव रत्नभृतः तपोविनयशीलदानरत्नानाम् ।
शोभते च सशीलः निर्वाणमनुत्तरं प्राप्तः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसैं समुद्र रत्ननिकरि भर्‌या है तौऊ जलसहित सोभै है तैसैं यह आत्मा तप विनय शील दान इनि रत्ननिमैं शीलसहित सोभै है जातैं जो शीलसहित भया तानैं अनुत्तर कहिये जातैं परै और नांही ऐसा निर्वाणपदकूं पाया ॥

भावार्थ—जैसैं समुद्रमैं रत्न बहुत हैं तौऊ जलहीतैं समुद्र नाम पावै है तैसैं आत्मा अन्य गुणनिकरि सहित होय तोऊ शीलकरि निर्वाणपद पावै, ऐसैं जानना ॥ २८ ॥

आगैं जे शीलवान पुरुष हैं ते ही मोक्ष पावैं हैं यह प्रसिद्धिकरि दिखावै है,—

सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो ।
जे सोधंति चउत्थ पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं ॥२९॥

शुनां गर्दभानां च गोपशुमहिलानां दृश्यते मोक्षः ।
ये शोधयंति चतुर्थं दृश्यतां जनैः सर्वैः ॥ २९ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—ये सर्व जन देखो—स्वान गर्दभ इनिमैं बहुरि गऊ आदि पशु अर स्त्री इनिमैं काहूकै मोक्ष होनां दीखै है ? सो तौ दीखता नांही, मोक्ष तौ चौथा पुरुषार्थ है यातैं जो चतुर्थ जो पुरुषार्थ ताहि सोधै है हेरै है ताहीकै मोक्ष होना देखिये है ॥

भावार्थ–धर्म अर्थ काम मोक्ष ये च्यार पुरुषकेही प्रयोजन कहे हैं यह प्रसिद्ध है, याहीतैं इनिका नाम पुरुषार्थ है ऐसा प्रसिद्ध है। तहा इनिमैं चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है ताकूं पुरुषही सोधै अर पुरुषही ताकू हेरि ताकी सिद्धि करै, अन्य स्वान गर्दभ बैल पशु स्त्री इनिकै मोक्षका सोधना प्रसिद्ध नांही जो होय तौ मोक्षका पुरुषार्थ ऐसा नाम काहेकूं होय। इहां आशय ऐसा जो मोक्ष शीलतैं होय है, जे स्वान गर्दभ आदिक हैं ते तौ अज्ञानी हैं कुशीली हैं, तिनिका स्वभाव प्रकृतिही ऐसी है जो पलटिकरि मोक्ष होनें योग्य तथा ताके सोधने योग्य नाही है, तातैं पुरुषकूं मोक्षका साधन शीलकूं जानि अंगीकार करनां,-सम्यग्दर्शनादिक हैं ते शीलहीके परिवार पूर्वैं कहे ही हैं ऐसैं जानना ॥ २९ ॥

आगैं कहै हैं जो शील बिना ज्ञानही करि मोक्ष नांही, याका उदाहरण कहैं हैं;—

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं॥३०॥

यदि विषयलोलैः ज्ञानिभिः भवेत् साधितः मोक्षः।
तर्हि सः सात्यकिपुत्रः दशपूर्विकः किं गतः नरकं॥ ३०॥

अर्थ—जो विषयनिविषैं लोल कहिये लोलुप आसक्त अर ज्ञानसहित ऐसा ज्ञानीनिनै मोक्ष साध्या होय तौ दशपूर्वका जाननेवाला रुद्र नरककूं क्यों गया॥

भावार्थ—कोरा ज्ञानहीतैं मोक्ष कहूनैं साध्या कहिये तौ दश पूर्वका पाठी रुद्र नरक क्यों गया तातैं शीलबिना कोरा ज्ञानही तैं मोक्ष नाही, रुद्र कुशील सेवनेवाला भया, मुनिपद तैं भ्रष्ट होय कुशील सेया तातैं नरकमैं गया, यह कथा पुराणनिमैं प्रसिद्ध है॥ ३०॥

आगैं कहै हैं शीलविना ज्ञानहीनै भावकी शुद्धिता न होय है:—

जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिठो।
दसपुव्वियस्स भावो यण किं पुण णिम्मलो जादो॥३१॥

यदि ज्ञानेन विशुद्धः शीलेन विना बुधैर्निर्दिष्टः।
दशपूर्विकस्य भावः च न किं पुनः निर्मलः जातः॥३१॥

अर्थ—जो शीलविना ज्ञानहीकरि विसोह कहिये विशुद्ध भाव पंडिता कह्यो होय तौ दश पूर्वका जाननेवाला जो रुद्र ताका भाव निर्मल क्यों न भया, तातैं जानिये है भाव निर्मल शीलहीतैं होय है॥

भावार्थ—कोरा ज्ञान तौ ज्ञेयकूं जनावैही है तातैं मिथ्यात्व कषाय होय तब विपर्यय होय जाय तातैं मिथ्यात्वकषायका मिटना सोही शील है, ऐसैं शीलविना ज्ञानहीतैं मोक्ष सधै नाही, शीलविना मुनि होय तौऊ भ्रष्ट होय जाय है तातैं शीलकूं प्रधान जानना॥ ३१॥

आगैं कहै हैं जो नरकमैंभी शील होय जाय अर विषयनिकरि विरक्त होय तौ तहातैं निकसिकरि तीर्थंकरपद पावै है;—

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा ।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण ॥ ३२ ॥

यः विषयविरक्तः सः गमयति नरकवेदनाः प्रचुराः ।
तत् लभते अर्हत्पदं भणितं जिनवर्द्धमानेन ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो विषयनितैं विरक्त है सो जीव नरकमैं वहुत वेदना है ताकूं भी गमावै है तहा भी अतिदुःखी न होय है तौ तहांतैं निकसि करि तीर्थंकर होय है यह जिन वर्द्धमान भगवानने कह्या है ॥

भावार्थ—जिनसिद्धान्तमें ऐसैं कह्या है जो—तीसरी पृथ्वीतैं निकसि, तीर्थंकर होय है सो यह भी शीलहीका माहात्म्य है तहां सम्यक्त्व सहित होय विषयनितैं विरक्त भया भली भावना भावै तब नरक वेदनाभी अल्प होय अर तहांतैं निकसि अरहतपद पाय मोक्ष पावै, ऐसा विषयनितैं विरक्त भाव सो ही शीलका माहात्म्य जानो, सिद्धातमैं ऐसैं कह्या है जो सम्यग्दृष्टीकै ज्ञान अर वैराग्यकी शक्ति नियमकरि होय है सो वैराग्यशक्ति है सो ही शीलका एकदेश है ऐसैं जानना ॥ ३२ ॥

आगैं या कथनकूं सकोचै हैं;—

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं ।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं ।३३।

एवं बहुप्रकारं जिनैः प्रत्यक्षज्ञानदर्शिभिः ।
शीलेन च मोक्षपदं अक्षातीतं च लोकज्ञानैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—एव कहिये पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार बहुत प्रकार जिनदेवनैं कह्या है जो—शीलकरि मोक्षपद है, कैसा है मोक्षपद—अक्षा-

तीत है, इन्द्रियनिकरि रहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख जामैं पाइये है। बहुरि कहनेवाले जिनदेव कैसे हैं—प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन जिनकै पाइये है बहुरि लोकका जिनकै ज्ञान है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञ देवनैं ऐसैं कह्या है जो शीलकरि अतीन्द्रिय ज्ञान सुख रूप मोक्षपद पाइये है सो भव्यजीव या शीलकूं अंगीकार करो, ऐसा उपदेशका आशय सूचै है बहुत कहा ताईं कहिये एता ही बहुत प्रकार कह्या जानो ॥ ३३ ॥

आगैं कहै हैं जो इस शीलकरि निर्वाण होय ताकूं बहुत प्रकार वर्णन कीजिये सो कैसैं ताका कहना ऐसैं है;—

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयार मप्पाणं ।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं ॥३४॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनतपोवीर्यपंचाचाराः आत्मनाम् ।
ज्वलनोऽपि पवनसहितः दहंति पुरातनं कर्म ॥ ३४ ॥

अर्थ—सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन तप वीर्य ये पंच आचार है सो आत्मा का आश्रय पायकरि पुरातन कर्मनिकूं दग्ध करैं हैं, जैसैं अग्नि है सो पवन सहित होय तब पुराणे सूखे इंधनकूं दग्ध करै तैसैं ॥

भावार्थ—इहां सम्यक्त्व आदि पंच आचार तो अग्निस्थानीय हैं अर आत्माका शुद्ध स्वभाव है ताकूं शील कहिये सो यह आत्माका स्वभाव पवनस्थानीय है सो पंच आचार रूप पवनका सहाय पाय पुरातन कर्म-बंधकूं दग्धकरि आत्माकूं शुद्ध करैं ऐसैं शीलही प्रधान है। पांच आचा-रमैं चारित्र कह्या है अर इहां सम्यक्त्व कहनेंमैं चारित्रही जाननां विरोध न जाननां ॥ ३४ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं अष्ट कर्मनिकूं जिनिनैं दग्ध किये ते सिद्ध भये हैं;—

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता ॥३५॥

निर्दग्धाष्टकर्माणः विषयविरक्ता जितेंद्रिया धीराः।
तपोविनयशीलसहिताः सिद्धाः सिद्धिं गतिं प्राप्ताः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो पुरुष जीते हैं इंद्रिय जिनूनैं याहीतैं विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि धीर हैं परीषहादि उपसर्ग आये चिगै नाहीं हैं, बहुरि तप विनय शील इनिकरि सहित हैं ते दूरि किये है अष्ट कर्म जिनूंनैं ऐसे होय सिद्धिगति जो मोक्ष ताकूं प्राप्त भये हैं, ते सिद्ध ऐसा नाम कहावैं हैं ॥

भावार्थ—इहां भी जितेंद्रिय विषयविरक्तता ये विशेषण शीलहीकी प्रधानता दिखावैं हैं ॥ ३५ ॥

आगैं कहै हैं जो लावण्य अर शील युक्त है सो मुनि सराहने योग्य होय है;—

लावण्णसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमित्थ गुणवित्थरं भविए ॥३६॥

लावण्यशीलकुशलः जन्ममहीरुहः यस्य श्रमणस्य।
सः शीलः स महात्मा भ्रमेत् गुणविस्तारः भव्ये। ३६ ॥

अर्थ—जिस मुनिका जन्मरूप वृक्ष है सो लावण्य कहिये अन्यकूं प्रियलागै ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन वचन कायकी चेष्टा सुन्दर अर शील कहिये अंतरंग मिथ्यात्व विषयकरि रहित परोपकारी स्वभाव इनि दोऊनिविषैं प्रवीण निपुण होय सो मुनि शीलवान् है महात्मा है ताके गुणनिका विस्तार लोकविषैं भ्रमै है फैलै है ॥

भावार्थ—ऐसे मुनिका गुण लोकमैं विस्तरै है सर्व लोकके प्रशंसा योग्य होय है इहा भी शीलहीकी महिमा जाननी, अर वृक्षका स्वरूप कह्या जैसैं वृक्षके शाखा पत्र पुष्प फल सुन्दर होय अर छायादिककरि रागद्वेष रहित सर्व लोकका समान उपकार करै तिस वृक्षकी महिमा सर्व लोक करै तैसैं मुनिभी ऐसा होय सो सर्वके महिमा करने योग्य होय है ॥ ३६ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा होय सो जिनमार्गविषैं रत्नत्रयकी प्राप्तिरूप बोधि पावै है;—

णाणं झाण जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं[1] ।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं ॥ ३७ ॥

ज्ञानं ध्यानं योगः दर्शनशुद्धिश्च वीर्यायत्ताः ।
सम्यक्त्वदर्शनेन च लभंते जिनशासने बोधिं ॥ ३७ ॥

अर्थ—ज्ञान ध्यान योग दर्शनकी शुद्धता ये तो वीर्यके आधीन हैं अर सम्यग्दर्शनकरि जिनशासनकै विषैं बोधिकूं पावैं हैं, रत्नत्रयकी प्राप्ति होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान कहिये पदार्थनिकूं विशेषकरि जानना, ध्यान कहिये स्वरूप विषैं एकाग्र चित्त होना, योग कहिये समाधि लगावनां, सम्यग्दर्शनकूं निरतिचार शुद्ध करना, येतो अपना वीर्य जो शक्ति ताकै आधीन हैं जेता बनै तेता होय अर सम्यग्दर्शनकरि बोधि जो रत्नत्रय ताकी प्राप्ति होय याके होतैं विशेष ध्यानादिक भी यथा शक्ति होयही है अर शक्ति भी यातैं बधै है। ऐसैं कहनेमैं भी शीलहीका माहात्म्य जानना, रत्नत्रय है सो ही आत्माका स्वभाव है ताकूं शीलभी कहिये ॥ ३७ ॥

---

१ मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'वीरियावत्तं' ऐसा पाठ है जिसकी छाया 'वीर्यत्व' है ॥

आगैं कहै हैं जो—यह प्राप्ति जिनवचनतैं होय है,—

जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तपोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति॥ ३८॥

जिनवचनगृहीतसारा विषयविरक्ताः तपोधना धीराः।
शीलसलिलेन स्नाताः ते सिद्धालयसुखं यांति॥ ३८॥

अर्थ—जिनवचनकरि ग्रहण किया है सार जिनिनैं बहुरि विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि तपही है धन जिनिकै, बहुरि धीर है ऐसे भये संते मुनि शीलरूप जलकरि न्हायें शुद्ध भये ते सिद्धालय जो सिद्धनिके वसनेंका मन्दिर ताके सुखनिकूं पावै हैं॥

भावार्थ—जे जिनवचनकरि वस्तुका यथार्थ स्वरूप जानि ताका सार जो अपना शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति ताका ग्रहण करैं ते हैं ते इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त होय तप अंगीकार करैं हैं मुनि होय हैं, तहा धीरवीर होय परीषह उपसर्ग आये चिगैं नाही तब शील जो स्वरूपकी प्राप्तिकी पूर्णतारूप चौरासी लाख उत्तरगुणकी पूर्णता सो ही भया निर्मल जल ताकरि स्नान करि सर्व कर्ममलकूं धोय सिद्ध भये, सो मोक्षमंदिरविषैं तिष्ठि करि तहा परमानंद अविनाशी अतीन्द्रिय अव्याबाध सुखकूं भोगवैं हैं, यह शीलका माहात्म्य है। ऐसा शील जिनवचनतैं पाइये है जिनागमका निरन्तर अभ्यास करना यह उत्तम है॥ ३८॥

आगैं अंतसमयमैं सल्लेखना कही है तहा दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारि आराधनाका उपदेश है सो ये शील हीतैं प्रगट होय हैं, ताकूं प्रगटकरि कहैं हैं;—

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणा पयडा॥ ३९॥

सर्वगुणक्षीणकर्माणः सुखदुःखविवर्जिताः मनोविशुद्धाः ।
प्रस्फोटितकर्मरजसः भवंति आराधनाः प्रकटाः ।। ३९ ।।

अर्थ—सर्व गुण जे मूलगुण उत्तरगुण तिनिकरि क्षीण भये हैं कर्म जामैं, बहुरि सुख दुःखकरि विवर्जित हैं, बहुरि मन है विशुद्ध जामैं, बहुरि उडाये हैं कर्मरूप रज जानैं ऐसी आराधना प्रगट होय है ।।

भावार्थ-पहलैं तौ सम्यग्दर्शनसहित मूलगुण उत्तरगुणनिकरि कर्मनिकी निर्जरा होनेतैं कर्मकी स्थिति अनुभाग क्षीण होय है, पीछैं विषयनिकै द्वारैं किछू सुख दुःख होय था ताकरि रहित होय है, पीछैं ध्यानविषैं तिष्ठि श्रेणी चढै तब उपयोग विशुद्ध होय कषायनिका उदय अव्यक्त होय तब दुःख सुखकी वेदना मिटै, बहुरि पीछैं मन विशुद्ध होय क्षयोपशम ज्ञानकै द्वारैं किछू ज्ञेयतैं ज्ञेयान्तर होनेका विकल्प होय है सो मिटिकरि एकत्ववितर्क अविचारनामा शुक्लध्यान बारमां गुणस्थानकै अंत होय है यह मनका विकल्प मिटि विशुद्ध होनां है, बहुरि पीछैं घातिकर्मका नाश होय अनंत चतुष्टय प्रकट होय है यह कर्मरजका उडना है, ऐसैं आराधनाकी संपूर्णता प्रकट होनां है। जे चरम शरीरी हैं तिनिकै तौ ऐसैं आराधना प्रकट होय मुक्तिकी प्राप्ति होय है। बहुरि अन्यकै आराधनाका एकदेश होय अंतमैं तिसकूं आराधनकरि स्वर्गविषैं प्राप्त होय, तहां सागरांपर्यंत सुख भोगि तहांतैं चय मनुष्य होय आराधनांकूं संपूर्ण करि मोक्ष प्राप्त होय है, ऐसैं जानना, यह जिनवचनका अर शीलका माहात्म्य है ।। ३९ ।।

आगैं ग्रंथकूं पूर्ण करैं हैं तहां ऐसैं कहैं हैं जो ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है यह सर्वजनप्रसिद्ध है सो ज्ञान तौ ऐसा होय ताकूं कहिये है;—

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं ।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ।। ४० ।।

अर्हति शुभभक्तिः सम्यक्त्वं दर्शनेन सुविशुद्धं ।
शीलं विषयविरागः ज्ञानं पुनः कीदृशं भणितं ॥४०॥

अर्थ—अरहंतनिविषैं भली भक्ति है सो तौ सम्यक्त्व है, सो कैसा है—सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध है, तत्त्वार्थनिका निश्चय व्यवहारस्वरूप श्रद्धान अर बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूपका धारण तथा ताका श्रद्धान ऐसा दर्शनकरि विशुद्ध अतीचार रहित निर्मल है ऐसा तौ अरहंतभक्तिरूप सम्यक्त्व है, बहुरि शील है सो विषयनितैं विरक्त होना है बहुरि ज्ञान भी यह ही है और यातैं न्यारा ज्ञान कैसा कह्या है? सम्यक्त्व शील विना तौ ज्ञान मिथ्याज्ञानरूप अज्ञान है॥

भावार्थ—यह सर्व मतनिमैं प्रसिद्ध है जो ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है अर ज्ञान होय है सो शास्त्रनितैं होय है। तहां आचार्य कहै हैं जो—हम तौ ताकूं ज्ञान कहैं हैं जो सम्यक्त्व अर शील सहित होय, यह जिनागममैं कही है, यातैं न्यारा ज्ञान कैसा है यातैं न्यारा ज्ञानकूं तौ हम ज्ञान कहैं नाहीं, इनि विना तौ अज्ञानही है, अर सम्यक्त्व शील होय सो जिनागमतैं होय। तहां जाकरि सम्यक्त्व शील भये तिसकी भक्ति न होय तौ सम्यक्त्व कैसैं कहिये, जाके वचनतैं यह पाइये ताकी भक्ति होय तब जानिये याकै श्रद्धा भई. बहुरि सम्यक्त्व होय तब विषयनितैं विरक्त होय ही होय जो विरक्त न होय तौ संसार मोक्षका स्वरूप कहा जान्या? ऐसैं सम्यक्त्व शील भये ज्ञान सम्यक्ज्ञान नाम पावै है। ऐसैं इस सम्यक्त्व शीलके संबंधतैं ज्ञानकी तथा शास्त्रकी बडाई है। ऐसैं यह जिनागम है सो संसारतैं निवृत्तिकरि मोक्ष प्राप्त करनेंवाला है, सो जयवंत होहु। बहुरि यहु सम्यक्त्वसहित ज्ञानकी महिमा है सो ही अंतमंगल जानना॥ ४०॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत शीलपाहुड ग्रंथ समाप्त भया॥

याका संक्षेप तौ कहते आये जो—शील नाम स्वभावका है सो आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञान दर्शनमयी चेतनास्वरूप है सो अनादिकर्मके

सयोगतैं विभावरूप परिणमैं है ताके विशेष मिथ्यात्व कषाय आदि अनेक हैं तिनिकू राग द्वेष मोह भी कहिये तिनिके भेद सच्चेपकरि चौरासीलाख किये हैं, विस्तारकरि असख्यात अनत होय हैं तिनिकूं कुशील कहिये, तिनिका अभावरूप संक्षेपकरि चौरासी लाख उत्तरगण हैं तिनिकूं शील कहैं हैं; यह तौ सामान्य परद्रव्यके संबधकी अपेक्षा शील कुशीलका अर्थ है। बहुरि प्रसिद्ध व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रीके संगकी अपेक्षा कुशीलके अठारह हजार भेद कहे हैं तिनिका अभाव ते शीलके अठारा हजार भेद हैं, तिनिकूं जिन आगमतैं जानि पालने। लाकमैं भी शीलकी महिमा प्रसिद्ध है जे पालै हैं स्वर्ग मोक्षके सुख पावैं है तिनिकू हमारा नमस्कार है ते हमारै भी शीलकी प्राप्ति करो, यह प्रार्थना है॥

छप्पय।

आन वस्तुके संग-राचि जिनभाव भंग करि,
वरतै ताहि कुशीलभाव भाखे कुरंग धरि।
ताहि तजैं मुनिराय पाय निज शुद्धरूप जल
धोय कर्मरज होय सिद्धि पावै सुख अविचल॥
यह निश्चय शील सुब्रह्ममय व्यवहारै तियतज नमै।
जो पालै सवविधि तिनि नमूं पाऊं जिन भव न जनम मैं॥

दोहा।

नमूं पंचपद ब्रह्ममय मंगलरूप अनूप।
उत्तम शरण सदा लहूँ फिरि न परूं भवकूप॥ २॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि प्रणीत शीलप्राभृतकी
जयपुरनिवासी प. जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त॥ ८॥

वचनिकाकारकी प्रशस्ति।

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंध पाहुडग्रंथ है तिनिमैं ये पाहुड हैं तिनिकी यह देशभाषामय वचनिका लिखी है। तहां छह पाहुडकी तौ टीका टिप्पण हैं तिनिमैं टीका तौ श्रुतसागरकृत है अर टिप्पण पहलैं काहू औरनैं किया है तिनिमैं केई गाथा तथा अर्थ अन्य-प्रकार हैं तहां मेरै विचारमैं आया तिनिका आश्रय भी लिया है अर जैसैं अर्थ मोकूं प्रतिभास्या तैसैं लिख्या है। अर लिंगपाहुड अर शीलपाहुड इनि दोऊ पाहुडनिकी टीका टिप्पण मिल्या नांही तातैं गाथाका अर्थ जैसैं प्रतिभासमैं आया तैसैं लिख्या है। अर श्रुतसागरकृत टीका षट-पाहुडकी है तामैं ग्रंथातरकी साखि आदि कथन बहुत है सो तिस टीकाकी यह वचनिका नाही है, गाथाका अर्थ मात्र वचनिका करि भावार्थमैं मेरी प्रतिभासमैं आया तिस अनुसार लेय अर्थ लिख्या है। अर प्राकृत व्याकरण आदिका ज्ञान मोमैं विशेष है नाही तातैं कहूं व्याकर-णतैं तथा आगमतैं शब्द अर अर्थ अपभ्रंश भया होय तहां बुद्धिमान पंडित मूलग्रंथ विचारि शुद्ध करि बांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जानि हास्य मति करियो, क्षमा करियो, सत्पुरुपनिका स्वभाव उत्तम होय है, दोष देखि क्षमा ही करैं हैं।

बहुरि इहां कोई कहै-तुम्हारी बुद्धि अल्प है तौ ऐसे महानग्रथकी वचनिका क्यों करी ? ताकूं ऐसैं कहना जो इस कालमैं मोतैं भी मंद-बुद्धि बहुत हैं तिनिके समझनेंके अर्थि करी है यामैं सम्यग्दर्शनका दृढ करनां प्रधानकरि वर्णन है तातैं अल्पबुद्धी भी वाचैं पढैं अर्थका धारण करैं तौ तिनिकै जिनमतका श्रद्धान दृढ होय, यह प्रयोजन जानि जैसैं अर्थ प्रतिभासमैं आया तैसैं लिखा है, अर जे बडे बुद्धिमान हैं ते मूलग्रथकं वाचि पढिही श्रद्धान दृढ करैंगे, मेरै कछु ख्याति लाभ पूजाका

तौ प्रयोजन है नांही धर्मानुरागतैं यह वचनिका लिखी है, तातैं बुद्धिमाननिकै क्षमाही करनेंयोग्य है।

अर इस ग्रंथकी गाथाकी संख्या ऐसै है:—प्रथम दर्शनपाहुडकी गाथा ३६। सूत्रपाहुडकी गाथा २७। चारित्रपाहुडकी गाथा ४४। बोधपाहुडकी गाथा ६१। भावपाहुडकी गाथा १६५। मोक्षपाहुडकी गाथा १०६। लिंगपाहुडकी गाथा २२। शीलपाहुडकी गाथा ४०। एवं पाहुड आठकी गाथाकी संख्या ५०२ हैं।

छप्पय।

जिनदर्शन निर्ग्रंथरूप तत्वारथ धारन,
सूतर जिनके वचन सार चारित व्रत पारन ;
बोध जैनका जांनि आनका सरन निवारन,
भाव आतमा बुद्ध मांनि भावन शिव कारन ॥
फुनि मोक्ष कर्मका नाश है लिंग सुधारन तजि कुनय।
धरि शील स्वभाव संवारनां आठ पाहुडका फल सुजय ॥

दोहा।

भई वचनिका यह जहां सुनो तास संक्षेप।
भव्यजीव संगति भली मेटै कुकरमलेप ॥ २ ॥
जयपुर पुर सूवस वसै तहां राज जगतेश।
ताके न्याय प्रतापतैं सुखी ढुढाहर देश ॥ ३ ॥
जैनधर्म जयवंत जग किछु जयपुरमैं लेश।
तामधि जिनमंदिर घणे तिनिको भलो निवेश ॥ ४ ॥

तिनिमैं तेरापंथको मंदिर सुंदर एव ।
धर्मध्यान तामैं सदा जैनी करै सुसेव ॥ ५ ॥
पंड़ित तिनिमैं बहुत हैं मैं भी इक जयचंद ।
प्रेर्‍यां सबकै मन कियो करन वचनिका मंद ॥ ६ ॥
कुन्दकुन्द मुनिराजकृत प्राकृत गाथा सार ।
पाहुड अष्ट उदार लखि करी वचनिका तार ॥ ७ ॥
इहां जिते पंडित हुते तिनिनैं सोधी येह ।
अक्षर अर्थ सुवांचि पढ़ि नहि राख्यो संदेह ॥ ८ ॥
तौऊ कछू प्रमादतैं बुद्धिमंद परभाव ।
हीनाधिक कछु अर्थ ह्वै सोधो बुध सतभाव ॥ ९ ॥
मंगलरूप जिनेंद्रकूं नमस्कार मम होहु ।
विघ्न टलै शुभबंध ह्वै यह कारन है मोहु ॥ १० ॥
संवत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय ।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय ॥ ११ ॥

इति वचनिकाकारप्रशस्ति ।

जयतु जिनशासनम् ।

शुभमिति ।

गाथा	पृ० सं०
उ	
उक्किट्ठसीहचरिअ	६०
उग्गतवेणण्णाणी	३१२
उच्छाहभावणास	८५
उच्छाहभावणास	८६
उत्तममज्झिमगेहे	१४२
उत्थरइ जाण जरओ	२५१
उद्धद्धमज्झलोए	३३०
उदधीव रदण भरिदो	३९१
उप्पडदि पडदि धावदि	३६५
उवसग्गपरिसहसहा	१४७
उवसमखमदमजुत्ता	१४५
ए	
एएण कारणेण य	६४
एएण कारणेण य	२१५
एए तिण्णि वि भावा	७७
एए तिण्णि वि भावा	९०
एएहिं लक्खणेहिं य	८४
एक्कं केगुलिवाही	१८०
एगो मे सस्सदो अप्पा	१९७
एगं जिणस्सरूवं	२८
एरिसगुणेहि दव्वं	१३४
एवं आयत्तण गुण	१४९
एवं चिय णाऊण य	७९
एवं जिणपण्णत्त	३१
एवं जिणपण्णत्तं	३४७
एवं जिणेहि कहियं	३३३
एवं बहुप्पयारं	३९४
एवं सहिओ मुणिवर	३६८

गाथा	पृ० सं०
एवं सावयधम्मं	९६
एवं सखेवेण य	१०६
क	
कत्ता भाइ अमुत्तो	२६१
कलहं वाद जूआ	३६०
कल्लाणपरंपरया	३९
काऊण णमुक्कार	३
काऊण णमोकारं	३५६
काल मणतं जीवो	१७९
किं काहदि बहिकम्मं	३४२
किं जंपिएण बहुणा	२७४
किं पुण गच्छइ मोह	२५०
किं बहुणा भणिएणं	३३५
कुच्छियदेवं धम्मं	३३८
कुच्छियधम्मम्मि रओ	२५६
कुमयकुसुदपसंसा	३८२
केवलिजिणपण्णत्तं	१९२
कोहभयहासलोहा	९९
कंदप्पमइयाओ	१६५
कंदप्पमाइय वट्टइ	३६४
कंद मूल बीय	२२६
ख	
खणणुत्तावणवालण	१६३
खयरामरमणुयकर	२०७
ग	
गइ इंदियं च काये	१३१
गसियाइं पुग्गलाइं	१७०
गहि उज्झियाइ मुणिवर	१७१
गहि ऊणाय सम्मत्त	३३४

गाथा	पृ० सं०
गाहेण अप्पगाहा	७३
गिण्हदि अदत्तदाणं	३६५
गिरिगंथमोहमुक्का	१४०
गुणगणमणिमालाए	२७१
गुणगण-विहूसियंगो	३४४
गुणठाणमग्गणेहि य	१२९
च	
चउविहविकहासत्तो	१६६
चउसट्ठिचमरसहिओ	३६
चक्कहररामकेसव	२७२
चरणं हवइ सधम्मो	३११
चरिया वरिया वदसमदि	३२५
चारित्तसमारूढो	१०५
चित्तासोहि ण तेसिं	७२
चेइय बंध मोक्खो	११४
चोराण राउराण य	३६२
छ	
छज्जीवछडायदणं	२५१
छत्तीसं तिण्णि मया	१७२
छह दव्व णव पयत्था	२९
छायास दोम दूसय	२२४
ज	
जह जाय रूव सरिसा	१४४
जइ णाणेण विसोहो	३९३
जइ दंसणेण सुद्धा	७२
जह फुल्लगंधमय	११८
जइ विसय लोल एहिं	२९३
जरवाहि जम्ममरणं	१२८
जरवाहि दुक्खरहियं	१३४
जलथलसिहिपवणंबर	१६९
जस्सपरिग्गहग्गहणं	६८
जदि पढदि बहु	३४३
जह कचण विसुद्ध	१७८
जहजायरूव रूवं	३३७
जह जाय रूव सरिसो	६६
जह ण वि लहदि हु लक्खं	१२१
जह तारायण चंदो	२५९
जह तारायण सहियं	२६०
जह दीवो गब्भहरे	२४५
जह पत्थरोण भिज्जइ	२२०
जह फणिराओ सोहइ	२५९
जह फलिहमणिविसुद्धो	२११
जह मूलम्मि विणट्ठे	२१
जह मूलाओ खंधो	२२
जह रयणाण पवर	२१२
जय विसय लुद्ध विसदो	३८६
जह वीयमि य दड्ढे	२४७
जह सलिलेण ण लिप्पइ	२६७
जाए विसय विरत्तो	३९५
जाणइ भाव पढम	१६१
जावणभावहि तच्च	२३५
जिणणाणदिट्ठिसुद्ध	७८
जिणबिंब णाणमय	११८
जिणमग्गे पव्वज्जा	१४६
जिणमुद्द सिद्धिसुह	३०९
जिणवयणमोसहमिण	२७
जिणवयण गहिद सारा	३९८
जिणवरचरणंबुरुह	२६७
जिणवरमएण जोई	२९०

गाथा	पृ० सं०
जीवविमुक्को सवश्रो	२५८
जीवावीवविहत्ती	१०३
जीवाजीवविभत्ती	३०३
जीवाणममयदानं	२५३
जीवादी सद्दहणं	३०
जीवो जिणपण्णत्तो	१९८
जीवदया दम सच्च	३८५
जे के वि दव्व सवणा	२४४
जे झायति सदव्वं	२९०
जेण रागो परे दव्वे	३२४
जे दंसणेसु भट्ठाणाणे	२०
जे दंसणेसु भट्ठा पाए	२३
जे पावमोहियमई	३२८
जे वि पडंति च तेसिं	२४
जे पुण विसयविरत्ता	३२२
" "	३७८
जे पंचचेलसत्ता	३२९
जे राय सग जुत्ता	२०५
जे बावीसपरीषह	६२
जेसिं जीव सहावो	१९९
जो इच्छइ णिस्सरिदुं	२९४
जो कम्मजादमइश्रो	३१५
जो कोडिएण जिप्पइ	२६१
जो को वि धम्मसीलो	२०
जो झाइ जोयणसयं	२९१
जो जीवो भावतो	१९८
जो जोडेदि विवाहं	३६१
जो देहे णिरवेक्खो	२८५
जो पाव मोहिदमदी	३५८

गाथा	पृ० सं०
जो पुण परदव्वरश्रो	२८७
जो रयणत्तयजुत्तो	३०६
जो सुत्तो ववहारे	२९७
जो सञ्जमेसु सहिश्रो	६१
जं किंचिकयंदोसं	२२८
जं चरदि शुद्धचरणं	११५
जं जाणइ तं णाणं	७७
जं जाणइ त णाण	३०१
जं जाणिऊण जोई	२८०
जं जाणिऊण जोई	३०५
जं णिम्मलं सुधम्मं	१७५
जं मया दिस्सदे रूवं	२९६
जं सक्कइ त कीरइ	३१
जं सुत्त जिणउत्त	५३
झ	
झायहि धम्म सुक्क	२४३
झायहि पंच वि गुरवे	२४५
ण	
णग्गतणं अकज्ज	१९४
णग्गो पावइ दुक्खं	२०३
णच्च दि गायदि तावं	३५८
णमिऊण जिणवरिंदे	१५६
णमिऊण य त देव	२७९
ण मुयइ पयडि अभव्वो	२५५
णरएसु वेयणाश्रो	३८७
णव णोकसायवग्गं	२१८
णरविहवंभं पयडहि	२२०
णविएहि जं णविज्जइ	३४५
णवि देहो वदिज्जइ	३

गाथा	पृ० सं०	गाथा	पृ० सं०
णवि सिज्झइ वत्थधरो	७०	णिरुवमचलमखोह	११६
णाणगुणहिं विहीणा	१०५	णिस्संकिय णिकखिय	८१
णाणमयांवमलसीयल	२५६	णिट्ठट्टअट्ठकम्मा	३९६
णाणमयं अप्पाणं	२७८	त	
णाणम्मि दसणम्मि य	३८	तवरहई सम्मत्तं	३०२
णाणस्स णत्थि दोसो	३७९	तवरहियं ज णाणं	३१७
णाणावरणादीहिं	२३८	तववयगुणेहिं सुद्धो	१२०
णाणी सिवपरमेट्ठि	२६५	तववयगुणेहि सुद्धा	१४८
णाणेण दंसणेणय	३७	तव्विवरीओबधइ	२३७
णाणेण दंसणेणइ	३७९	तस्सयकरह पणामं	११९
णाण चरित्तसुद्धं	७७	तामणणाज्जइ अप्पा	३२१
णाण चरित्तसुद्धं	३७७	तावण जाणदि णाणं	२७५
णाण चरित्तहीणं	३७६	तित्थयरगणहराइं	२४८
,, ,,	३१५	तित्थयरभासियत्थं	२१६
णाण झाण जोगो	३९७	तिपयारो सो अप्पा	२८०
णाण णरस्स सारो	३७	तिलतुसमत्तणिमित्त	१४६
णाणा णाऊण णरा	३७७	तिहुयणसलिल सयलं	१७०
णाणा दसणसम्मं	७५	तुमम संघोसंतो	१६३
णाणा पुरिसस्स हवदि	१२२	तुमे धम्मंत वलेण यं	३८८
णामे ठवणे हि य सदव्वे	१२६	तुहमरणे दुक्खेण	१६८
णिग्गथ मोहमुक्का	३३०	ते धण्णा ताण णमो	२४६
णिग्गथा णिस्संगा	१५२	ते धण्णा ताण णमो	२४६
णिच्चेल पाणिपत्त	६०	ते धण्णा सुकयत्था	३३५
णिच्छयणयस्स एव	३३१	ते धीरवीरपुरिसा	२६६
णिण्णेहा णिल्लोहा	१४३	ते मे तिहुवणमहिया	२७३
णिंदाए य पसंसाए	३२५	ते-याला तिण्णिसया	१५०
णियदेहसरिस्सं	२८३	तेरहमे गुणठाणे	११५
णिय सत्तिए महाजस	२२७		

गाथा	पृ० सं०
ते गोया वियसयला	१८१
ते त्त्रियभएगामिह जे	२६८
तं चेव गुणविशुद्धं	८२
थ	
थूलेःतसकायवहे	९५
द	
दृढसंजममुद्दाए	१२०
दव्वेणसयलणग्गा	२०२
दसदसदोसुपरीसह	२२०
दसपाणापज्जत्ती	१३४
दसविहपाणाहारो	२५२
दिक्खाकाल ईयं	२३०
दियसंगट्ठियमसणं	१८२
दिसिविदिसिमाणपढमं	९५
दुइयं च उत्तलिंगं	६६
दुक्खे णज्जइ अप्पा	३२०
दुक्खेणे यदि णाण	३७५
दुज्जणवयणचडक्क	२२८
दुट्ठट्ठकम्मरहियं	२८९
दुविहं पि गथचायं	२५
दुविहं संजमचरणं	६२
देवगुरुम्मि य भत्तो	३१२
देवगुरूण भत्ता	३३१
देवगणगणविहूई	१६६
देहादि चत्तसंगो	१८४
देहादि संगरहिओ	१९५
दंडयणयरं सयलं	१८६
दंसणअणंतणाणं	११६
दंसण अणंतणाणे	१२७
दंसणणाण चरित्ते	३२
„ „	३६१
„ „	३६३
„ „	३६८
„ चरित्तं	१०४
दंसणणाणावरणं	२६३
दंसणभट्ठा भट्ठा	१६
दंसणमूलो धम्मो	४
दंसणवयसामाइय	९२
दंसणसुद्धो सुद्धो	३०२
दंसेइ मोक्खमग्गं	११७
ध	
धणधण्णवत्थदाण	१४१
धण्णा ते भयवंता	२६९
धम्मम्मि णिप्पवासो	२०४
धम्मेण होइ लिंगं	३५७
धम्मो दयाविसुद्धो	१२३
धुवसिद्धी तित्थयरो	३१८
प	
पडिदेस समययुग्गल	१७६
पढिएण वि कि कीरइ	२०१
पयडहिं जिणवरलिंगं	२०४
पयलियमाणकसाओ	२०८
परदव्वरओ वज्झदि	२८६
परदव्वादो दुग्गइ	२८८
परमप्पयज्झायंतो	३०९
परमाणपमाणं वा	३२१

गाथा	पृ० सं०
परिणामम्मि असुद्धे	१६०
पव्वज्ज सगचाए	८७
पव्वज्जहीण गहिण	३६७
पसुमहिलसंढसंग	१४८
पाऊणणाण सलिल	१०४
„	२१९
पाओ पहदभाओ	३६०
पावेणव हेहि महाजस	२५२
पाव खवइ असेसं	२२९
पावंति भावसवणा	२२४
पाव हवइ असेसं	२३६
पासत्थ भावणाओ	१६५
पासंडी तिणसया	२५७
पित्तंतमुत्तफेफस	१८१
पीओसि थणच्छीरं	१६८
पुंछलिघर जो भुंजइ	३६९
पुरिसायारो अप्पा	३३२
पुरिसेण विसहियाए	३९०
पुरिसोवि जो ससुत्तो	५२
पूयादिसु वय सहियं	२१२
पंचमहव्वयजुत्ता	१३८
पंचमहव्वय जुत्तो	२५९
„ जुत्तो	६९
पंचविहचेलचायं	२११
पच वि इदियपाणा	१३२
पचसु महव्वदेसु य	३२६
पंचेंद्रियसवरण	९७
पंचेव णुव्वयाइ	९२

गाथा	पृ० सं०
ब	
बलसोक्खणाणदंसण	२६४
बहिरत्थे फुरियमणो	२८३
बहुसत्थअत्थजाणे	१०९
बारस अंग वियाणं	१५४
बाहिरसंगचाओ	२१७
बाहिरलिंगेण जुदो	३१८
बाहिरसयणत्तावण	२३२
बाहिरसगविमुक्को	३४१
वियणं पंचपयारं	२२६
वुद्ध ज बोहतो	११२
बधोणिरओ सतो	३६६
भ	
भरहे दुस्समकाले	३२७
भव्वजणवोहणत्थ	१०२
भवसायरे अणते	१६९
भावरहिएणसउरिस	१६१
भावरहिओ ण सिज्झइ	१५९
भावविमुत्तो मुत्तो	१८३
भावविसुद्धिणिमित्त	१५९
भावसमणो य धीरो	१९१
भावसमणोविपावइ	२४८
भावसहिदो य मुणिणो	२२३
भावहि अणुपेक्खाओ	२२१
भावहि पढम तच्च	२३३
भावहि पच पयार	२०१
भावेण होइ णग्गो	१९४

गाथा	पृ० सं०
भावेग होइ णग्गो	२०६
भावेण होइलिंगी	१८८
भावेह भावसुद्धं	१०६
"	१९७
भावो वि दिव्वसिवसु	२०६
भावो हि पढम लिंग	१५७
भाव तिविहपयारं	२०७
भीसणणारयगईए	१६२
भंजसु इंदिय सेण	२१८
म	
मइधुणहं जस्स थिरं	१२२
मच्छो विसालि सित्थो	२१६
मणवयणकायदव्वा	१११
मणुयभवेपचंदिय	१३३
ममंत्ति परिवज्जामि	१९६
मयमायकोहरहियो	३०७
मयरायदोसमोहो	१११
मयराय दोसरहिओ	१३५
मलरहिओकलचत्तो	२८२
महिलालोयणपुव्वर	१०१
महुपिंगो णाम मुणी	१८५
माया वेल्ल असेसा	२७०
मिच्छत्तअणाइट्ठी	२५६
मिच्छत्त तह कसाया	२३६
मिच्छत्त अण्णाणं	२९५
मिच्छादिट्ठी जो सो	३३९
मिच्छाण णेसु रओ	६८५
मिच्छादसणमग्गे	८८
मूलगुण छित्तूणय	३४१
मोहमयगारवेहिं	२७०
मंसट्ठि सुक्क सो णिय	१८३
र	
रयणत्तये अलद्धे	१७४
रयण त्तयमाराहं	३००
रयणत्तयंपि जो ई	३०१
रागो करेदिणिच्च	३६७
रूवसिरिगव्विदाणं	३८२
रूवत्थं सुद्धत्थं	१५०
ल	
लद्धूण य मणुयत्त	३९
लावण्णसीलकुसलो	३९६
लिंग इत्थीण हवदि	७०
लिंगम्मि य इत्थीणं	७१
व	
वच्छल्य विणएण	८४
वट्टेसु य खडेसु य	३८६
वदमि तवसावण्णा	३५
वयगुत्ती मणगुत्ती	९९
वयसम्मत्तविसुद्धे	१२४
वहिरत्थे फुरियमणो	२८३
वर वयतवेहि सग्गो	२९३
वायरणछंदवइसे	३८३
वारि एकम्मि य जम्मे	३८७
वारसविहतवजुत्ता	४१
वालग्गकोडिमत्त	६५
वारसविहववयरणं	२१०

गाथा	पृ० सं०
विसएसु मोहिदाणं	३८१
विहरदि जाव जिणिंदो	४०
विवरीयमूढ भावा	१५५
विसवेयण रत्तक्खय	१७१
वियलिंदए असीदी	१७३
विसयविरत्तो सवणो	२०९
विसय कसाएहि जुदो	३०८
वरंविमालणयणं	३७२
वेरग्गपरोसाहू	३४४
स	
सच्चित्तभत्तपाणं	०२५
सत्तसु णरयावासे	१६२
सत्तू मित्तेयसमा	१४१
सद्दवरओ स सवणो	२८७
सद्दवियारो हूओ	१५४
सद्दहदि य पत्तेदि य	०१३
सपरज्झवसाएण	२८४
सपरा जगम देहा	११४
सपरा वेक्ख लिंग	३३८
सम्मगुण मिच्छदोसो	३४०
सम्मत्त चरणभट्ठा	८३
सम्मत्तचरण सुद्धा	८३
सम्मत्तणाण दसण	३९५
"	१८
सम्मत्तणाण रहिओ	३२६
सम्मत्तरयण भट्ठा	१७
सम्मत्तविरहिया णं	१७
सम्मत्त सलिलपवहो	१९

गाथा	पृ० सं०
सम्मत्तादो णाणं	२६
सम्मत्तं जो झायई	३३४
सम्मत्तं सण्णणं	३५६
सम्मद्दंसण पस्सदि (इ)	८६
"	१३५
सम्माइट्ठी सावय	३३९
सम्मूहदि रक्खेदि य	३५९
सयलजणबोहणत्थ	१०६
सव्वगुणखीणकम्मा	३९८
सव्वण्ह सव्वदसी	७५
सव्वविरओ विभावइ	२२१
सवमा सत्थं तित्थं	१३८
सव्वासवणिरोहेण	२९७
सव्वेकसायमुत्तं	२९४
सव्वे वि य परिहीणा	३८४
सहजुप्पण्ण रूव	३२
सामाइयं च पढमं	९५
साहंति जं महल्ला	९८
सिद्धो सुद्धो आदा	३००
सिद्ध जस्स सदत्थं	११२
सिवमजरामरलिंग	२७२
सिसुकाले य अयाणे	१८२
सीलगुणमंडिदाण	३८४
सीलस्स य णाणस्स य	३७३
सील सहस्सट्ठारस	२३९
सील तवो विसुद्धं	३८६
सीलं रक्खताणं	३८०
सुण्णहरे तरुहिट्ठे	१३८

श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित ग्रन्थ

१ **समयसार** मूल गाथाओंका हिन्दी पद्यानुवाद ।)

२ **अनुभवप्रकाश** आत्माका अनुभव कराने वाला ग्रंथ
(अध्यात्मरसी स्व० पं० दीपचन्दजी कृत) पत्र ११६ अजिल्द ।=)

३ **आत्मावलोकन** आत्माका अवलोकन कैसे हो ? उसका उपाय
(अध्यात्मरसी स्व० पं० दीपचन्दजी कृत) पत्र १६८ सजिल्द १=)

४ **स्तोत्रत्रयी** कल्याणमंदिर, विषापहार, जिनचतुर्विंशतिका
स्तोत्र अर्थ सहित, पत्र ६६ अजिल्द ॥)

५ **निमित्त नैमित्तिक संबन्ध क्या है ?** =)॥

६ **चिद्विलास** चैतन्यके अन्तर्विलासको दिग्दर्शन करानेवाला ग्रंथ
(अध्यात्मरसी स्व० प० दीपचन्दजी कृत) पत्र १२४ सजिल्द १॥)

७ **सोलहकारण विधान** (पूजन) पत्र १३२ १)

८ **बृहत्स्वयंभू स्तोत्र** समन्तभद्राचार्य विरचित भावार्थ सहित
पत्र ८६ अजिल्द ॥)

९ **श्री समयसार प्रवचन** कपड़ेकी पक्की जिल्द सहित पूज्य
श्री कानजी स्वामीके समयसारकी १२ गाथाओं पर अपूर्व शैलीसे
आध्यात्मिक प्रवचन (प्रथमभाग) बड़ी साइजके पत्र ४८८ का ६)

१० **श्री प्रवचनसार** धवलाकार कपड़ेकी पक्की सुन्दर जिल्द सहित
भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य कृत गाथासे श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य्य कृत
तत्वदीपिका वृत्ति और उसका अक्षरश नवीन अपूर्व हिन्दी अनुवाद आचार्य्य श्री के हृदयके भावोंको द्योतन करने वाली अद्भुत
टीका पत्र ३८८ का ६॥)

११ **श्री अष्टपाहुड़** कपड़ेकी सुन्दर पक्की जिल्द सहित भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य्य कृत गाथाऐं और स्व० पं० जयचन्दजी छाबड़ा
कृत भाषा टीका, अध्यात्म सरल व गूढ ग्रंथ पत्र ४५० का ३॥)

— छप रहे हैं —

१२ **आध्यात्मिकपाठ संग्रह** पक्की कपड़ेकी जिल्द सहित भक्ति वैराग्य एवं आध्यात्मिक अनेक स्तोत्र, पाठ, भजन व ग्रंथका अपूर्व सग्रह पत्र ८००

१३ **श्री समयसार प्रवचन** (द्वितीय भाग) पू० श्री कानजी स्वामी द्वारा समयसार पर अपूर्व आध्यात्मिक प्रवचन ६॥)

१४ **श्री समयसारजी** मूल गाथाएँ सस्कृत टीका, एवं नवीन हिन्दी टीका सहित

………●………

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर सोनगढ़ के हिन्दी भाषा के

— प्रकाशन —

१ मुक्तिका मार्ग ॥≈)
२ वस्तुविज्ञानसार अमूल्य
३ मूलमें भूल ॥।)
४ दशलक्षण धर्म ॥।)
५ मोक्षमार्ग प्रकाशक किरण १।≈)
६ समयसार प्रवचन प्रथम भाग ६)
७ जैन बालपोथी सचित्र ।)
८ पंचमेरु नंदीश्वर पूजन विधान ॥।)
९ आत्मधर्म मासिक पत्र वार्षिक ३)

— छप रहे हैं —

१ भेद विज्ञानसार
२ सम्यग्दर्शन

—:: प्राप्ति स्थान ::—

श्री, पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला
मारोठ (मारवाड़)

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)